Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
Nov. 2025
Volume 13, Issue 11

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

भारतीय संविधान के 75 वर्ष : सिंहावलोकन विशेषांक

Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.
Editor :
Dr. Rekha Soni

Issue Editor :
Dr. Shiv Karan Nimal

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 11 | नवम्बर : 2025 | आईएसएसएन : 2321-8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रधन सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा)

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. शिवकरण निमल
सहा. प्रोफेसर, एस.पी.सी. राजकीय महाविद्यालय भीम, राजस्थान।

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।
डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।
डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।
डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।
श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज, अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय, सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर, अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग,** एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज,** पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. शिवकरण निमल	07–07
2.	भारतीय संविधान के 75 वर्ष– एक यात्रा	Dr. Shivkaran Nimal	08-15
3.	भारतीय संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	Adv. Ankit Malik	16-18
4.	संविधान और महिला सशक्तिकरण	आसिफ अहमद, डॉ. मो. शाहिद	19–23
5.	भारतीय संविधान निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : एक नए युग का निर्माण	डॉ. रमेश राम	24–31
6.	स्वतंत्रता आंदोलन और भारतीय संविधान निर्माण की प्रक्रिया : एक अध्ययन	प्रिन्स कुमार	32–39
7.	ENVIRONMENTAL JUSTICE AND ARTICLE 14 : EVOLUTION OF EQUALITY IN ENVIRONMENTAL BURDENS IN THE CONSTITUTIONAL JOURNEY OF INDIA	Sakshi Singh	40-45
8.	21वीं सदी के युवा कहानीकारों में विकलांग विमर्श का नया स्वर : यथार्थ से प्रतीक तक	मुकेश कुमार यादव	46–54
9.	हिंदी गद्य साहित्य और सिनेमा में समाज और राजनीति का प्रभाव : एक विश्लेषण	बिरदी चंद जाट	55–64
10.	लोकतंत्र के विकास में जनमत एवं मीडिया की भूमिका का अवलोकन	डॉ. अभिषेक अग्रवाल	65–70
11.	भारतीय राज्यघटनेतील नैतिक मूल्यांचा पुरस्कार	प्रा.श्री. गौतम केदार ब्रह्मे	71–77
12.	भारतीय संविधान के तहत कामकाजी महिलाओं के अधिकार और कार्यस्थल पर सुरक्षा : एक सामाजिक–न्यायिक विश्लेषण	निर्मला त्रिपाठी	78–85
13.	भारतीय संविधान में संवैधानिक उपचारों का अधिकार : एक समीक्षा	SAJAN RAM	86-90
14.	भारतीय संविधान और महिला सशक्तिकरण, लैंगिक समानता, महिला आरक्षण एवं अधिकार	डॉ. अलका शर्मा	91–98

15.	भारतीय संविधान निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	श्याम मूर्ति भारती	99–105
16.	डॉ० रामविलास शर्मा : भारतीय संस्कृति, इतिहासबोध और संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि	अमेय विक्रम	106–107
17.	भारतीय संविधान और मूल अधिकार : वर्तमान में प्रासंगिकता	दिनेश सिंह	108–113
18.	भारतीय संविधान में दिव्यांग जन के मौलिक अधिकार	शशिकांत चिन्नेश्वर सैबे, डॉ. रवींद्र लिंबाजी भोरे	114–117
19.	महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता : भारतीय संविधान	सरिता	118–122
20.	वर्तमान परिदृश्य में मौलिक अधिकारों का बदलता स्वरूप और भारतीय संविधान : समस्या और समाधान	डॉ. दलपत सिंह	123–124
21.	संविधान और महिला सशक्तिकरण	Dr. Anupama	125-131
22.	संविधान और सामाजिक न्याय : शिक्षा और स्वास्थ्य के अधिकार के परिप्रेक्ष्य में	S. RAJALAKSHMI	132-136
23.	संविधान की प्रमुख विशेषताएँ : एक विश्लेषणात्मक और विस्तृत अध्ययन	अभिमन्यु कुमार शर्मा	137–142
24.	संविधान निर्माण में मध्य प्रदेश का योगदान	डॉ. रोशनी	143–147
25.	भारतीय संविधान-निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : उपनिवेशवाद, स्वाधीनता आंदोलन और लोकतांत्रिक विचारधारा का परिवर्तनीय संवाद	प्रो. जीवन कुमार साह	148–152
26.	संविधान में वाक अभिव्यक्ति के संदर्भ मे बॉलीवुड हिंदी सिनेमा का राजनैतिक परिपेक्ष्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. शिव कुमार, रेणु	153–161
27.	भारतीय संविधान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और वर्तमान परिदृश्य	शैलेन्द्र कुमार	162–167
28.	भारतीय संविधान के 75 वर्ष : एक सिंहावलोकन	सर्वेश जैमन	168–172
29.	ਭਾਰਤੀ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀਆਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾਵਾਂ	Balbir Kaur	173-179
30.	भारतीय महिलाओं के संवैधानिक एवं विधिक अधिकार समानता से सशक्तिकरण तक	विवेचना पाण्डेय डॉ. सरिता भवानी मालवीय	180–184
31.	75 वर्षों में भारतीय संविधान : उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ	डॉ. कांता वर्मा	185–191

32.	ग्रामीण परिवारों में महिलाओं की बदलती भूमिका : उपलब्धियां तथा चुनौतियां (मध्य प्रदेश पंचायतीराज के विशेष संदर्भ में)	डॉ. नियाज अहमद अन्सारी	192–196
33.	भारतीय इतिहास-साहित्य के अध्ययन में समानता का अधिकार	डॉ. पुष्पा कुमारी	197–200
34.	हिंदी भाषा और संविधान	डॉ. शुभा मिश्रा	201–204
35.	75 वर्षों में संविधान की उपलब्धियां और बालकाव्य	दिवाकर मिश्र (सूबेदार) डॉ. कमल कुमार बोस	205–210
36.	संविधान की प्रमुख विशेषताएं	Dr. Ranjita Bharti	211-213
37.	एक राष्ट्र एक चुनाव : भारतीय लोकतंत्र की दिशा में एक ऐतिहासिक पहल	प्रीति अहिरवार, ऊषा पाण्डेय	214–222
38.	संविधान की विशेषताएं	विनोद कुमार, डॉ. एस.के. सिद्धार्थ	223–227
39.	Social Realism in Selected Writings of Charles Dickens and Mulk Raj Anand	Pankaj Kumar	228-234
40-	भारतीय संविधान और दलित चेतना का विकास	सुभद्रा कुमारी	235–236

सम्पादक की कलम से.....

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 8–15

भारतीय संविधान के 75 वर्ष– एक यात्रा

Dr. Shivkaran Nimal
Assistant Professor,
SPC GOVERNMENT COLLEGE BHIM.

सारांश :

भारत का संविधान केवल कानूनी दस्तावेज नहीं, बल्कि भारतीय समाज की विविधता, आदर्शों एवं मूल्यों और लोकतांत्रिक आकांक्षाओं का जीवन्त और गतिशील आधार है। इस शोधपत्र में भारतीय संविधान की 75 साल की गौरवपूर्ण यात्रा को सार रूप में प्रस्तुत किया गया है। 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान के लागू होने के बाद भारत में निरन्तर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर जो–जो परिवर्तन हुए है, उनसे पता चलता है कि भारतीय संविधान अनुकूलता, लचीलेपन और समावेशी प्रकृति को धारण किए हुए है। शोधपत्र में भारतीय संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सारगर्भित वर्णन किया गया है। इस शोधपत्र में प्राचीन भारतीय प्रशासनिक परम्पराओं, मध्यकालीन राजनीतिक विचारों, स्वतंत्रता आंदोलन की लोकतांत्रिक चेतना, संविधान निर्माण की कहानी और संविधान सभा की बहसों के साथ ही संविधान निर्माण डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे प्रमुख नेताओं की भूमिका का विश्लेषण भी किया गया है। भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं यथा– मूल अधिकार, नीति निर्देशक तत्व, न्यायपालिका, संघात्मक एवं संसदात्मक व्यवस्था, धर्मनिरपेक्षता और संशोधन की प्रकृति का भी सारगर्भित विवेचन किया गया है। मौटे तौर पर इसमें संविधान की 75 साल की यात्रा को तीन भागों में बॉटकर देखा गया है। प्रथम भाग में 1975 तक की संस्थागत निर्माण और प्रारंभिक चुनौतियां और स्थिरीकरण के साथ ही दूसरे भाग 2000 तक में आपातकाल, लोकतंत्र की पुनर्स्थापना, सामाजिक न्याय और आर्थिक परिवर्तन के साथ ही तीसरे भाग में उदारीकरणा के बाद के युग, न्यायिक सक्रियता नई तकनीकी चुनौतियों और लोकतंत्र की जीवंतता और वर्तमान में डिजीटल खतरे और पर्यावरण से संबंधित चुनौतियों पर प्रकाश डालता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान एक जीवंत दस्तावेज है, इसमें निरन्तर समयानुसार परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया चलती रही है।

प्रस्तावना :

भारतीय संविधान 26 नवम्बर 1949 को अंगीकृत, अधिनियमित और अंगीकृत किया गया और 26 जनवरी 1950 को पूर्ण रूप से लागू हुआ। भारत के संविधान का केवल विधिक दस्तावेज नहीं माना जाना चाहिए बल्कि यह आधुनिक भारत की आत्मा, दर्शन, मूल्यों, आकांक्षाओं और सामूहिक संकल्पों का प्रतीक है। संविधान के द्वारा एक ऐसे राष्ट्र की नींव रखी गई जो विविधता में एकता को समाये हुए है। देश में विभिन्न भाषाएं, धर्म, जातियों,

सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विविधताएं विद्यमान है परन्तु सभी के लिए एक समान राजनीतिक ढांचा विद्यमान है। भारतीय संविधान के द्वारा न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के आदर्शो को अपनाया गया है जो सम्पूर्ण नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन में निरन्तर मार्गदर्शन कर रहे है। जिस समय भारत का संविधान लागू हुआ उस समय भारत के विभाजन की समस्या, आर्थिक असमानता, अशिक्षा, गरीबी और रियासतों के एकीकरण जैसी अनेक समस्यायें विद्यमान थी। भारत ने आजादी के बाद लोकतंत्र का रास्ता चुना और विविधता में एकता के आदर्श को बरकरार रखते हुए एक उदाहरण सम्पूर्ण दुनिया के सामने रखा कि विविधताओं से भरे समाज में भी लोकतांत्रिक ढांचा कार्य कर सकता है। भारतीय संविधान जीवतंता की सबसे बड़ी मिशाल है, संविधान का लचीलापन, समावेशिता और समयानुकूलता के इसके प्रमुख लक्षण माने जा सकते है। यदि पिछले 75 वर्षो का अवलोकन किया जाए तो कहा जा सकता है कि भारत ने राजनीतिक स्थिरता, न्यायपालिका की मजबूती, नागरिक अधिकारों का विस्तार, पंचायती राज की स्थापना, आर्थिक उदारीकरण, खाद्यान्न निर्भरता, देश का चहुंमुखी विकास इत्यादि बदलाव निरन्तर समयानुकूल हुए है।

शोध पत्र के उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य संविधान निर्माण की ऐतिहासिक और वैचारिक आधारों का जानना और भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं और 75 साल की प्रमुख घटनाओं और वर्तमान दौर की समस्याओं और समाधानों के बारे में जानना है।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक ऑकड़ों पर आधारित है। इस हेतु संविधान सभा की चर्चाएं, न्यायिक निर्णय, प्रमुख संविधान संशोधन और प्रामाणिक संदर्भ ग्रंथों का प्रयोग किया गया है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

भारत के संविधान का निर्माण किसी एक दिन में बना हुआ नहीं है, अपितु यह एक निरन्तर प्रगतिशील और जीवंत दस्तावेज है जो प्राचीन परम्पराओं, मध्यकालीन प्रशासनिक अनुभवों और औपनिवेशिक संवैधानिक विकास और भारतीय जनता की समयानुकूल परिवर्तित परिस्थितियों का परिणाम है। मनु संहिता जैसी प्राचीन संहिताओं में शासन प्रशासन, न्याय और सामाजिक कर्तव्यों के बारे में जानकारी मिलती है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रशासनिक व्यवस्था और व्यवहारिक शासन का जीवंत दस्तावेज कहा जा सकता है जिसमें विस्तार से प्रशासन के बारे में और राज्यकला के बारे में बताया गया है। मध्यकाल में भी प्रशासन के सिद्धांतों की झलक हमें देखने को मिल सकती है। ब्रिटिश काल में रेग्युलेटिंग एक्ट, पिट्स इंडिया एक्ट, भारत शासन अधिनियम 1909, 1919, और 1935 के द्वारा प्रशासनिक नीतियों, संघात्मक व्यवस्था, विधायी परमपराओं आदि का विकास हुआ। आजादी की लड़ाई के दौरान भी राजनीतिक आंदोलनों ने संवैधानिक चेतना को पुष्ट किया और फिर अंततः संविधान निर्मात्री सभा के द्वारा अथक प्रयासों और संविधान सभा के सदस्यों की दूरगामी सोच और चेतना के द्वारा भारतीय जनता की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक ऐतिहासिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जिस संविधान का निर्माण हुआ है, वह विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का संविधान है।

इस प्रकार यदि हम देखे तो पाएंगे कि भारतीय संविधान का निर्माण विश्व इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण, विस्तृत, विचारपूर्ण और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में से एक था। भारतीय संविधान सभा का गठन ब्रिटिश

शासन के द्वारा कैबिनेट मिशन योजना के तहत सन् 1946 में किया गया। शुरूआत में संविधान सभा के सदस्यों की संख्या 389 थी, परन्तु विभाजन के बाद यह 299 तक रह गई। संविधान सभा के सदस्य भारत की विविधता भाषा, संस्कृति, क्षेत्र, जाति और सभी समुदायों का प्रतिनिधित्व करते थे। संविधान निर्माण का कार्य 2 वर्ष 11 माह 18 दिनों तक चला, जिसके दौरान कुल 11 सत्र आयोजित हुए और उनमें भी 114 दिनों तक प्रत्यक्ष बहसें हुई। इस प्रकार देखा जाए तो कहा जा सकता है कि भारत के संविधान का निर्माण भारत के शीर्ष नेतृत्व का उत्पाद नहीं था, बल्कि भारत की सामूहिक लोकतांत्रिक चेतना का परिणाम था।

डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर, जिन्हें संविधान की ड्राफ्टिंग कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया, इस प्रक्रिया के केंद्रीय व्यक्तित्व थे। उन्होंने विभिन्न कानूनी प्रणालियों, वैश्विक संवैधानिक मॉडल्स और भारतीय समाज की विशिष्ट चुनौतियों का गहन अध्ययन कर संविधान को एक व्यावहारिक, न्यायपूर्ण और आधुनिक रूप प्रदान किया। आंबेडकर का योगदान केवल विधिक संरचना तक सीमित नहीं था; उन्होंने सामाजिक न्याय, समानता, मानव गरिमा और लोकतांत्रिक अधिकारों को संविधान का मूल आधार बनाया।

संविधान सभा में कई प्रमुख नेताओं का योगदान उल्लेखनीय रहा। जवाहरलाल नेहरू ने उद्देशिका, राष्ट्रवाद, अंतरराष्ट्रीय दृष्टि और लोकतांत्रिक मूल्यों को दिशा दी। सरदार वल्लभभाई पटेल ने रियासतों का एकीकरण, संघीय ढांचे और प्रशासनिक संरचना को मजबूत किया। डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने सभा का नेतृत्व अत्यंत संयम, धैर्य और तटस्थता के साथ किया। कन्हैयालाल मुंशी, एच. वी. कामथ, अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर, बी. एन. राव और अन्य विशेषज्ञों ने विधिक, दार्शनिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से संविधान को समृद्ध किया।

लंबी बहसों और विचार–विमर्श के बाद संविधान 26 नवंबर 1949 को पारित हुआ और 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया। यह क्षण भारतीय लोकतंत्र की नींव रखने और एक स्वतंत्र, न्यायपूर्ण तथा आधुनिक राज्य के निर्माण की दिशा में युगांतरकारी सिद्ध हुआ। भारतीय संविधान का निर्माण न केवल बौद्धिक साधन था, बल्कि राष्ट्र के आत्म–संकल्प का प्रतीक भी था।

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं –

भारत का संविधान लिखित एवं विस्तृत संविधान है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत भाासन के तीनों स्तरों का पूर्ण विवेचन, मूल अधिकारों के साथ ही नीति निर्देशक तत्वों और शासन के तीनों अंगों का विस्तार से विवेचन किया गया है। भारत का संविधान संविधान निर्मात्री सभा के द्वारा लिखा गया है। भारतीय संविधान के द्वारा सार्वभौमिक लोकतांत्रिक गणराज्य, संसदीय शासन प्रणाली, संघात्मक एवं एकात्मक व्यवस्था का मिश्रित रूप अपनाया गया है। भारतीय संविधान में न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक समीक्षा को भी स्थान दिया गया है। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय, आरक्षण को स्थान दिया गया है। भारतीय संविधान लचीलेपन और कठोरता का मिश्रण है। भारतीय संविधान के अन्दर विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का विस्तृत वर्णन किया गया है। भारतीय संविधान में भाषाओं, आपातकालीन प्रावधानों, कर व्यवस्था का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। इस प्रकार कह सकते है कि भारत का संविधान विश्व का सर्वाधिक विस्तृत संविधान है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारतीय जनता के आदर्शो, मूल्यों और आकांक्षाओं का दर्पण है। प्रस्तावना को संविधान की कुंजी कहा जाता है। यदि हम साप्ताहिक अखबार 'खबर गवाह' में जितेन्द्र कुमार बोयल की रचना 'मैं भारत का संविधान हूं।'' में भारतीय संविधान की विशेषताओं को सरल शब्दों में समझ सकते

है। जितेन्द्र कुमार एक उभरते हुए कवि है :–

'मैं भारत का संविधान हूं
जन जन की आवाज हूं
भारत का गौरव हूं
आमजन का अभिमान हूं
मैं देश का एकसूत्र हूं
मैं स्वतंत्रता का श्वास हूं
निष्पक्षता का आगार हूं
व्यवस्थापिका की व्यवस्था हूं
कार्यपालिका का कार्य हूं
न्यायपालिका का न्याय हूं
मीडिया की अभिव्यक्ति हूं
स्वायत्तशासी संस्थानों की उन्मुक्त स्वतंत्रता हूं
लोकतंत्र का गुणगान हूं
मैं भारत का संविधान हूं
मैं समता का वादा हूं
मैं करूणा की संवेदना हूं
मैं मानवता का पोषक हूं
मैं जनकल्याण में निहित हूं
मैं अंतिम छोर तक का संबल हूं
मैं मौलिक अधिकारों का बोध हूं
कत्रव्यों की चेतना हूं
नीति निर्देशक में सरकारों का दर्पण हूं
संवैधानिक उपचारों का अर्पण हूं
राष्ट्रपति का अभिभाषण हूं
प्रधानमंत्री का सदन हूं
मैं भारत का भाग्य विधान हूं
मैं संसद की मुखर आवाज हूं
मैं विधानसभा की विधायका हूं
समता, समानता और स्वतंत्रता का पूरजोर हूं
समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और सहिष्णुता का ईमान हूं
वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आगाज हूं
प्रेम, भाईचारा और मोहब्बत का पैगाम हूं

दयालुता– करूणा मेरे प्राण हैं
मैं जन जन का सुरक्षा कवच हूं
मैं लचीला हूं
मैं कठोर हूं
मैं भारत का संविधान हूं
मैं बाबा साहेब के सपनों का भाव हूं
मैं शांति का पैगाम हूं
वैश्विक बंधुत्व का साथी हूं
हां!
राष्ट्र की एकता और अखंडता का प्रण हूं
मैं भारत के लोगों का प्राण हूं
मैं भारत का संविधान हूं .....।।

संविधान की 75-वर्षीय यात्रा : कालखंडीय विश्लेषण

1950 से 1975 : संस्थागत निर्माण और स्थिरीकरण :

यह अवधि राष्ट्र–निर्माण और संस्थागत नींव का समय रही। विभाजन की चुनौतियों, राज्यों का पुनर्गठन, पहले आम चुनावों (1951–52) तथा आर्थिक योजनाओं (पहली पंचवर्षीय योजना 1951) ने लोकतंत्र को मजबूती प्रदान की। इस कालखंड में ही विधायिका और न्यायपालिका के बीच संघर्श भी देखने को मिलते है। न्यायाधीशों व विधायकों के बीच संवैधानिक दायित्वों पर बहसें उत्पन्न हुईं, जैसे गोलकनाथ वाद (1967) और केशवानंद भारती वाद (1973) के माध्यम से संसद–न्यायपालिका संबंधों की दिशा तय हुई। इसी कालखंड में मूल अधिकारों के संशोधन संबंधी और संविधान के आधारभूत ढांचे संबंधी बाते भी सामने आई है। अंततः यह निश्चित किया गया कि संसद मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी हिस्से को संशोधित कर सकती है, परन्तु संविधान की आधारभूत संरचना को नहीं बदला जा सकता है। आधारभूत ढांचा क्या है, इसका निर्णय न्यायपालिका करेगी।

1975 से 1990 : आपातकाल, पुनर्स्थापना और संवैधानिक सुधार :

1975–77 का आपातकाल संविधान की सबसे कठिन परीक्षा था, नागरिक स्वतंत्रताओं का निलंबन, प्रेस सेंसरशिप और राजनीतिक दुर्व्यवहार के माध्यम से लोकतंत्र की संवैधानिक सीमाएँ चुनौतीपूर्ण बनीं। परन्तु इसके पश्चात 44वें संशोधन (1978) ने आपातकाल से सीख लेकर नागरिक अधिकारों की रक्षा को सुदृढ़ किया। 1980–90 के दशक में राजनीतिक अस्थिरता, क्षेत्रीय दलों का उदय और सामाजिक आंदोलनों ने संघीय–संरचना व लोकतंत्र को नया रूप दिया। इस कालखंड में अन्य पिछड़ा वर्ग का गठन और उसकी सिफारिशों को लागू करने के अथक प्रयासों से आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो के आरक्षण का मुद्दा हल हो गया। आपातकालीन प्रावधानों के अन्दर अनु. 20 और 21 संबंधी प्रावधानों को सर्वोपरि रखा गया।

1990 से 2025 : उदारीकरण, सामाजिक न्याय का विस्तार और डिजिटल युग की चुनौतियाँ :

1991 का आर्थिक उदारीकरण भारतीय अर्थव्यवस्था व राजनैतिक रणनीति में परिवर्तन लेकर आया। 73वाँ व 74वाँ संशोधन (1992) ने स्थानीय शासन–व्यवस्था को सुदृढ़ किया और लोकतंत्र को जमीनी स्तर तक

पहुँचाया। न्यायपालिका ने जनहित याचिका, मानवाधिकार व निजता के अधिकार (पुटुस्वामी वाद 2017) के माध्यम से संवैधानिक विस्तार किया। वहीं, डिजिटल क्रांति, डेटा सुरक्षा, एआई व ऑनलाइन सूचनाओं के प्रसार ने संविधान के परंपरागत प्रश्नों को नये रूप में उपस्थित किया। वर्तमान समय में आर्थिक रूप से विशेष रूप से पिछड़े लोगों के 103 वें संविधान संशोधन द्वारा आरक्षण प्रदान किया ताकि यह वर्ग सक्षम बन सके। इसी दौर में धारा 370 को समाप्त किया जो कि एक एकता और अखंडता की दृष्टि से सराहनीय कदम था। इसी दौर में 99वां संविधान संशोधन, जीएसटी, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, जैसे कदम भी देश की एकता और अखंडता हेतु उठाए गए है।

प्रमुख न्यायिक निर्णयों का प्रभाव :

1. **केशवनंद भारती (1973) :** मूल संरचना सिद्धांत ने संसद की असीम संशोधन शक्ति पर सीमाएँ रखीं।
2. **इंदिरा गाँधी व राज नारायण (1975) :** यह मामला राजनीतिक–वैधानिक टकराव का प्रतीक बना।
3. **मेनका गांधी (1978) :** 'न्यायपूर्ण प्रक्रिया' की व्याख्या ने व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं को सशक्त किया।
4. **के. एस. पुत्तस्वामी (2017) :** निजता को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया जिससे डिजिटल अधिकारों के संरक्षण की आधारशिला मजबूत हुई।

इन निर्णयों ने संविधानिक शक्तियों, नागरिक अधिकारों और राज्य के दायित्वों की सीमाओं को स्पष्ट किया तथा संविधान को जीवंत बनाए रखने में अहम भूमिका निभाई। इसी प्रकार शिक्षा के मूल अधिकार को लेकर मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक वाद प्रसिद्ध है।

उपलब्धियां –

1. भारतीय लोकतंत्र निरन्तर मजबूत होता जा रहा है। भारत में निरन्तर चुनावों और शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांरण ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत का संविधान एक जीवंत और गतिशील संविधान है, साथ ही विश्व का सबसे बड़ा का संविधान भी है। संविधान में हर समस्या का समाधान विद्यमान है।
2. भारत की न्यायपालिका ने संवैधानिक अधिकारों की रक्षा में निर्णायक भूमिका का निर्वहन किया है। न्यायपालिका न केवल संविधान की रक्षा करने का कार्य कर रही है अपितु नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा भी कर रही है।
3. संविधान के विभिन्न प्रावधानों यथा आरक्षण, शिक्षा का अधिकार और सरकार की लोक कल्याणकारी नीतियों ने सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में कार्य में भी प्रगति हुई है।
4. संविधान में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के द्वारा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का कार्य हुआ है। स्थानीय स्वशासन का विस्तार हुआ है। और शासन के तीसरे स्तर का भी निर्माण हुआ है।
5. उदारीकरण के बाद नीतियों ने भारत की वैश्विक अर्थव्यवस्था में पहुंच को सहज बनाया है और देश निरन्तर उन्नति के पथ पर गतिशील है।

चुनौतियां :

1. भारतीय संविधान समतामूलक समाज की स्थापना करता है, परन्तु फिर भी सामाजिक असमानता और जातिगत विभाजन की समस्या अभी भी बनी हुई है।
2. न्यायिक मामलों में लगने वाला लंबा एक चिंताजनक विषय है।

3. लोकतांत्रिक संस्थाओं पर भी कभी–कभी विश्वसनीयता के सवाल उठते है।
4. संवैधानिक ढांचे के भीतर पर्यावरण क्षरण की भावना को मजबूत करना होगा, तभी पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हो सकते है।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान विश्व का सबसे विस्तृत और लिखित संविधान है। भारतीय संविधान में हर प्रकार के प्रावधान विद्यमान है। भारतीय संविधान जीवंत संविधानों की श्रेणी में आता है। भारतीय संविधान लचीलेपन और कठोरता का मिश्रण है। भारतीय संविधान अब तक 105 संशोधन हो चुके है, जो यह बताते है कि समयानुसार जैसी भी आवश्यकता होती है। इसमें निरन्तर बदलाव होते रहे है। भारतीय संविधान के 75 वर्षों की यात्रा गौरवशाली होने के साथ–साथ चिंतन और सुधार की माँग भी करती है। संविधान ने एक विशाल लोकतंत्र को स्थिर, समावेशी और न्यायपरक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परन्तु आने वाले दशक में डिजिटल अधिकार, पर्यावरणीय अनिश्चितता, सामाजिक असमानता और संस्थागत विश्वास के क्षरण जैसे मुद्दे हमें सक्रिय रूप से संबोधित करने होंगे। अंततः संविधान एक "जीवित दस्तावेज" है; इसकी परिपक्वता इस पर निर्भर करेगी कि हम इसे केवल पढ़ें नहीं, बल्कि समझें, व्याख्यायित करें और समय के अनुरूप उसे संवर्धित करते रहें। आने वाले वर्षों में इसे और अधिक समावेशी, पारदर्शी और जिम्मेदार बनाना हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. Austin, Granville. The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford University Press, 1966.
2. Austin, Granville. Working a Democratic Constitution: The Indian Experience. Oxford University Press, 1999.
3. Seervai, H. M. Constitutional Law of India. 4th ed., Universal Law Publishing, 2013.
4. Pylee, M. V. India's Constitution. 16th ed., S. Chand Publishing, 2006.
5. Rao, B. S. The Framing of India's Constitution: A Study. Indian Institute of Public Administration, 1967.
6. Noorani, A. G. Constitutional Questions in India: The President, Parliament, and the Judiciary. Oxford University Press, 2000.
7. Bhambhri, C. P. Indian Politics Since Independence. Oxford University Press, 2007.
8. Laxmikanth, M. Indian Polity. 7th ed., McGraw Hill Education, 2021.
9. Kashyap, S. C. Our Constitution. National Book Trust, 2019.
10. Kashyap, S. C. Our Parliament. National Book Trust, 2018.
11. Sharma, B. A. V. Modern Indian Constitution. Macmillan India, 2005.
12. बसु (Hindi), डी. डी. भारतीय संविधान का परिचय। LexisNexis, 2020.
13. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, 2015

14. जितेन्द्र कुमार बोयल, "मै भारत का संविधान हूँ" खबर गवाह, साप्ताहिक, जयपुर।
15. बृजकिशोर शर्मा, भारत का संविधान एक परिचय, पियरर्सन पब्लिकेशन नई दिल्ली 2015
16. डॉ. कविता चौकसे, मौलिक अधिकार – संवैधानिक उपचारों का अधिकार, शोधपत्र।
17. Indira Gandhi National Open University. Political Science Study Material. IGNOU, 2015–2024.
18. Government of India. Constitution of India. Ministry of Law and Justice, Government of India, 1950.
19. Constituent Assembly Debates. Lok Sabha Secretariat, 1946–1949.
20. Ministry of Finance. Economic Survey of India. Government of India, 1991–2024.
21. NITI Aayog. Annual Report. NITI Aayog, Government of India, 2015–2024.
22. PRS Legislative Research. PRS Legislative Research. PRS India, 2024.
23. Press Information Bureau. Press Information Bureau Releases. Government of India, 2024.
24. Supreme Court of India. Judgments Database. Supreme Court of India, 2024.
25. Kesavananda Bharati v. State of Kerala. (1973) 4 SCC 225.
26. Indira Nehru Gandhi v. Raj Narain. (1975) Supp. SCC 1.
27. Maneka Gandhi v. Union of India. (1978) 1 SCC 248.
28. Minerva Mills Ltd. v. Union of India. (1980) 3 SCC 625.
29. S. R. Bommai v. Union of India. (1994) 3 SCC 1.
30. K. S. Puttaswamy v. Union of India. (2017) 10 SCC 1.

EMAIL-shivkarannirmal@gmail.com
Mob.-- 7597359036

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 16–18

भारतीय संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

Adv. Ankit Malik
VPO Jui Kalan, Bhiwani (Haryana)

शोध सारांश :

किसी भी देश का संविधान उसकी राजनीतिक व्यवस्था का बुनियादी सांचा–ढांचा निर्धारित करता है, जिसके अंतर्गत उसकी जनता शासित होती है। यह राज्य की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे प्रमुख अंगों की स्थापना करता है, उसकी शक्तियों की व्याख्या करता है, उनके दायित्वों का सीमांकन करता है और उनके पारस्परिक तथा जनता के साथ संबंधों का विनियमन करता है। इस प्रकार किसी देश के संविधान को उसकी ऐसी 'आधार' विधि (कानून) कहा जा सकता है, जो उसकी राजव्यवस्था के मूल सिद्धातों को निर्धारित करती है। वस्तुतः प्रत्येक संविधान उसके संस्थापकों एवं निर्माताओं के आदर्शों, सपनों तथा मूल्यों का दर्पण होता है। वह जनता की विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रकृति, आस्था एवं आकांक्षाओं पर आधारित होता है। किसी भी देश का संविधान उसकी राजनीतिक व्यवस्था का बुनियादी सांचा–ढांचा निर्धारित करता है, जिसके अंतर्गत उसकी जनता शासित होती है। भारतीय संविधान का निर्माण करने वाली संविधान सभा का गठन कैबिनेट मिशन द्वारा वर्ष 1946 को किया गया था। तथा संविधान सभा द्वारा इसे 26 नवंबर 1949 को अंगीकार किया गया और 26 जनवरी 1950 को पूरे भारत में इसे प्रभावी रूप से लागू किया गया। जब इसे लागू किया गया था, उस वक्त इसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद, और 9 अनुसूचियां थी। जिसमें वर्तमान में 25 भाग, 448 अनुच्छेद, 12 अनुसूचियां हैं। भारत में नये गणराज्य के संविधान का शुभारंभ 26 जनवरी, 1950 को हुआ और भारत अपने लंबे इतिहास में प्रथम बार एक आधुनिक संस्थागत ढांचे के साथ पूर्ण संसदीय लोकतंत्र बना। यह राज्य की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे प्रमुख अंगों की स्थापना करता है, उसकी शक्तियों की व्याख्या करता है, उनके दायित्वों का सीमांकन करता है और उनके पारस्परिक तथा जनता के साथ संबंधों का विनियमन करता है। इस प्रकार किसी देश के संविधान को उसकी ऐसी 'आधार' विधि (कानून) कहा जा सकता है, जो उसकी राजव्यवस्था के मूल सिद्धातों को निर्धारित करती है। वस्तुतः प्रत्येक संविधान उसके संस्थापकों एवं निर्माताओं के आदर्शों, सपनों तथा मूल्यों का दर्पण होता है। वह जनता की विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रकृति, आस्था एवं आकांक्षाओं पर आधारित होता है।

मूल शब्द :– लोकतंत्र, गणराज्य, विनिमय, राजव्यवस्था।

प्रस्तावना :–

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी 26 नवंबर को 'संविधान दिवस' मनाया गया। साथ ही, यह वर्ष भारत

की स्वतंत्रता के 75 वर्ष पूरे होने के कारण भी महत्त्वपूर्ण है। ऐसे में भारत की नई पीढ़ी को संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि के संबंध में अवगत कराना आवश्यक है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

सर्वप्रथम वर्ष 1938 में जवाहरलाल नेहरु ने किसी बाहरी हस्तक्षेप के भारत के संविधान का निर्माण व्यस्क मताधिकार के आधार पर चुनी हुई संविधान सभा द्वारा किये जाने की माँग की वर्ष 1946 में संविधान सभा का गठन हुआ। लगभग 3 वर्ष पश्चात 26 नवंबर, 1949 को संविधान बनकर तैयार हुआ। 26 जनवरी, 1950 को संविधान पूर्ण रूप से लागू किया गया। विदित है कि 26 जनवरी को ही वर्ष 1930 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने नेहरू की अध्यक्षता में 'पूर्ण स्वराज' की घोषणा की थी।

संविधान निर्माण की विकास प्रक्रिया :

संविधान सभा में नेहरु ने 'उद्देश्य प्रस्ताव' पेश किया। इसमें संवैधानिक संरचना के ढाँचे एवं उसके दर्शन की झलक थी। इसी आधार पर प्रस्तावना का निर्माण किया गया और संविधान में स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय जैसे विचार शामिल किये गए। नेहरु यूरोपीय पुनर्जागरण, अमेरिका की स्वतंत्रता और फ्रांसीसी क्रांति के विचारों से काफी प्रभावित थे जिसकी झलक संविधान में भी दिखाई पड़ती है। संविधान में सामाजिक समानता की अवधारणा को शामिल करने में डॉ. आंबेडकर का योगदान महत्त्वपूर्ण है जो भारतीय समाज के लिये परिवर्तनकारी साबित हुआ। उन्हें हिंदू समाज में व्याप्त संरचनात्मक विषमता और दर्शन की गहरी समझ थी। आंबेडकर का विचार था कि भारत के संविधान का निर्माण विश्व के विभिन्न संविधानों को छानने के बाद किया गया है। उन्होंने राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांत को संविधान की अनूठी विशेषता माना है जो कल्याणकारी राज्य की स्थापना करता है।

विधायिका की जवाबदेहिता :

संविधान की प्रस्तावना 'हम भारत के लोग' से प्रारंभ होती है अर्थात संविधान का निर्माण भारत के लोगों ने ही अधिनियमित किया है। अतः देश की संप्रभुता जनता में ही निहित है तथा सरकार का प्रत्येक अंग इनके प्रति जवाबदेह है। संसदीय शासन की कैबिनेट प्रणाली में कार्यपालिका, विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। विधायिका लोगों का प्रतिनिधित्त्व करती है अतरू सरकार निर्माण में जनता की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

न्यायिक जवाबदेहिता :

संविधान निर्माताओं ने विधायिका और कार्यपालिका की तरह न्यायपालिका पर जवाबदेहिता का बोझ नहीं डाला है। इस प्रकार, जवाबदेहिता के संबंध में राज्य के अन्य अंगों की तुलना में न्यायपालिका की संवैधानिक स्थिति स्पष्ट है। न्यायपालिका का उत्तरदायित्व लोगों के साथ न्याय करना है अतरू इसे एक स्वतंत्र संस्था बनाया गया है, जो कार्यपालिका व विधायिका के प्रति जवाबदेह नहीं है। अनुच्छेद 142 पूर्ण न्याय की अवधारणा की स्थापना करता है। इसके तहत शीर्ष अदालत विशेष परिस्थितियों में कोई आदेश पारित कर सकता है। केशवानंद भारती वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने संवैधानिक भावनाओं को बरकरार रखने के लिये 'बुनियादी ढाँचे का सिद्धांत' प्रतिपादित किया। र, संविधान का विकास भारतीयता के अनुरूप हुआ है। संविधान संशोधन के लिये माध्यम मार्ग इसके लचीलेपन का उदाहरण है।

निष्कर्ष :–

भारतीय संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि यह स्पष्ट करती है कि भारत का संविधान किसी एक दिन में नहीं

बना, बल्कि यह लंबे संघर्ष, विविध राजनीतिक आंदोलनों, सामाजिक सुधारों, विचारधाराओं और आजादी के लिए चले अनेक चरणों का परिणाम है। ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों, सामाजिक असमानताओं और लोकतांत्रिक अधिकारों की कमी ने भारतीयों को एक ऐसे शासन तंत्र की आवश्यकता का एहसास कराया जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व सुनिश्चित हो सके। संविधान निर्माण की प्रक्रिया ने भारत की सांस्कृतिक विविधता, सामाजिक वास्तविकताओं, ऐतिहासिक अनुभवों और आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धांतों को संतुलित रूप से एक साथ जोड़कर एक मजबूत और समावेशी ढांचा तैयार किया। संविधान सभा ने अनेक बहसों, विचार–विमर्श और समझौतों के बाद ऐसा दस्तावेज निर्मित किया जो न केवल देश की तत्कालीन जरूरतों को पूरा करता है, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध होता है। इस प्रकार, संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि का निष्कर्ष यह है कि भारतीय संविधान भारत की स्वतंत्रता संघर्ष की विरासत, सामाजिक चेतना, लोकतांत्रिक आकांक्षाओं और राष्ट्रीय एकता का समन्वित और उत्कृष्ट प्रतिफल है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. ग्रैनविल ऑस्टिन (2015). द इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन : कॉर्नरस्टोन ऑफ अ नेशन. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. ए. जी. नूरानी (2010) सवैधानिक प्रश्न और नागरिक अधिकार. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. एच. एम. सीरवाई (2013). भारतीय संवैधानिक कानून. यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग।
4. पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च – संविधान का इतिहास।
5. ऑस्टिन, ग्रैनविल. (1966). द इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
   पायली, एम. वी. (2003) इंडिया'स कॉन्स्टिट्यूशन. एस. चंद एंड कंपनी।
6. संविधान सभा वाद–विवाद (1946–1950). भारत सरकार।
   कपूर, अशोक. (1990). इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस में प्रकाशित "भारतीय संविधान का ऐतिहासिक संदर्भ"।
7. भार्गव, राजीव. (2006). "भारत में संवैधानिक धर्मनिरपेक्षता", इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकल।

Adv. Ankit Malik

Address :- VPO Jui Kalan, Bhiwani (Haryana)

PIN Code : 127030

Mobile No : 9992727930

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 19-23

संविधान और महिला सशक्तिकरण

आसिफ अहमद, शोध–छात्र
डॉ. मो. शाहिद, प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान, गनपत सहाय पी0 जी0 कॉलेज, सुलतानपुर (उ0 प्र0)

भूमिका :-

भारतीय संविधान केवल शासन की एक रूपरेखा नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और समानता का एक जीवंत दस्तावेज है। यह एक प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसका उद्देश्य उन सभी बाधाओं को दूर करना है जो व्यक्तियों को उनकी पूरी क्षमता का एहसास करने से रोकती हैं। इस संदर्भ में, भारतीय संविधान महिला सशक्तिकरण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभरता है। यह न केवल महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार प्रदान करता है, बल्कि राज्य को उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार के लिए सकारात्मक कदम उठाने का अधिकार भी देता है।

संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत मिलकर एक ऐसा ढाँचा तैयार करते हैं जो लैंगिक समानता को बढ़ावा देता है। अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता सुनिश्चित करता है, जबकि अनुच्छेद 15 लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव पर रोक लगाता है। विशेष रूप से, अनुच्छेद 15(3) राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है, जो महिला सशक्तिकरण के लिए सकारात्मक कार्रवाई का आधार है। इसी तरह, अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार में समान अवसर प्रदान करता है। इन संवैधानिक गारंटियों ने ही भारत में महिला सशक्तिकरण की नींव रखी है, जो उन्हें सदियों के पूर्वाग्रह और असमानता से उबरकर विकास की मुख्यधारा में शामिल होने का अधिकार और अवसर प्रदान करता है।

भारतीय समाज प्राचीन काल से ही विविधताओं से परिपूर्ण रहा है। यहाँ नारी को कभी शक्ति, सृजन और संस्कार की प्रतीक माना गया, तो कभी उसे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से हाशिए पर भी रखा गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब भारत ने एक आधुनिक लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में अपने संविधान को अंगीकार किया, तब उसमें समानता, स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांतों को सर्वोपरि स्थान दिया गया। संविधान निर्माताओं ने यह सुनिश्चित किया कि भारत की हर नागरिक, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, समान अधिकारों और अवसरों की हकदार हो। महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य केवल अधिकार प्राप्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उस प्रक्रिया को भी दर्शाता है, जिसके माध्यम से महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकें। भारतीय संविधान ने इस दिशा में सशक्त आधार प्रदान किया है।

भारतीय संविधान में महिला सशक्तिकरण से जुड़े प्रमुख प्रावधान :–

मौलिक अधिकारों के अलावा, संविधान में कई अन्य प्रावधान हैं जो सीधे तौर पर महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देते हैं :–

राजनीतिक सशक्तिकरण :

73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों ने एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए पंचायती राज संस्थानों और शहरी स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए कम से कम एक–तिहाई सीटों का आरक्षण सुनिश्चित किया। इस प्रावधान ने जमीनी स्तर पर लाखों महिलाओं को राजनीतिक नेतृत्व और निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल होने का अवसर दिया है।

आर्थिक अधिकार :

राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों के तहत, अनुच्छेद 39(क) राज्य को सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्रदान करने का निर्देश देता है, और अनुच्छेद 39(घ) पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए 'समान काम के लिए समान वेतन' के सिद्धांत पर जोर देता है। इसके अलावा, अनुच्छेद 42 राज्य को काम की न्यायसंगत और मानवीय दशाओं को सुनिश्चित करने तथा प्रसूति सहायता के लिए प्रावधान करने का निर्देश देता है, जिसके आधार पर मातृत्व लाभ अधिनियम जैसे कानून बनाए गए हैं।

गरिमा और सुरक्षा का अधिकार :

अनुच्छेद 23 मानव तस्करी और जबरन श्रम पर रोक लगाता है, जिसका शिकार अक्सर महिलाएं होती हैं। इसके अलावा, भारतीय दंड संहिता में संशोधन और घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम (2005) जैसे कानूनों ने महिलाओं को हिंसा और शोषण के खिलाफ कानूनी सुरक्षा प्रदान की है। ये सभी प्रावधान संविधान की उस मूल भावना को दर्शाते हैं जो महिलाओं को न केवल समान अधिकार देता है, बल्कि उनके उत्थान और सशक्तिकरण के लिए एक मजबूत आधार भी प्रदान करता है।

संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर विधिक सशक्तिकरण :–

संविधान ने महिलाओं को कानूनी रूप से भी सशक्त किया है। अनुच्छेद 39। 'समान न्याय और निःशुल्क कानूनी सहायता' का प्रावधान करता है, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि कोई भी नागरिक आर्थिक या किसी अन्य अक्षमता के कारण न्याय पाने से वंचित न रह जाए। इसी संवैधानिक भावना के तहत, महिलाओं को कानूनी सुरक्षा प्रदान करने के लिए कई विधान बनाए गए हैं, जैसे कि दहेज निषेध अधिनियम (1961), कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम (2013), और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (2005 का संशोधन), जिसने बेटियों को पैतृक संपत्ति में बेटों के बराबर अधिकार दिया है।

भारतीय न्यायपालिका ने संवैधानिक प्रावधानों की प्रगतिशील व्याख्या करके महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (1997) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए दिशा–निर्देश जारी किए, जिसने बाद में 2013 के अधिनियम का आधार तैयार किया। शायरा बानो बनाम भारत संघ (2017) मामले में, तीन तलाक की प्रथा को असंवैधानिक घोषित किया गया, जो मुस्लिम महिलाओं के लिए एक बड़ी जीत थी। इसी तरह, सेना में महिलाओं को स्थायी कमीशन देने का निर्णय भी लैंगिक समानता की दिशा में एक मील का पत्थर है।

सशक्त संवैधानिक और कानूनी ढांचे के बावजूद, महिला सशक्तिकरण की राह में कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। पितृसत्तात्मक मानसिकता, सामाजिक मानदंड, कानूनों के बारे में जागरूकता की कमी और उनका अप्रभावी कार्यान्वयन प्रमुख बाधाएँ हैं। महिलाओं के खिलाफ अपराध की उच्च दर और राजनीति तथा उच्च आर्थिक पदों पर उनका कम प्रतिनिधित्व यह दर्शाता है कि अभी एक लंबा सफर तय करना बाकी है। भविष्य के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें कानूनों के प्रभावी कार्यान्वयन, न्यायिक प्रणाली को और अधिक संवेदनशील बनाने, शिक्षा और जागरूकता अभियानों के माध्यम से सामाजिक मानसिकता में बदलाव लाने और महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए कौशल विकास पर ध्यान केंद्रित करना शामिल है।

महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थिति :–

संवैधानिक और कानूनी प्रयासों के परिणामस्वरूप, आज भारत में महिला सशक्तिकरण की स्थिति में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, हालाँकि यह तस्वीर विरोधाभासी भी है। एक ओर, महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में, 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसी योजनाओं से लड़कियों के सकल नामांकन अनुपात में वृद्धि हुई है। महिलाएं अब विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित (STEM) जैसे क्षेत्रों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। आर्थिक रूप से, स्वयं सहायता समूहों (SHGs) और 'मुद्रा योजना' जैसी पहलों ने महिलाओं को उद्यमी बनने में मदद की है। सशस्त्र बलों में महिलाओं को लड़ाकू भूमिकाओं में शामिल किया जाना एक और ऐतिहासिक उपलब्धि है। हाल ही में पारित 'नारी शक्ति वंदन अधिनियम', जिसके तहत लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है, राजनीतिक सशक्तिकरण की दिशा में एक मील का पत्थर है। इसके बावजूद, दूसरी ओर की तस्वीर उतनी उज्ज्वल नहीं है। यह प्रगति शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों तथा विभिन्न सामाजिक–आर्थिक वर्गों के बीच असमान है।

आज भारतीय महिलाएँ शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, खेल, उद्योग, सेना और प्रशासन जैसे सभी क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका निभा रही हैं। राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री, मंत्री और सांसद के रूप में महिलाओं की संख्या निरंतर बढ़ी है। शैक्षिक क्षेत्र में बेटियों की साक्षरता दर 1951 में मात्र 8.86% थी जो अब 70% से अधिक हो चुकी है। आर्थिक दृष्टि से महिलाएँ स्व–रोजगार, उद्यमिता और स्वरोजगार योजनाओं के माध्यम से आत्मनिर्भर बन रही हैं। डिजिटल सशक्तिकरण और सेल्फ हेल्प ग्रुप्स (SHGs) के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं में भी जागरूकता बढ़ी है। फिर भी, जमीनी स्तर पर लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा, यौन अपराध, असमान वेतन और सामाजिक पूर्वाग्रह जैसी समस्याएँ आज भी बनी हुई हैं।

प्रमुख चुनौतियाँ :–

इन उल्लेखनीय उपलब्धियों के बावजूद, महिला सशक्तिकरण की राह सीधी नहीं है। संवैधानिक सुरक्षा और कानूनी सुधारों के बावजूद, जमीनी हकीकत कई गंभीर चुनौतियों को उजागर करती है जो लैंगिक समानता के लक्ष्य को पूरी तरह से साकार होने से रोकती हैं। ये चुनौतियाँ बहुस्तरीय और आपस में जुड़ी हुई हैं :–

सुरक्षा और हिंसा :

महिलाओं के खिलाफ हिंसा, जिसमें घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, एसिड अटैक और साइबर धमकी शामिल है, एक गंभीर चिंता बनी हुई है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आंकड़े लगातार इस चिंताजनक प्रवृत्ति को दर्शाते हैं, जो महिलाओं के लिए एक सुरक्षित वातावरण बनाने की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित

करते हैं।

आर्थिक असमानता :

महिला श्रम बल भागीदारी दर (LFPR) पुरुषों की तुलना में काफी कम है। महिलाओं को अक्सर असंगठित क्षेत्र में कम वेतन वाली नौकरियों में काम करना पड़ता है और उन्हें 'समान काम के लिए समान वेतन' के सिद्धांत का उल्लंघन झेलना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, अवैतनिक घरेलू और देखभाल के काम (Unpaid care work) का अधिकांश बोझ महिलाओं पर ही होता है, जो उनकी आर्थिक प्रगति में बाधक बनता है।

स्वास्थ्य और पोषण :

महिलाओं का स्वास्थ्य और पोषण एक महत्वपूर्ण चुनौती बना हुआ है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, महिलाओं में कुपोषण और एनीमिया (रक्ताल्पता) का उच्च स्तर व्याप्त है, जिसका सीधा असर मातृ मृत्यु दर (MMR) और शिशु मृत्यु दर (IMR) पर पड़ता है। सामाजिक मानदंडों के कारण अक्सर महिलाएँ परिवार में सबसे अंत में भोजन करती हैं, जिससे उन्हें पौष्टिक आहार नहीं मिल पाता। इसके अतिरिक्त, गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं, विशेष रूप से प्रजनन और मातृत्व स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच अभी भी एक बड़ी चुनौती है, जो उनके समग्र कल्याण को प्रभावित करती है।

डिजिटल विभाजन :

21वीं सदी में डिजिटल साक्षरता सशक्तिकरण का एक प्रमुख साधन है, लेकिन यहाँ भी महिलाएँ पीछे हैं। पुरुषों की तुलना में महिलाओं की इंटरनेट और मोबाइल प्रौद्योगिकी तक पहुँच काफी कम है। इसके पीछे डिजिटल साक्षरता की कमी और सामाजिक मानदंड जैसे कारण हैं जो महिलाओं को प्रौद्योगिकी का उपयोग करने से रोकते हैं। यह डिजिटल खाई उन्हें ऑनलाइन शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, वित्तीय सेवाओं और नए आर्थिक अवसरों से वंचित करती है, जिससे वे विकास की मुख्यधारा से और अलग–थलग हो जाती हैं।

सामाजिक और पितृसत्तात्मक मानदंड :

गहरी जड़ें जमा चुकी पितृसत्तात्मक मानसिकता आज भी लड़कियों की शिक्षा, करियर के चुनाव और व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बाधा डालती है। बाल विवाह और बेटे को प्राथमिकता देने जैसी प्रथाएँ अभी भी समाज के कई हिस्सों में मौजूद हैं, जो लैंगिक समानता के लक्ष्य को कमजोर करती हैं।

सुधार के उपाय :–

इन चुनौतियों से निपटने और महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए एक बहुआयामी, एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

शिक्षा प्रणाली में सुधार : स्कूली पाठ्यक्रम में लैंगिक समानता और सम्मान जैसे मूल्यों को शामिल करना।

जागरूकता अभियान : पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती देने के लिए मीडिया और सामुदायिक स्तर पर व्यापक अभियान चलाना, जिसमें पुरुषों और लड़कों को सक्रिय रूप से शामिल किया जाए।

आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा : महिलाओं को आधुनिक बाजार की जरूरतों के अनुसार कौशल प्रशिक्षण प्रदान करना, विशेष रूप से प्रौद्योगिकी और उद्यमिता के क्षेत्र में।

वित्तीय समावेशन : महिला उद्यमियों के लिए ऋण और वित्तीय सहायता तक पहुँच को आसान बनाना।

अवैतनिक काम की पहचान : अवैतनिक घरेलू और देखभाल के काम के बोझ को कम करने के लिए नीतियों का निर्माण, जैसे कि सस्ती और गुणवत्तापूर्ण चाइल्डकेयर सुविधाओं का विस्तार।

कानूनी और संस्थागत मजबूती : महिलाओं की सुरक्षा से संबंधित कानूनों का सख्ती से और बिना देरी के कार्यान्वयन सुनिश्चित करना।

संवेदनशील न्याय प्रणाली : पुलिस और न्यायपालिका को लैंगिक मुद्दों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाने के लिए नियमित प्रशिक्षण देना। महिलाओं के खिलाफ अपराधों के लिए फास्ट–ट्रैक अदालतों की संख्या बढ़ाना।

राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि : निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के लिए नेतृत्व और शासन कौशल पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना ताकि वे अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से निभा सकें।

निर्णायक भूमिकाओं में प्रोत्साहन : महिलाओं को केवल आरक्षित सीटों तक सीमित न रखकर पार्टी संगठन और सरकार में महत्वपूर्ण पदों पर प्रोत्साहित करना।

स्वास्थ्य और डिजिटल समावेशन : ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में महिलाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं, विशेष रूप से प्रजनन स्वास्थ्य, की उपलब्धता सुनिश्चित करना।

डिजिटल साक्षरता : महिलाओं के बीच डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए विशेष कार्यक्रम चलाना ताकि वे डिजिटल अर्थव्यवस्था और सूचना तक पहुँच का लाभ उठा सकें।

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः, भारतीय संविधान महिला सशक्तिकरण के लिए एक दूरदर्शी और व्यापक आधार प्रदान करता है। यह केवल कानूनों का संग्रह नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति का घोषणा–पत्र है जिसने भारतीय महिलाओं को सदियों की अधीनता से निकालकर समानता और सम्मान के एक नए युग में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त किया है। संवैधानिक प्रावधानों के कारण ही आज महिलाएं शिक्षा, राजनीति, विज्ञान और सशस्त्र बलों जैसे हर क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही हैं। हालाँकि, संवैधानिक आदर्शों और सामाजिक वास्तविकता के बीच एक खाई बनी हुई है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा, आर्थिक असमानता और गहरी जड़ें जमा चुकी पितृसत्तात्मक सोच यह दर्शाती है कि केवल कानून बनाना ही पर्याप्त नहीं है। संवैधानिक लक्ष्यों की पूर्ण प्राप्ति के लिए एक समग्र दृष्टिकोण आवश्यक है, जिसमें कानूनों के प्रभावी कार्यान्वयन के साथ–साथ सामाजिक मानसिकता में क्रांतिकारी परिवर्तन भी शामिल हो। जब तक हर महिला अपने संवैधानिक अधिकारों का पूरी तरह से उपयोग करने में सक्षम नहीं हो जाती और भयमुक्त होकर सम्मान के साथ नहीं जी सकती, तब तक यह संघर्ष जारी रहेगा। संविधान वह मशाल है जो इस मार्ग को रोशन करती है, और इसे जलाए रखने की जिम्मेदारी हम सभी की है ताकि लैंगिक समानता का सपना एक जीवंत वास्तविकता बन सके।

संदर्भ :–

1. भारत का संविधान, डॉ. भीमराव अम्बेडकर (प्रमुख निर्माता)
2. भारत सरकार, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट।
3. शुक्ल, वी0 एन0, भारतीय संविधान का विश्लेषण।
4. नेहरू, इंदिरा, महिलाओं की स्थिति पर विचार।
5. यूनिसेफ रिपोर्ट– Women Empowerment in India, 2023
6. भारत का पंचायती राज और महिला भागीदारी, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
7. राव, के0, Gender Equality and Indian Constitution, 2020

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 24–31

भारतीय संविधान निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : एक नए युग का निर्माण

डॉ. रमेश राम
सहा. प्रा. (अतिथि व्याख्याता) राजनीति विज्ञान विभाग,
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय चंपावत परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)

सार –

संविधान सभा की कार्य प्रणाली की प्रारंभ से अंत तक एक प्रमुख विशेषता यह रही की सभी सदस्यों को अभिव्यक्ति का पूरा अवसर दिया गया तथा विभिन्न मतों को सभी स्तरों पर गंभीरता और सच्चाई के साथ विचारा गया। प्रारूप समिति की ओर से डॉ. अंबेडकर, अल्लादी कृष्णास्वामी, टी. कृष्णाचारी, के. एम. मुंशी आदि ने कटु से कटु आलोचनाओं का बड़े धैर्य एवं गंभीरतापूर्वक संतुलन के साथ उत्तर दिया तथा विभिन्न अनुच्छेदों की आवश्यकतानुसार विशद व्याख्या की और उनके निहितार्थों को साफ–साफ समझाने का प्रयास किया। संविधान सभा में नेताओं की बराबर कोशिश यही रही की समन्वय एवं समझौते के भावना से ही कार्य हो तथा निर्णय बहुमत के आधार पर नहीं, बल्कि आम राय के आधार पर लिया जाए। इसी का परिणाम था कि आज जो संविधान बना है उसे संविधान सभा की ही नहीं अपितु विस्तृत जनमत की भारी सहमति और स्वीकृति प्राप्त थी।

कूट शब्द – संविधान, इतिहास, निर्माण, परिस्थितियां, स्वतंत्रता, विकास, जनसहमति, वाद–विवाद और जनमत आदि।

"आइये, इस देश में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करने का संकल्प करें।"[1]

जब प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होगा और उसे अपनी प्रतिभा के पूरे विकास के तथा अपनी पूरी सामर्थ्य तक ऊँचा उठने के साधन उपलब्ध होंगे।

जब गरीबी और गन्दगी, अज्ञान और बीमारी दूर हो गई होंगी।

जब न केवल धर्म के विश्वास, प्रतिपादन और व्यवहार की पूरी स्वतंत्रता होगी, बल्कि धर्म ऐसी संयोजक शक्ति बन आएगा जो अशांति और विच्छेद, विभाजन और अलगाव पैदा करने के बजाए मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़े।

जब मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अंत हो जाएगा।

जब भारत की आदिमजातियों को तथा उन सबको, जो पिछड़े हुए हैं और सबकी बराबरी में लाने के लिए विशेष सुविधाओं का आयोजन किया जाएगा।

जब इस देश में न केवल करोड़ों भारतीयों का पेट भरने के लिए पर्याप्त अन्न होने लगेगा, बल्कि एक बार फिर दूध की नदियां बहने लगेंगी।

जब देश के नर–नारी खेतों और कारखानों में हंसते–हंसते काम किया करेंगे।

जब हर झोंपड़े और पल्ली में घरेलू धन्धों का मधुर संगीत गूंजता होगा और साथ–साथ युवतियां अपने मीठे सुर अलापती होंगी।

जब सूरज और चंद्रमा इस देश के सुखी घरों और हंसते हुए चेहरों पर चमकेंगे। राजेन्द्र प्रसाद 15 अगस्त 1947।

संविधान निर्माण की प्रकिया :

संविधान निर्माण के संबंध में संविधान सभा ने जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया वह संक्षेप में यही थी कि सबसे पहले उन्होंने उद्देश्य प्रस्ताव के रूप में अपने विचारार्थ विषय निर्धारित किए। उद्देश्य प्रस्ताव ही आगे चलकर प्रस्तावना का आधार बना। इसके बाद संविधान सभा ने संविधानिक समस्या के संबंध समितियां नियुक्त की। अधिकांश समितियों के अध्यक्ष या तो नेहरू थे या फिर सरदार पटेल। संविधान सभा के अध्यक्ष के अनुसार इन दो महारथियों ने ही संविधान के मूल सिद्धांत तय किए। सभी समितियों ने महत्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किए यही प्रतिवेदन प्रारूप संविधान के लिए आधार बने। समिति के सदस्य एवं अन्य सदस्यों ने प्रारूप संविधान के एक–एक अनुच्छेद एवं प्रत्येक वाक्य, शब्द पर गहराई से विचार–विमर्श एवं विवेचन पर बहस हुई। परिणाम यह हुआ कि प्रारूप संविधान का आकार बहुत बढ़ गया, जो पहला प्रारूप तैयार किया उसमें 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां थी। प्रारूप समिति ने जो पहला संविधान तैयार किया उसमें 305 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थी। साथ ही दूसरा वाचन समाप्त होते–होते अनुच्छेदों की संख्या 386 हो गई। दूसरे वाचन के बाद जब संविधान अंतिम रूप में स्वीकार हुआ तब 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थी।

पंजाब के सिख स्थानों को छोड़कर और देशभर से सारे स्थानों के लिए 1946 में संविधान सभा के निर्वाचन हो चुके थे। कांग्रेस चाहती थी कि संविधान सभा शीघ्र ही अपना काम शुरू करे तथा संविधान–निर्माण के मामले में बिल्कुल भी देरी न की जाए। अतः जुलाई में ही जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की और उसे यह काम सौंपा कि यह संविधान सभा के लिए सामग्री जुटाए और संविधान का प्रारूप तैयार करे। इस समिति के अध्यक्ष स्वयं जवाहरलाल नेहरू थे और अन्य सदस्य थे– आसफअली, कन्हैयालाल माणिकलाल, मुंशी हुमायुन कबिर, के. सन्थानम, डी. आर. गाडगिल, के. टी. शाह और एन. गोपालस्वामी आयंगर। इस समिति की बैठकें 20 जुलाई से 22 जुलाई तक और 15 अगस्त से 17 अगस्त तक हुई। इन बैठकों में संविधान–सभा के कार्य–संचालन के लिए आवश्यक प्रक्रिया तय की गई। इसके अनुसार सबसे पहले अस्थाई या कार्यवाहक अध्यक्ष का निर्वाचन होना था, फिर विभिन्न विषयों पर कुछ समितियां बनाई जानी थीं और उसके बाद संविधान के उद्देश्यों का निर्माण किया जाना था और उन्हें एक प्रस्ताव के रूप में रखा जाना था। यह सब प्रारंभिक कार्य पूरा किए जाने के बाद विशेषज्ञ समिति से श्री नेहरू ने कहा कि वह किसी प्रारूप संविधान के बारे में चिंता न करे बल्कि प्रारूप नियमों और संविधान सभा के उद्देश्यों के संबंध में प्रारूप प्रस्तावों को जो उन्होंने स्वयं तैयार किए थे, अंतिम रूप दे।[2]

प्रथम अधिवेशन और औपचारिक कार्य :

संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन 9 दिसंबर, 1946 को प्रातः 11 बजे नई दिल्ली में वर्तमान संसद–भवन के केंद्रीय कक्ष सेंटल हाल में प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम कांग्रेस के अध्यक्ष आचार्य कृपलानी खड़े हुए और उन्होंने संविधान–सभा के अस्थाई अध्यक्ष पद के लिए सदन के सबसे वयोवृद्ध सदस्य डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा का नाम पेश किया। आचार्य कृपलानी ने कहा कि डॉ. सिन्हा संविधान–सभा के सबसे वयोवृद्ध सदस्य ही नहीं अपितु देश के सबसे संसदज्ञ भी हैं।[3]

डॉ. सिन्हा को सर्वसम्मति से अस्थाई अध्यक्ष चुन लिया गया। अपने उद्घाटन भाषण में डॉ. सिन्हा की कार्यवाही की सफलता के लिए दैवी वरदानों का आवाहन किया और दूसरे देशों में हुए संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि का उल्लेख किया। इसके बाद सदस्यों ने अपने प्रत्यय–पत्र पेश किए तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किए। यह काम आगे भी तीन–चार दिन तक चलता रहा, किंतु पहले दिन ही 208 सदस्यों ने अपने प्रत्यय–पत्र पेश कर दिए थे।[4]

11 दिसंबर 1946 को कांग्रेस के तपे हुए नेता डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान–सभा के स्थाई अध्यक्ष निर्वाचित हुए। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के नाम का किसी ने विरोध नहीं किया और 'इन्कलाब–जिन्दाबाद' और जयहिन्द' के नारों के बीच मौलाना अबुल कलाम आजाद और आचार्य कृपलानी ने उन्हें सम्मानपूर्वक अध्यक्ष के आसन तक पहुंचाया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को बधाई देते हुए डॉ. राधाकृष्णन् ने उन्हें देश का 'तपस्वी सेवक' तथा 'भारत की आत्मा का मूर्त रूप' बताया। कई सदस्यों ने अपने बधाई–भाषणों में मुस्लिम लीग से अपील की कि वह भी संविधान–सभा में भाामिल होकर संविधान–निर्माण के काम में सहयोग दे।[5] ही बधाइयों का उत्तर देते हुए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी कहा :– ''मुस्लिम लीग के हमारे भाई हमारे साथ नहीं हैं और उनकी अनुपस्थिति से हमारा उत्तरदायित्व और बढ़ जाता है। हम आशा करते हैं कि वे शीघ्र ही आएगें और अपना यथोचित स्थान ग्रहण करेंगे और संविधान निर्माण की कार्यवाही में संभागी बनेंगे।''[6]

इसी भाषण में संविधान – सभा के अध्यक्ष ने यह भी कहा कि प्रारंभ से संविधान–सभा के गठन में कुछ अंतर्विरोध निहित थे जिनका स्पष्टीकरण स्वयं सभा को राजनीतिक निर्णयों के द्वारा करना होगा। उन्होंने कहाः– ''मुझे मालूम है कि जन्म से ही इस संविधान सभा पर कुछ सीमाएं आरोपित कर दी गई हैं। अपनी कार्यवाही के बीच अथवा निर्णय लेते समय न तो हम उन सीमाओं को भूल सकते हैं और न ही उनकी अवहेलना कर सकते हैं किंतु, मुझे यह भी मालूम है कि इन सब सीमाओं के बावजूद संविधान सभा एक स्व–शासित और स्वाधीन संस्था है, जो अपने निर्णय स्वयं लेती है तथा जिसकी कार्यवाही में बाहर की कोई सत्ता हस्तक्षेप नहीं कर सकती तथा जिसके निर्णयों को सभा के बाहर से कोई भी नकार नहीं सकता, बदल नहीं सकता, उलट नहीं सकता।''[7]

अध्यक्ष द्वारा प्रक्रिया नियम समिति के निर्विरोध निर्वाचित सदस्यों की घोषणा करने के साथ ही, संविधान –निर्माण का कार्य प्रारंभ करने से पहले, संविधान सभा ने अधिकांश औपचारिक कार्य निपटा लिए। पंडित नेहरू के शब्दों में ''यह कार्य कुछ इस प्रकार के थे जैसे कि किसी भू–भाग पर विशाल और भव्य प्रासाद का निर्माण करने के लिए वहां के झांड़–जंखाड़ साफ कर दिए जाएं और उस भूमि को समतल और सपाट कर दिया जाए।

उद्देश्य प्रस्ताव :

संविधान–निर्माण की दिशा में सबसे पहला काम था जवाहरलाल नेहरू द्वारा 1 दिसंबर को संविधान सभा में प्रस्तुत उद्देश्य प्रस्ताव। संविधान–सभा के लिए यह आवश्यक था कि संविधान–निर्माण की ऐतिहासिक यात्रा प्रारंभ करने से पूर्व वह अपने ध्येय और लक्ष्य देश की जनता के तथा संसार के अन्य देशों के सामने स्पष्ट कर दे। संसार की सभी संविधान सभाओं ने संविधान–निर्माण का श्रीगणेश करते समय अपने लक्ष्यों की घोषणा करना आवश्यक समझा था। भारतीय संविधान सभा के लिए ऐसा करना और भी अधिक आवश्यक समझा था। भारतीय संविधान सभा के लिए ऐसा करना और भी अधिक आवश्यक था क्योंकि जिस समय 9 दिसंबर 1946 को सभा की पहली बैठक आरंभ हुई, देश के राजनीतिक वातावरण में, जहां एक ओर अभूतपूर्व उत्साह, दृढ़ संकल्प और नव–निर्माण की अदम्य आकांक्षाओं से जागृत राष्ट्र–मानस था, वहां दूसरी ओर अनिश्चय, संदेह और असमंजस के बादल भी घिरे हुए थे। प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए श्री नेहरू ने कहा– ''यह उचित मालूम पड़ता है कि आगे बढ़ने से पहले हम स्पष्ट रूप से यह समझ लें कि हम किधर जा रहे हैं और हम क्या निर्माण करना चाहते हैं।

स्पष्ट है कि इस तरह के अवसरों पर विस्तृत विवरण अनावश्यक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इमारत बनाते समय आप प्रत्येक ईट का अच्छी तरह सोच–विचार करने के बाद उपयोग करेंगे। सामान्य रूप से जब कोई इमारत बनाना चाहता है तब उसके लिए जरूरी हो जाता है कि वह उस इमारत का नक्शा तैयार करे और फिर जरूरी साज–सामान जुटाए। बहुत समय से हम स्वतंत्र भारत के बहुत से नक्शे अपने मनों में बनाते आ रहे थे किंतु अब जब हम वास्तविक कार्य प्रारंभ कर रहे हैं, आप मानेंगे कि यह आवश्यक है कि हम अपने सामने, देश के सामने तथा विस्तृत विश्व के सामने इस नक्शे का एक स्पश्ट चित्र रखें। मैं आपके सामने जो प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहा हूं उसमें हमारे उद्देश्यों की व्याख्या की गई है। योजना की रूपरेखा दी गई है और बताया गया है कि हम किस रास्ते पर चलने वाले हैं।''[8]

जवाहरलाल नेहरू का यह ऐतिहासिक भाषण उनके जीवन के सबसे महत्वपूर्ण सुंदर एवं प्रभावशाली भाषणों में से है। अतीत की स्मृतियां जैसे उनके मन में उमड़ आई थीं, भावी के स्वप्न जैसे साकार हो आए थे और इस सबके साथ ही उन्हें बोध या वर्तमान के धर्म का, उस समय की कितनी ही जटिल समस्याओं के बोझ का, अपने भारी कर्तव्य और उत्तरदायित्व का। उन्होंने आगे कहा–

''यहां बोलते हुए मैं चतुर्दिक व्याप्त स्मृतियों और समस्याओं के बोझ से अपने को बोझिल अनुभव करता हूं। हम लोग एक युग को समाप्त कर संभवतः बहुत शीघ्र ही एक नए युग में प्रवेश करने वाले है। मेरा ध्यान आज भारत के महान अतीत की ओर उसके पांच हजार वर्ष के इतिहास की ओर जाता है। उसके इतिहास के प्रारंभ से जो मानव इतिहास का प्रारंभ माना जा सकता है। आज तक का सारा इतिहास हमारी आंखों के सामने है। वह समस्त अतीत आज हमारे चतुर्दिक है और हमें आनंद और जीवन प्रदान कर रहा है, पर साथ ही साथ यह सोचकर मुझे कुछ वेदना भी होती है कि क्या हम उस अतीत के योग्य हैं। शक्तिशाली अतीत तथा और भी अधिक शक्तिशाली भविष्य के बीच स्थित वर्तमान की तलवार की धार पर खड़े होकर जब मैं भविष्य की सोचता हूं, उस भविष्य की, जो मुझे विश्वास है कि अतीत से महत्तर है तो अपने महान कार्यभार से अभिभूत और भयभीत हो जाता हूं। भारतीय इतिहास के अद्भूत अवसर पर हम यहा समवेत हुए हैं। इस परिवर्तन क्षण में, प्राचीन युग से नवीन युग में प्रविष्ट होने के इस परिवर्तन काल में मुझे कुछ विस्मय सा मालूम होता है, वैसा ही विस्मय जैसा

रात से दिन होने में मालूम होता है। हो सकता है दिन मेघाच्छिन्न हो पर है तो आखिर दिन। बादल फटेंगे और प्रकाश अवश्य होगा।''[9]

जिस उद्देश्य प्रस्ताव के माध्यम से भारतीय क्रांति के जनकों ने देश को यह बताने का प्रयास किया कि उनके लक्ष्य क्या हैं, वे देश को किस सांचे में ढ़ालना चाहते हैं, किस ओर ले जाना चाहते हैं, उनका मसौदा जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं तैयार किया था। यह प्रस्ताव एक प्रकार से प्रभुत्व संपन्न लोकतंत्रात्मक भारतीय गणराज्य की जन्मपत्री था। प्रस्ताव में कहा गया था–[10]

1. ''यह संविधान सभा अपने इस दृढ़ और गंभीर संकल्प की घोषणा करती है कि वह भारत को एक स्वतंत्र प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य घोषित करेगी और उसके भावी शासन के लिए एक ऐसे संविधान की रचना करेगी।
2. जिसके अंतर्गत वे राज्य क्षेत्र जो ब्रिटिश भारत के अंतर्गत आते हैं, वे राज्य–क्षेत्र जो अब देशी राज्यों के अंतर्गत आते है और भारत के ऐसे अन्य भाग जो ब्रिटिश भारत के बाहर हैं और ऐसे राज्य तथा राज्य–क्षेत्र जो स्वतंत्र प्रभुत्व सम्पन्न भारत के भीतर सम्मिलित होने के लिए प्रस्तुत हैं, आपस में मिलकर एक संघ के रूप में गठित होंगे।
3. जिनके अंतर्गत उपर्युक्त राज्य क्षेत्र जिनमें चाहे तो उनकी वर्तमान सीमाएं सम्मिलित हो या अन्य ऐसी सीमाएं सम्मिलित हो जिनका संविधान सभा भविष्य में संविधान की विधि के अनुसार निर्णय करे, स्वायत्तंशासी एककों की सत्ता से संपन्न होंगे और उसे बनाए रखेंगे। उनके पास अवशिष्ट शक्तियां होगी और वे सरकार तथा प्रशासन की सारी शक्तियों का प्रयोग करेंगे तथा उनके सारे कार्य करेंगे। इसके अपवाद केवल वे शक्तियां और कार्य होगें जो संघ में विहित हो या संघ को सौंपे गए हों।
4. जिसके अंतर्गत प्रभुत्व संपन्न और स्वतंत्र भारत की, उसके अंगभूत भागों और शासन के अंगों की समूची शक्ति और सत्ता जनता से प्राप्त हुई हों।
5. जिसके अंतर्गत विधि तथा सार्वजनिक नैतिकता के अधीन रहते हुए भारत के सभी लोगों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थिति और अवसर की तथा विधि के संमुख समानता की विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, और कार्य की गारंटी दी जाएगी और उन्हें प्राप्त किया जाएगा।
6. जिसके अंतर्गत अल्पसंख्यकों, पिछड़े हुए और कबाइली क्षेत्रों तथा दलित और अन्य पिछड़े हुए वर्गों के लिए उपयुक्त परित्राणों की व्यवस्था की जाएंगी और
7. जिसके अंतर्गत न्याय तथा सभ्य राष्ट्रों की विधि के अनुसार गणराज्य के राज्य–क्षेत्रों की अखंडता की और जल, समुद्र तथा आकाश पर उसके प्रभुता अधिकारों की रक्षा की जाएगी और
8. यह प्राचीन देश संसार में अपना न्यायपूर्ण और सम्मान्य स्थान प्राप्त करेगा और विश्वशांति तथा मानव जाति के कल्याण के उन्नयन के लिए अपना पूर्ण तथा सहर्ष योग देगा।''

प्रस्ताव ने तथा जवाहरलाल नेहरू के प्रेरणादाई भाषण ने संविधान सभा पर जादू का सा असर किया तथा उसके मानस क्षितिज पर भविष्य के प्रति दुविधा और किंकर्तव्यविमूढ़ता का जो कुहरा छाया हुआ था, वह एकबारगी छंट गया तथा उसके स्थान पर आशा, उल्लास तथा संकल्प की प्रकाशमई किरणें जगमगा उठी।

जवाहरलाल नेहरू ने सभासदों से जोरदार शब्दों में अपील की कि वे प्रस्ताव पर कानूनी शब्दजाल की

संकुचित भावना से विचार न करें, अपितु उसके मूल में जो भावनाएं हैं– जिनसे किसी को भी मतभेद नहीं हो सकता–उन्हें सामने रखकर विचार करें और श्रद्धाभाव से प्रस्ताव को स्वीकार करें तथा यह स्पष्ट कर दें कि– ''हम स्वाधीन भारत के संविधान का निर्माण करने के लिए कृतसंकल्प हैं और चाहें जितनी भी बाधाएं और कठिनाईयां आएं, कितना ही लंबा संघर्ष हो और कितने ही नए संघर्ष सामने आए, हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते ही जाएंगें चाहें इस भवन में हो या अन्यत्र, मैदान में, बाजार में कहीं भी समवेत होकर तब तक अपना काम करते जाएंगें, जब तक कि उसे पूरा न कर लें।''

13 दिसंबर से 19 दिसंबर 1946 तक संविधान सभा ने उद्देश्य प्रस्ताव पर कुल आठ दिन विवाद–विचार किया। प्रस्ताव के संबंध में अनेक संशोधन प्रस्तुत किए गए लेकिन सबसे महत्वपूर्ण संशोधन डॉ. एम. आर. जयकार का था जो उन्होंने 16 दिसंबर 1946 को प्रस्तुत किया था और जिसमें कहा गया था कि जब तक मुस्लिम लीग और देशी राज्यों के प्रतिनिधि संविधान सभा में शामिल न हो जाएं, तब तक इस प्रस्ताव पर विचार उठाए रखा जाए।[11] 21 जनवरी, 1946 को प्रस्ताव पर अगले अधिवेशन तक के लिए विचार स्थगित कर दिया गया।[12] मुस्लिम लीग को इस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए एक महीना मिल गया पर उसने संविधान सभा में सम्मिलित होना पसंद नहीं किया। इस स्थिति में संविधान सभा ने और आगे प्रतीक्षा करना निरर्थक समझा तथा 22 जनवरी 1947 को ''अवसर की गंभीरता और प्रस्ताव में की गई प्रतिज्ञा की महानता का स्मरण करते हुए।''[13] बड़ी संजीदगी के साथ संविधान सभा में सदस्यों ने खड़े होकर सर्वसम्मति से इस प्रस्ताव को पास किया।[14] इससे पहले 20 नवम्बर 1946 को सारतः यही प्रस्ताव कांग्रेस के खुले मेरठ अधिवेशन में पास हो चुका था।

समितियों का निर्माण :

संविधान निर्मात्री सभा ने कुछ समितियां नियुक्त कीं जिन्हें संविधान के विभिन्न पक्षों पर आवश्यक कार्य सौंपा गया। वे प्रमुख समितियां थीं– (1) संघ संविधान समिति (यूनियन कॉस्टीट्यूशन कमेटी) (2) प्रांतीय संविधान–समिति (प्रोविन्शियल) (3) संघ शक्ति–समिति (यूनियन पावर्स कमेटी) (4) मूल अधिकारों, अल्पसंख्यकों आदि से संबंधित परामर्श–समिति (5) प्रारूप समिति आदि। देशी राज्यों के प्रतिनिधित्व और संविधान सभा में भाग लेने के बारे में नरेश मंडल की वार्ता–समिति से बातचीत के लिए एक वार्ता–समिति 21 दिसंबर 1946 को ही बना दी गई थी। इनमें अनेक समितियों के अध्यक्ष पं. नेहरू थे या सरदार बल्लभभाई पटेल। संविधान के इस प्रारूप में अनेक आदर्शवादी और व्यावहारिक तथा प्रशासनिक और तकनीकी प्रकृति की धाराओं का समावेश हुआ।[15] डॉ. भीमराव अंबेडकर प्रारूप समिति के अध्यक्ष बनाए गए।[16]

संविधान-निर्माण में संविधान-सभा की भूमिका :

संविधान का पहला प्रारूप, सांविधानिक परामर्शदामा बेनेगल नरसिंहराव की देखरेख में संविधान सभा के सचिवालय की परामर्श शाखा ने अक्टूबर 1947 में तैयार किया। इस प्रारूप के पहले संविधान सभा के सचिवालय ने तीन जिल्दों में संसार के विभिन्न संविधानों से पूर्व दृष्टांत एकत्र कर उन्हें संविधान सभा के सदस्यों में वितरित कर दिया तथा संसार के 50 देशों के संविधानों के कार्यकारी, विधायी, प्रक्रिया संबंधी, प्रशासनिक तथा अन्य उपबंधों को तुलनात्मक रूप में संकलित किया गया। पूर्व दृष्टांतों का यह संकलन मुख्य रूप से दो समूहों में बंटा हुआ था–एक समूह में आस्टेलिया, कनाडा, आयरलैंड जैसे ब्रिटिश राष्ट्रमंडलीय देशों की सांविधानिक रूपरेखा थी तथा दूसरे समूह में अन्य देशों, यथा–डेंजिक, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका सोवियत

समाजवादी गणराज्य संघ के सांविधानिक उपबंध दिए गए थे। विभिन्न देशों में राज्य के प्रधान, मूल अधिकारों, अल्पसंख्यकों को दिए जाने वाले परित्राणों, प्रतिनिधित्व पद्धतियों और द्वितीय सदनों के विषय में सहायक सामग्री भी दी गई थी। जब संविधान का पहला प्रारूप तैयार हो गया, तब संविधान सभा के अध्यक्ष ने सांविधानिक परामर्शदाता बेनेगल नरसिंहराव को संसार के प्रमुख संविधान शास्त्रियों से विचार–विनिमय करने के लिए अमेरिका, कनाडा, आयरलैंड और ब्रिटेन भेजा। उन्होंने अक्टूबर और दिसंबर 1947 के बीच इन देशों की यात्रा की और अपने विचार–विमर्शों के परिणामों का एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।[17]

29 अगस्त 1947 को संविधान सभा ने प्रारूप समिति की नियुक्ति की, 30 अगस्त को सभा हुई, इसके तदनन्तर 141 दिन तक होती रहीं जिनमें संविधान के विभिन्न स्वरूपों की रचना की गई। प्रारूप संविधान को फरवरी 1948 में संविधान सभा के अध्यक्ष को भेजा। इसके प्रकाशित होने के बाद उसमें संशोधन के लिए आए सुझावों पर विचार–विमर्श किया गया और 26 अक्टूबर 1948 को प्रारूप संविधान का एक पुनर्मुद्रित संस्करण संविधान सभा के अध्यक्ष को दिया गया। प्रारूप–समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 4 नवंबर 1948 को अपने प्रारूप संविधान को संविधान–सभा के विचारार्थ प्रस्तुत किया। 15 नवंबर 1948 से प्रारूप संविधान पर विचार आरंभ हुआ जो संविधान सभा के सातवें, आठवें, नवें और दसवें अधिवेशनों में 17 अक्टूबर 1948 तक चलता रहा। प्रारूप संविधान पर संविधान–सभा के सचिवालय को लगभग 7–8 हजार संशोधन पत्रों की सूचना मिली जिनमें से लगभग ढ़ाई हजार संशोधनों में संविधान–सभा में वाद–विवाद हुआ। 16 नवंबर 1949 को संविधान का 'द्वितीय वाचन' हुआ और अगले ही दिन संविधान का 'तीसरा वाचन' शुरू होकर 26 नवंबर को समाप्त हुआ। इसी दिन संविधान पर संविधान सभा के अध्यक्ष के हस्ताक्षर हुए और संविधान घोषित कर दिया गया।[18]

24 जनवरी 1950 को संविधान सभा का अधिवेशन हुआ जिसमें सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को नए संविधान के अनुसार भारतीय गणराज्य का प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित किया गया और 26 जनवरी 1950 से संविधान प्रभावी हो गया। गणराज्य के प्रतिष्ठापन के लिए यह तिथि इसलिए चुनी गई क्योंकि 26 जनवरी 1950 को ही कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में भारत की पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया था और तब से प्रतिवर्ष इस तिथि पर संपूर्ण देश में सभाएं कर वही प्रस्ताव निरन्तर दोहराए जाते रहे थे। यह काम 1947 तक चलता रहा जब तक कि भारत ने स्वाधीनता प्राप्त न कर ली।

संविधान-सभा में प्रक्रिया :

9 दिसंबर 1946 को संविधान–सभा ने अपनी कार्यवाही प्रारंभ की तो कार्य–संचालन और प्रक्रिया संबंधी उसके कोई नियम नहीं थे। 10 दिसंबर को अस्थाई नियमों की स्वीकृति के लिए प्रस्ताव करते समय पं. नेहरू ने कहा– ''यह संविधान सभा बाहर की किसी सत्ता के द्वारा बनाए गए किन्हीं नियमों, अधिनियमों के बिना आरंभ हुई है। इसे अपने नियमों का निर्माण स्वयं करना होगा।''[19] 10 दिसंबर को ही सभा ने प्रस्ताव पास करके स्थाई अध्यक्ष के निर्वाचन के लिए प्रक्रिया तय की और अस्थाई तौर पर केंद्रीय संविधान सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन संबंधी नियमों को स्वीकार किया। इसी दिन एक 'प्रक्रिया नियम समिति' बनाए जाने संबंधी प्रस्ताव भी पास कर दिया।[20] समिति को काम सौंपा गया कि वह प्रक्रिया संबंधी, अध्यक्ष की शक्तियों, संविधान सभा के कार्य संगठन और अधिकारियों की नियुक्ति, सभा के रिक्त स्थानों को भरने की प्रक्रिया आदि के बारे में सिफारिशें करे।

जब तक अंतिम रूप से नियमों का निर्माण न हो जाए तब तक के लिए अध्यक्ष द्वारा ही सदस्यों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते आदि निश्चित करना उपयुक्त समझा गया। समिति की बैठकें डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में हुई। 21 दिसंबर 1946 को उन्होंने रिपोर्ट सभा में पेश कर दी। 23 दिसंबर को सभा के पूर्ण अधिवेशन में 'संपूर्ण सदन की समिति द्वारा पारित नियमों' को स्वीकार कर लिया गया। संविधान सभा ने जिन प्रक्रिया नियमों को अपनाया उनकी संख्या 68 थी जो 12 अध्यायों में विभक्त थे। अतः संविधान–सभा की एक व्यवस्थित कार्य–प्रणाली थी, जिसके माध्यम से संविधान–निर्माण का कार्य संपादित हुआ।

निष्कर्षतः जैसा कि संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने 26 नवंबर 1947 को अपने समापन भाषण में कहा था ''संविधान सभा, कुल मिलाकर, एक ऐसे संविधान का निर्माण करने में सफल हुए जो देश व्यापक हितों में था। अब प्रश्न था इस संविधान के समुचित कार्यकरण का, क्योंकि ''अंततः संविधान अपने में मशीन की तरह जड़ है। इसको जीवन मिलता है उन लोगों के कारण जो इसकों क्रियान्वित और नियंत्रित करते हैं। आज भारत को सबसे अधिक आवश्यकता है तो बस थोड़े से ईमानदार आदमियों की जो देश के हित की भावना से प्रेरित होकर कार्य करें।''[21]

संदर्भ :-

1. सुभाश कश्यप, भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, पृ. 268
2. वी. शिवराज, द फेमिंग ऑफ इंडियाज कांस्टीट्यूशन, सेलेक्ट डाक्यूमेंट्स, जिल्द 1, पृ. 326–343
3. मुंशी पू. उ., पृ. 07–08
4. कॉन्स्टीटुएंट एसेम्बली डिवेट्स, जिल्द 1, पृ. 01–14
5. वही, पृ. 36–49
6. वही, पृ. 50
7. वही, पृ. 51
8. सुभाष कश्यप, भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, पृ. 271–272
9. कॉन्स्टीटुएंट एसेम्बली डिवेट्स, जिल्द 1, पृ. 55–56
10. सुभाष कश्यप भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, पृ. 273–274
11. कॉन्स्टीटुएंट एसेम्बली डिवेट्स, जिल्द 1, पृ. 55–56
12. वही पृ. 158–169
13. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा प्रयुक्त शब्द, वही, जिल्द 2, पृ. 303
14. वही, पृ. 304
15. ऑस्टिन, ग्रेनविले : द इंडियन कॉन्स्टिटयूशन, कॉर्नरस्टोन ऑफ अ नेशन, पृ. 315
16. हार्डग्रेव : इंडियन गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स इन अ डेवलपिंग नेशन, पृ. 45
17. सुभाष कश्यप : हमारा संविधान, पृ. 277
18. पी. के. घोष, भारत का संविधान इसे कैसे बनाया गया, पृ. 53
19. संविधान सभा वाद–विवाद खंड 1, पृ. 19
20. डॉ. आर. एन. त्रिवेदी, डॉ. एम. पी. राय, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पृ. 42
21. कॉन्स्टीटुएंट एसेम्बली डिवेट्स, जिल्द 11, पृ. 984–995

Email : aptech.ramesh1984@gmail.com, Mobilr No.7465967280

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 32–39

स्वतंत्रता आंदोलन और भारतीय संविधान निर्माण की प्रक्रिया : एक अध्ययन

प्रिन्स कुमार
यूजीसी–नेट–जेआरएफ, इतिहास
वरिष्ठ शोध अध्येता, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

सारांश :

स्वतंत्रता आंदोलन ने भारतीय संविधान निर्माण की प्रक्रिया को आकार दिया, जिसमें संविधान सभा ने स्वतंत्रता के मूल्यों को अपनाया और एक ऐसा संविधान तैयार किया जो सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकता को प्राथमिकता देता है। कैबिनेट मिशन द्वारा 1946 ई. में संविधान सभा का गठन किया गया, जिसने 26 नवंबर 1949 ई. को संविधान को अपनाया और 26 जनवरी 1950 ई. को लागू किया गया, जिसके बाद भारत एक गणतंत्र बना। संविधान सभा ने जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत उद्देश्य प्रस्ताव के आधार पर काम किया और विभिन्न बहस, चर्चाओं और समितियों के माध्यम से एक मसौदा तैयार किया, जिसमें डॉ. बी.आर. अंबेडकर की अध्यक्षता वाली प्रारूप समिति प्रमुख थी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान समानता, स्वतंत्रता और न्याय जैसे मूल्यों पर जोर दिया गया, जो संविधान की प्रस्तावना और मौलिक अधिकारों में प्रतिबिंबित होते हैं। धार्मिक भेदभाव को समाप्त करने और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनाने का आंदोलन का लक्ष्य संविधान में सभी नागरिकों को समान धार्मिक अधिकार देकर साकार किया गया। स्वतंत्रता संग्राम में नेताओं ने ब्रिटिश शासन के दौरान बनी राजनीतिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं को समझा, जिससे उन्हें अपनी संस्थाएं बनाने और चलाने का अनुभव मिला। 1946 ई. में संविधान सभा का चुनाव हुआ, जिसका मुख्य कार्य देश के लिए एक संविधान का मसौदा तैयार करना था। 13 दिसंबर, 1946 ई. को जवाहरलाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया, जिसमें भारत को एक संप्रभु गणराज्य घोषित किया गया और संविधान के निर्माण के लिए मार्गदर्शन सिद्धांत दिए गए। इसे 22 जनवरी, 1947 ई. को स्वीकार कर लिया गया। 29 अगस्त, 1947 ई. को डॉ. बी.आर. अंबेडकर की अध्यक्षता में प्रारूप समिति का गठन किया गया, जिसने संविधान का मसौदा तैयार किया। संविधान को 26 नवंबर, 1949 ई. को अपनाया गया और 26 जनवरी, 1950 ई. को लागू किया गया, जिसके बाद भारत एक गणतंत्र बना। स्वतंत्रता आंदोलन ने भारतीय संविधान के निर्माण में योगदान दिया, जिसने न्याय, समानता और स्वतंत्रता जैसे विचारों को स्थापित किया।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही संविधान निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो गई थी, और नेताओं ने ऐसे नेताओं को एक साथ लाया जो इन मूल्यों पर जोर देते थे। यह आंदोलन 1947 ई. में स्वतंत्रता के कई दशक पहले

शुरू हो गया था, और संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता के दौरान भारत के लोगों के लिए एक ऐसा दस्तावेज तैयार किया जिसमें उनके मूल्यों और आकांक्षाओं को शामिल किया गया।

मुख्य शब्द : स्वतंत्रता आंदोलन, भारतीय संविधान, संविधान सभा, सामाजिक न्याय, राष्ट्रीय एकता।

शोध आलेख

प्रस्तावना :

स्वतंत्रता आंदोलन और संविधान निर्माण में मुख्य बातें स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, न्याय और समानता के मूल्य और विभिन्न संस्थाओं के विकास पर आधारित है। ब्रिटिश शासन के अनुभव, जैसे कि 1935 का भारत सरकार अधिनियम, ने संविधान के कई पहलुओं को प्रभावित किया। आंदोलन से निकले विचारों जैसे कि न्याय, समानता और स्वतंत्रता संविधान की नींव बने और संविधान सभा के सदस्यों ने इन सिद्धांतों को साकार करने का प्रयास किया। 200 से अधिक वर्षों के ब्रिटिश शासन के दौरान नेताओं ने अपनी राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं को समझा और उन पर प्रतिक्रिया दी। स्वतंत्रता आंदोलन ने न्याय, समानता और स्वतंत्रता के मूल्यों पर जोर दिया जो संविधान के मुख्य सिद्धांत बने। 1930 के दशक के बाद, आंदोलन ने एक मजबूत समाजवादी दृष्टिकोण अपनाया, जिससे आर्थिक विकास पर ध्यान केंद्रित हुआ। सरोजिनी नायडू और विजयलक्ष्मी पंडित जैसी महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और महिलाओं की मुक्ति को बढ़ावा दिया। 1946 ई. में संविधान सभा का चुनाव हुआ, जिसका कार्य एक नया संविधान बनाना था। संविधान के निर्माण के लिए कई समितियां बनाई गई, जिनमें संघ शक्ति समिति, संघ संविधान समिति, प्रांतीय संविधान समिति और प्रारूप समिति (जिसके अध्यक्ष डॉ. बी.आर. अंबेडकर थे) शामिल हैं। संविधान निर्माताओं ने 1935 के भारत सरकार अधिनियम जैसी पुरानी व्यवस्थाओं से कई संस्थाएं अपनाई जैसे कि संघीय व्यवस्था और संसदीय प्रणाली। संविधान निर्माताओं ने भारत के लिए क्या उपयुक्त है, यह सवाल पूछते हुए अन्य देशों के संविधानों से भी बहुत कुछ सीखा। संविधान का निर्माण एक लंबी और जटिल प्रक्रिया थी, जिसमें विभिन्न समूहों और हितों के बीच संतुलन बनाना पड़ा। आंदोलन के नेताओं ने केवल विशेषाधिकारों की नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की भी मांग की थी, जो संविधान के मूल सिद्धांतो में शामिल हुआ। भारत के संविधान को 26 नवंबर, 1949 ई. को अपनाया गया और 26 जनवरी 1950 ई. को लागू किया गया।

आत्मपरकता से स्वतंत्रता मुख्यतः दो तरीकों से प्राप्त की जा सकती है। एक तरीका नरमपंथ या उदारवाद का है, जिसके अनुसार, शासकों को प्रभावित किया जाना चाहिए जिससे कि स्वतंत्रता प्राप्त की जा सके। यह उपागम इस परिकल्पना पर आधारित है कि विदेशी शासक बुद्धिसंपन्न होते हैं और उन्हें उनके तरीके को बदलने के लिए राजी किया जा सकता है। दूसरा तरीका, उग्रवाद का है जिसमें विदेशी शासन के प्रभुत्व को समाप्त करने के लिए सरकार के विरुद्ध साहसिक या उग्र कार्य किए जाते हैं। इस उपागम के तहत यह माना जाता है कि औपनिवेशिक शासक इस तर्क के प्रति विनम्र नहीं हैं और वे स्वेच्छा से उन लाभों को छोड़ने के लिए कभी भी सहमत नहीं होंगे, जो औपनिवेशिक शासन ने उन्हें दिए थे। लाला लाजपत राय ने यह स्पष्ट किया कि नरम (उदार) और उग्र राष्ट्रवादियों के मध्य मूलभूत मतभेद था, जैसा कि दोनों के मौलिक सिद्धांत एक–दूसरे से भिन्न थे। उन्होंने यह घोषणा की कि भारतीय, नरम उपागमों का अनुसरण कर कभी भी स्वशासन

प्राप्त नहीं कर सकेंगे। औपनिवेशिक शासन को देश से बाहर निकालने और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए आंदोलन के और अधिक उग्र तरीकों की आवश्यकता होगी। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उग्र राष्ट्रवाद ने एक भिन्न चरण का प्रतिनिधित्व किया। इस चरण में राजनीतिक आंदोलन के नए तरीकों की शुरुआत की गई, और राष्ट्रवादी आंदोलन को एक व्यापक आधार प्रदान करने के लिए लोगों को जागरूक करने हेतु लोकप्रिय प्रतीकों को प्रकल्पित किया गया।

1600 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना और 1765 ई. में इसके व्यापारिक कंपनी से शासकीय निकाय में रूपांतरित होने तक भारतीय शासन एवं राजव्यवस्था पर इसके कुछ तात्कालिक प्रभाव पड़े। लेकिन 1773 ई. और 1858 ई. के मध्य तक कंपनी शासन और तत्पश्चात 1947 ई. तक ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन शासन का समय संवैधानिक, प्रशासनिक और न्यायिक परिवर्तनों को बाहुल्यता का साक्षी रहा है। हालांकि, इन परिवर्तनों की प्रकृति और उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी विचारधारा को पोषित करना था, लेकिन अनजाने में उन्होंने भारत की राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में आधुनिक राज्य के तत्वों का समावेश भी किया। स्वतंत्रता प्राप्ति 15 अगस्त, 1947 ई. के तुरंत बाद भारत में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का चरित्र बहुवर्गीय था। आंदोलन के नेताओं ने आमतौर पर प्रतिनिधिमूलक सरकार के उदारवादी लोकतांत्रिक सिद्धांतों, व्यवस्क मताधिकार, निर्वाचित संस्थाओं, कानून के शासन, स्वतंत्र न्यायपालिका और व्यक्तियों के समूह के लिए अधिकारों की वकालत की थी। इसके साथ–साथ विशेषतः 1930 ई. के बाद राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने स्वतंत्रता के सामाजिक पक्ष पर भी विचार करना आरंभ कर दिया था। इसके अंतर्गत निर्धनता उन्मूलन, अशिक्षा व रोगों को दूर करने, अमीर व गरीब के बीच की खाई को पाटने, शहरों व गांवों के मध्य दूरी समाप्त करने और समतामूलक–कल्याणकारी राष्ट्र निर्माण पर जोर दिया गया। भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं – महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू व सुभाष चंद्र बोस इत्यादि ने यह समझते हुए कि राजनीतिक स्वतंत्रता भारत के नागरिकों के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पुनरुद्धार का माध्यम है, राष्ट्रीय आंदोलन के स्वरूप में परिवर्तन लाने की कोशिश की। इसके साथ ही अमेरिका व पश्चिमी यूरोप के देशों के लोकतंत्र और समाजवाद की बढ़ती लोकप्रियता ने भी भारतीय नेताओं को आकृष्ट किया। इसी सन्दर्भ में स्वतंत्रता आंदोलन के लक्ष्यों व आदर्शों और जनता की आकांक्षाओं को समाहित करते हुए संविधान निर्माण हेतु संविधान सभा का गठन हुआ।

संविधान सभा की पृष्ठभूमि :

जब किसी प्रभुता सम्पन्न लोकतांत्रिक राष्ट्र द्वारा संविधान की रचना का कार्य उसकी जनता के प्रतिनिधि निकाय द्वारा किया जाता है, तो संविधान पर विचार करने तथा उसे स्वीकार करने के लिए जनता द्वारा चुने गए इस प्रकार के निकाय को 'संविधान सभा' कहा जाता है। पूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न राष्ट्रों में जहां कहीं भी लिखित संविधान हैं, उनका निर्माण जनता ने प्रायः संविधान सभाओं के माध्यम से ही किया है। संविधान सभा की प्रेरणा का स्त्रोत 17वीं और 18वीं शताब्दी की लोकतांत्रिक क्रांतियां हैं। इन क्रांतियों ने इस विचार को जन्म दिया कि शासन के मूलभूत कानूनों का निर्माण नागरिकों की एक विशिष्ट प्रतिनिधि सभा द्वारा किया जाना चाहिए।

भारत में संविधान सभा की परिकल्पना सदैव राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के साथ जुड़ी रही। भारत की संविधान सभा का निश्चित उल्लेख भले ही इन शब्दों में न किया गया हो किंतु भारत शासन अधिनियम, 1919

के लागू होने के पश्चात् 1922 ई. में महात्मा गांधी ने इस तथ्य का उल्लेख किया था। जनवरी 1925 ई. में दिल्ली में हुए सर्वदलीय सम्मेलन के समक्ष 'कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल' को प्रस्तुत किया गया, जिसकी अध्यक्षता महात्मा गांधी ने की थी। उल्लेखनीय है कि, भारत के लिए एक संवैधानिक प्रणाली की रूपरेखा प्रस्तुत करने का यह प्रथम प्रमुख प्रयास था।

19 मई, 1928 ई. को बंबई में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में भारत के संविधान के सिद्धांत निर्धारित करने के लिए मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में एक समिति गठित की गई। 10 अगस्त, 1928 ई. को प्रस्तुत की गई इस समिति की रिपोर्ट को 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से भी जाना जाता है। उल्लेखनीय है कि, संसद के प्रति उत्तरदायी सरकार, न्यायपालिका द्वारा प्रवर्तनीय मौलिक अधिकार, अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकार सहित मोटे तौर पर जिस संसदीय व्यवस्था की संकल्पना 1928 ई. की नेहरू रिपोर्ट में व्यक्त की गई थी, उसे लगभग ज्यों–का–त्यों 21 वर्ष बाद, 20 नवंबर, 1949 ई. को संविधान सभा द्वारा अंगीकृत स्वाधीन भारत के संविधान में समाविष्ट कर लिया गया। जून 1934 ई. में कांग्रेस कार्यकारिणी ने घोषणा की कि श्वेत–पत्र का एकमात्र विकल्प यह है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा द्वारा एक संविधान तैयार किया जाए। यह पहला अवसर था जब संविधान सभा के लिए औपचारिक रूप से एक निश्चित मांग प्रस्तुत की गई। 1940 ई. के 'अगस्त प्रस्ताव' में ब्रिटिश सरकार ने संविधान सभा की मांग को पहली बार आधिकारिक रूप से स्वीकार किया, भले ही यह स्वीकृति अप्रत्यक्ष तथा महत्वपूर्ण शर्तों के साथ थी। यद्यपि 1942 ई. का क्रिप्स मिशन पूर्णतः असफल सिद्ध हुआ, फिर भी उसमें संविधान सभा बनाने की बात को स्वीकार कर लिया गया था।

अंततः कैबिनेट मिशन, 1946 ई. द्वारा संविधान निर्माण के लिए एक बुनियादी ढांचे का प्रारूप प्रस्तुत किया गया। कैबिनेट मिशन ने संविधान–निर्माण निकाय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को कुछ विस्तारपूर्वक निर्धारित किया, जो इस प्रकार है :–

1. प्रत्येक प्रांत को और प्रत्येक देशी रियासत या रियासतों के समूह को अपनी जनसंख्या के अनुपात में कुल स्थान आवंटित किये गए। स्थूल रूप से 10 लाख के लिए एक स्थान का अनुपात निर्धारित किया गया। इसके परिणामस्वरूप प्रांतों को 292 सदस्य निर्वाचित करने थे, और देशी रियासतों को कम से कम 93 स्थान दिए गए।
2. प्रत्येक प्रांत के स्थानों को जनसंख्या के अनुपात के आधार पर तीन प्रमुख समुदायों में बांटा गया। ये समुदाय थे– मुस्लिम, सिख और साधारण ।
3. प्रांतीय विधानसभा में प्रत्येक समुदाय के सदस्यों को एकल संक्रमणीय मत से आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करना था।
4. देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के चयन की पद्धति परामर्श से तय की जानी थी। 3 जून, 1947 ई. को योजना के अंतर्गत विभाजन के परिणामस्वरूप पाकिस्तान के लिए एक पृथक संविधान सभा गठित की गई। बंगाल, पंजाब, सिंध, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, बलूचिस्तान और असम के सिलहट जिले, जो जनमत संग्रह द्वारा पाकिस्तान में सम्मिलित हुए थे, के प्रतिनिधि भारत की संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे। पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब के प्रांतों में नए निर्वाचन किए गए। परिणामस्वरूप, जब संविधान सभा

31 अक्टूबर, 1947 ई. को पुनः समवेत हुई, तो सदन की सदस्यता घटकर 299 हो गई। इसमें से 284 सदस्य 26 नवंबर, 1949 ई. को वास्तव में उपस्थित थे, और उन्होंने अंतिम रूप से पारित संविधान पर अपने हस्ताक्षर किए।

भारतीय संविधान का निर्माण अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित संवैधानिक सभा ने किया। संविधान सभा ने 9 दिसंबर, 1946 ई. को कार्य करना प्रारंभ किया। संविधान सभा का निर्माण देश की जनता की आशाओं और राष्ट्रीय आंदोलन की मांग– कि भारतीय संविधान का निर्माण ब्रिटिश संसद नहीं, बल्कि भारत की जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि करेंगे– की पराकाष्ठा थी। संविधान सभा सदस्य–संख्या की दृष्टि से एक काफी बड़ी सभा थी। कैबिनेट मिशन ने उसके सदस्यों की कोई अधिकतम संख्या निर्धारित नहीं की थी। कैबिनेट मिशन का प्रस्ताव था कि हर दस लाख की आबादी के लिए एक प्रतिनिधि होना चाहिए। चुनावों के पश्चात् अपनी निर्बल स्थिति देखकर मुस्लिम लीग ने संविधान सभा के बहिष्कार का निश्चय किया, तथा 9 दिसंबर, 1946 ई. को आहूत संविधान सभा के प्रथम अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने भाग नहीं लिया। लीग ने अब पाकिस्तान के लिए बिल्कुल पृथक् संविधान सभा की मांग करनी आरंभ कर दी। कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार द्वारा लीग को अपनी हठधर्मिता त्यागने हेतु किए गए सभी प्रयास निरर्थक सिद्ध हुए।

पाकिस्तान के निर्माण और मुस्लिम लीग द्वारा संविधान सभा के बहिष्कार के कारण सदस्य–संख्या कम हो गई। उसमें प्रांतों के केवल 235 और देशी रियासतों के 73 प्रतिनिधि रह गए। संविधान के अंतिम मूल मसौदे पर इन्हीं 308 सदस्यों ने हस्ताक्षर किए थे। जहां तक प्रांतों का प्रश्न है, उनके प्रतिनिधियों का चुनाव जुलाई 1946 ई. में प्रांतीय विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा हुआ। देशी राज्यों के आधे प्रतिनिधि राजाओं द्वारा मनोनीत किए गए और आधे जनता द्वारा चुने गये। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत के वयस्क स्त्री–पुरुषों ने प्रत्यक्ष रूप से सदस्यों को नहीं चुना। संविधान सभा में अल्पसंख्यक वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त था। इस प्रकार विभाजन के बाद जबकि देशी रियासतों के प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त संविधान सभा का गठन हो चुका था, अल्पसंख्यकों को 235 में से 88 अर्थात् 36 प्रतिशत प्रतिनिधित्व प्राप्त था, अनुसूचित जातियों के भी 33 सदस्य थे। संविधान सभा के सर्वाधिक प्रभावशाली सदस्य थे – डॉ. राजेंद्र प्रसाद, मौलाना आजाद, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, डॉ. अम्बेडकर, गोविंद वल्लभ पंत, एन.जी. आयंगर, कृष्णास्वामी अय्यर, के.एम. मुंशी, आचार्य कृपलानी तथा श्याम प्रसाद मुखर्जी। जब 9 दिसंबर, 1946 ई. को पहली बार संविधान सभा की बैठक हुई, तो जे.बी. कृपलानी तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष ने डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा संविधान सभा के सर्वाधिक वरिष्ठ सदस्य का नाम संविधान सभा के अस्थायी अध्यक्ष के लिए प्रस्तावित किया।

बाद में, 11 दिसंबर को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया। संविधान सभा ने संविधान निर्माण के लिए कई समितियों की नियुक्ति की। इन समितियों को अप्रैल–अगस्त 1947 ई. के बीच अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करने थे, और इनके आधार पर डॉ. बी.एन. राव जो संवैधानिक सलाहकार थे, को अक्टूबर 1947 ई. के अंत तक संविधान का प्रारूप सौंपना था। इस प्रारूप में 240 अनुच्छेद एवं 13 अनुसूचियां थी। इस प्रारूप संविधान पर विचार करने के क्रम में, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में एक प्रारूप समिति गठित की गई। इस समिति के सदस्यों में अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर, एन. गोपाला स्वामी आयंगर,

के.एम. मुंशी, सैयद मुहम्मद सादुल्ला, सर बी.एल. मिस्टर और डी.पी. खेतान शामिल थे। पहली बैठक के बाद बी.एल. मिटर ने त्यागपत्र दे दिया, जिनके स्थान पर एन. माधव राव को नामित किया गया तथा टी.टी. कृष्णमाचारी ने डी.पी. खेतान (1948 ई. में मृत्यु के कारण) का स्थान लिया। प्रारूप समिति ने संविधान का प्रथम प्रारूप तैयार किया। फिर इसे न्यायविदों, अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों एवं अन्य लोगों को टिप्पणी के लिए भेजा गया। उनकी टिप्पणियों एवं आलोचनाओं के परिप्रेक्ष्य में, प्रारूप समिति ने एक दूसरा प्रारूप तैयार किया जिसमें 315 अनुच्छेद तथा 9 अनुसूचियां थीं। यह दूसरा प्रारूप 21 फरवरी, 1948 ई. को संविधान सभा के सम्मुख रखा गया। सभा ने इस प्रारूप पर अनुच्छेदवार विचार किया। प्रारूप का तीसरा पठन 14 नवंबर को शुरू हुआ और 26 नवंबर, 1949 ई. को समाप्त हुआ। अंत में उद्देशिका को स्वीकार किया गया।

इस कार्य को पूरा होने में 2 वर्ष, 11 माह तथा 18 दिनों का समय लगा। 7,000 संशोधन प्रस्तावित किए गए जिनमें से 2,500 पर वास्तव में प्रारूप संविधान स्वीकार करने से पूर्व विचार–विमर्श हुआ। फिर डॉ. अम्बेडकर ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि संविधान सभा द्वारा अंततः स्वीकृत संविधान को पारित किया जाता है। 26 नवंबर, 1949 ई. को संविधान सभा में भारत के लोगों ने संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य भारत के संविधान को स्वीकृत, अंगीकृत एवं आत्मार्पित किया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, संविधान सभा के अध्यक्ष होने के नाते, दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए। संविधान सभा के सदस्यों ने 24 जनवरी, 1950 ई. को दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर किए, जो सभा का अंतिम दिन था। वस्तुतरू 284 सदस्यों ने संविधान पर हस्ताक्षर किए।

भारत के संविधान को प्रारूपित करने के अलावा, संविधान सभा ने 22 जुलाई, 1947 ई. को राष्ट्रीय ध्वज स्वीकार किया, और 24 जनवरी, 1950 ई.– सभा के सत्र का अंतिम दिन –को राष्ट्रीय गान तथा राष्ट्रीय गीत को अपनाया। संविधान सभा ने 24 जनवरी, 1950 ई. को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भारत के प्रथम राष्ट्रपति के तौर पर निर्वाचित किया। 14 अगस्त, 1947 ई. की शाम कॉन्स्टिट्यूशन हॉल में सभा की बैठक हुई, और मध्य रात्रि में इसने स्वतंत्र भारत की विधानमंडल का स्थान लिया। सभा 26 जनवरी, 1950 ई. से अस्थायी भारतीय संसद के रूप में कार्य करती रही जब तक कि प्रथम आम चुनाव के बाद नवीन संसद की स्थापना नहीं हो गई।

अध्ययन के उद्देश्य : प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य इस प्रकार है :

- स्वतंत्रता संग्राम के मूल्यों को संविधान में शामिल करना जैसे कि न्याय, समानता और स्वतंत्रता के सिद्धांत।
- सामाजिक न्याय और समानता सुनिश्चित करना इसके लिए सामाजिक–आर्थिक उत्थान और नागरिकों के अधिकारों का संरक्षण आवश्यक है जैसा कि कराची प्रस्ताव में उल्लिखित है।
- राष्ट्रीय एकता और बंधुत्व को बढ़ावा देना।
- भारतीयों को अपना संविधान बनाने का अधिकार देना।
- संविधान निर्माण के पीछे के गहन विचार–विमर्श और बहु–स्तरीय चर्चाओं को समझना।
- स्वतंत्रता संग्राम के मूल्यों, सामाजिक न्याय की अवधारणा और राष्ट्रीय एकता जैसे तत्वों को संविधान में कैसे एकीकृत किया गया, इसका अध्ययन करना।

परिकल्पना :

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "स्वतंत्रता आंदोलन और भारतीय संविधान निर्माण की प्रक्रिया : एक अध्ययन" है। शीर्षक के अनुरूप शोध आलेख में परिकल्पना को निर्धारित किया जा सकता है।

यह परिकल्पना करना कि स्वतंत्रता आंदोलन के आदर्शों जैसे स्वराज और अधिकारों की घोषणाओं को संविधान में कैसे समाहित किया जाएगा।

विभिन्न विचारधाराओं, सामाजिक वर्गों और हितों के बीच संतुलन स्थापित करना ताकि एक व्यापक और समावेशी संविधान बनाया जा सके।

एक ऐसी लोकतांत्रिक व्यवस्था की परिकल्पना करना जो सत्ता के दुरूपयोग को रोके और नागरिकों को अधिकार प्रदान करे।

भारतीय संविधान का निर्माण स्वतंत्रता संग्राम के आदर्शों को साकार करने के लिए किया गया था, जिसमें एक ऐसा लोकतांत्रिक और संघीय ढांचा स्थापित करना था जो नागरिकों को शासन करने की शक्ति प्रदान करे।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में मुख्य रूप से ऐतिहासिक विश्लेषण– जिसमें संविधान सभा के निर्माण की ऐतिहासिक यात्रा जैसे कि कैबिनेट मिशन द्वारा संविधान सभा का गठन और संविधान के निर्माण की प्रक्रियाओं का अध्ययनय दस्तावेज विश्लेषण– जिसमें उद्देश्य प्रस्ताव, संविधान के मसौदे, संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों और प्रस्तावना जैसे दस्तावेजों का विश्लेषणय तुलनात्मक विश्लेषण– जिसमें विचारधाराओं और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच संतुलन बनाने के प्रयासों का अध्ययन करनाय बहस और चर्चाओं का विश्लेषण– जिसमें संविधान सभा के सदस्यों के बीच हुई बहसों और चर्चाओं के माध्यम से संविधान के निर्माण की प्रक्रिया और उसमें निहित विचारों को समझना।

शोध समीक्षा :

यहां शोध समीक्षा इस प्रकार से किया गया है :

- यह सुनिश्चित करने के लिए कि संविधान में न्याय, स्वतंत्रता और बंधुत्व के उद्देश्य पूरी तरह से परिलक्षित हुए हैं।
- यह समीक्षा करना कि क्या संविधान में निहित सिद्धांत भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की मूल भावना के अनुरूप हैं।
- यह सुनिश्चित करना कि संविधान सभी समूहों के हितों और आकांक्षाओं को शामिल करता है।
- यह सुनिश्चित करना कि संविधान में शक्तियों का उचित विभाजन किया गया है और कोई एक संस्था निरंकुश नहीं है।

निष्कर्ष :

अतः यह कहा जा सकता है कि देश के वातावरण, जनता की आकांक्षाओं, राजनीतिज्ञों की सामाजिक पृष्ठभूमि और राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान विकसित विचारों के आधार पर संविधान सभा बहु–वैचारिक ढांचे के अंतर्गत काम कर रही थी। इसके साथ ही साथ प्रबल नेतृत्व के प्रभाव और सत्ता हस्तांतरण व विभाजन के बाद

उपजी प्रशासनिक समस्याओं के कारण देश का नेतृत्व संविधान सभा में आम राय कायम करने के प्रति सचेत था, इसलिए भारत की भावी राजव्यवस्था के बारे में संविधान सभा कई उद्देश्यों को सामने रख कर चली।

संदर्भ-ग्रंथ :

1. शुक्ल, रामलखन, आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण– 1987.
2. वर्मा, विमलेश कान्ति व मालतीय भाषा साहित्य और संस्कृति, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशित : वर्ष 2007.
3. चन्द्र, बिपिनय भारत का स्वतंत्रता संग्राम (1857–1947), पेंगुइन बुक्स, नई दिल्लीय वर्ष 1989.
4. पाण्डेय, डॉ. जय नारायण, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, प्रयागराज, प्रथम संस्करण– 1971.
5. लक्ष्मीकांत, एमय भारत की राजव्यवस्था, Mc Graw Hill Education (India) Private Limited, वर्ष 2009.
6. अहीर, राजीवय आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 1999.

ईमेल – princekumarboby@gmail.com

मोबाईल : 7970305599

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 40–45

ENVIRONMENTAL JUSTICE AND ARTICLE 14 : EVOLUTION OF EQUALITY IN ENVIRONMENTAL BURDENS IN THE CONSTITUTIONAL JOURNEY OF INDIA

Sakshi Singh
Research Scholar, Department of Legal Studies and Research, Barkatullah University, Bhopal.

ABSTRACT :

Environmental justice in India has emerged as a central constitutional concern as environmental degradation increasingly affects socio economically vulnerable communities who bear the brunt of pollution, displacement, and ecological harm. From a time when the Constitution contained no explicit reference to environmental protection, India has moved toward a jurisprudential framework where principles of equality, fairness, and non arbitrariness deeply shape environmental governance. Article 14, which guarantees equality before the law and equal protection

Environmental justice in India has undergone a remarkable transformation across the constitutional period beginning in 1950 and of the laws, has played a critical role in bridging environmental protection with constitutional justice. Environmental burdens in India have historically been distributed unevenly, with poorer communities, tribal groups, and socially vulnerable populations bearing the greatest hardship. Through a rich evolution of judicial doctrine, including the public trust doctrine, sustainable development, precautionary principle, and judicial scrutiny of resource allocation, Article 14 has expanded to address environmental inequality. This paper traces the long constitutional journey of environmental justice in India, illustrating how equality jurisprudence has evolved to confront environmental harm, structural discrimination, economic inequality, and climate vulnerability. The analysis further highlights ongoing challenges and proposes pathways for strengthening environmental equality in the years to come.

INTRODUCTION :

Environmental justice refers to the fair distribution of environmental benefits and burdens

across all segments of society. In India, environmental degradation disproportionately affects socio economically weaker sections of the population. These groups often live near polluted rivers, waste lands, toxic industries, and ecologically degraded zones. At the same time, wealthier communities frequently enjoy cleaner environments, better infrastructure, and safer habitats. This unequal distribution of environmental burdens raises important constitutional questions, particularly under Article 14. The framers of the Indian Constitution did not explicitly address environmental concerns. Environmental protection emerged gradually as a constitutional value through the combined force of judicial interpretation, legislative development, and social activism. Over time, Indian courts interpreted Article 14 not merely as a guarantee of formal equality but as a substantive tool to address structural inequalities, including environmental discrimination. This shift from formal to substantive equality lies at the heart of environmental justice. As India's constitutional jurisprudence evolved, the Court recognized that environmental rights are intertwined with human dignity, access to resources, and equal participation in decision making. Thus, environmental justice became a vital component of India's constitutional and democratic framework.

CONSTITUTIONAL FOUNDATIONS OF ENVIRONMENTAL EQUALITY :

Article 14 guarantees equality before the law and equal protection of the laws. Early judicial interpretations adopted a narrow view focused on reasonable classification. Over time, the Supreme Court introduced the principle of non arbitrariness, defining equality as fairness in state action. This principle became a powerful tool for evaluating environmental decisions. The constitutional foundations of environmental protection were strengthened through the 42nd Amendment in 1976, which introduced Articles 48A and 51A(g). Article 48A directs the State to protect and improve the environment, while Article 51A(g) imposes a duty on citizens to safeguard the natural world. Although these provisions are not enforceable in court, they provided interpretative support for integrating environmental protection with fundamental rights. Courts combined these constitutional directives with Articles 14 and 21 to develop a coherent rights based framework, expanding equality to include environmental fairness, protection from environmental harm, and equal access to natural resources.

EARLY JURISPRUDENCE AND FOUNDATIONAL PRINCIPLES :

The foundation of environmental justice in India was laid through landmark public interest litigation cases in the 1980s and 1990s. In Subhash Kumar v. State of Bihar, the Supreme Court recognized the right to clean water as part of the right to life. Although the case was framed under Article 21, it nonetheless highlighted issues of environmental discrimination. Similarly, in Olga Tellis v. Bombay Municipal Corporation, the Court acknowledged the intersection between poverty, livelihood, and environmental vulnerability. Slum dwellers facing displacement were not merely

encroachers but individuals whose lives were shaped by environmental and socio economic conditions. These early cases demonstrated that environmental protections could not be separated from questions of justice, fairness, and equality. They also laid the groundwork for Article 14 to emerge as a central pillar in environmental decision making, especially when state actions disproportionately harmed weaker social groups.

EXPANSION OF ARTICLE 14 IN ENVIRONMENTAL JURISPRUDENCE :

As jurisprudence matured, the Supreme Court explicitly invoked Article 14 in cases involving environmental inequality, arbitrary decision making, and uneven resource allocation. In Akhil Bharatiya Upbhokta Congress v. State of Madhya Pradesh, the Court held that state largesse could not be distributed arbitrarily, emphasizing the role of equality in resource allocation. Environmental resources such as rivers, forests, minerals, and land must be allocated in a manner consistent with fairness and equal protection. The Court further clarified in a series of decisions that environmental harms disproportionately affecting the poor violate principles of equality. In cases involving waste disposal, slum demolitions, and industrial pollution, the Court recognized that environmental burdens often fall hardest on communities with the least political influence and economic power. Article 14 therefore became a tool for examining environmental injustice arising from state policies, discriminatory land use planning, and unequal enforcement of laws.

ENVIRONMENTAL JUSTICE AS SUBSTANTIVE EQUALITY :

Substantive equality goes beyond equal treatment to address structural disadvantages. Environmental justice in India embodies this doctrine. Marginalised groups such as tribal communities, fisherfolk, forest dwellers, and agricultural workers face serious environmental threats to their livelihood and survival. In Samatha v. State of Andhra Pradesh, the Supreme Court protected tribal lands from being transferred to private mining companies, emphasizing that tribal groups deserve special protection from environmentally harmful activities. This case highlighted how environmental equality intersects with social justice. The Court also developed and applied major environmental doctrines, including sustainable development, which requires development decisions to account for environmental impacts on future generations. The precautionary principle, adopted in Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India, requires authorities to prevent environmental harm when there is scientific uncertainty. Together, these doctrines strengthened the ability of Article 14 to address environmental injustice by embedding fairness, caution, and equity into environmental governance.

Beyond judicial doctrines, the evolution of substantive environmental equality has also been shaped by the Court's recognition of procedural fairness as an essential component of Article 14. Procedural environmental justice ensures that communities affected by pollution, displacement, or

ecological degradation have a meaningful voice in decisions that impact their lives. This requires transparency in environmental impact assessments, accessible public hearings, disclosure of scientific information, and opportunities for community participation. The Supreme Court has repeatedly observed that decisions taken without consulting affected groups, especially marginalised populations, risk violating the mandate of equal protection. In several forest clearance, infrastructure, and industrial expansion matters, the Court emphasized that failure to involve vulnerable communities not only undermines environmental safeguards but also reinforces structural inequalities. Thus, procedural fairness serves as a bridge between environmental protection and constitutional equality, ensuring that environmental governance does not exclude those who stand to suffer the greatest harm.

ARTICLE 14, NATURAL RESOURCE ALLOCATION, AND ECONOMIC INEQUALITY :

The equitable allocation of natural resources became a major constitutional issue in the 21st century. In Centre for Public Interest Litigation v. Union of India, involving 2G spectrum allocation, the Court emphasized that natural resources belong to the public and must be allocated fairly. Although not traditionally seen as an environmental case, it reinforced environmental equality by extending public trust principles to resource governance. Similarly, in Manohar Lal Sharma v. Principal Secretary, involving coal block allocation, the Court struck down arbitrary government decisions that violated Article 14. These judgments confirmed that environmental resources cannot be distributed in ways that benefit powerful economic actors at the expense of public welfare. They also illustrated that environmental inequality is closely connected with economic inequality, making Article 14 essential in regulating natural resource governance.

The link between natural resource allocation and environmental equality has also become evident in cases concerning land acquisition, mining leases, and large infrastructure projects. Courts increasingly recognize that when the State transfers environmentally valuable or sensitive land to private entities without adequate justification, it risks violating both the equality mandate and the public trust doctrine. Communities living near mineral-rich forests, coastal zones, or fertile agricultural regions often rely on these resources for subsistence, cultural practices, and ecological stability. Arbitrary diversion of such resources not only disrupts these relationships but also shifts environmental burdens onto already disadvantaged groups. By subjecting resource allocation decisions to heightened scrutiny under Article 14, the judiciary has emphasized that environmental governance must incorporate distributive justice. This emerging approach underscores that natural resources cannot be treated merely as economic commodities but must be managed in a manner that respects ecological integrity and protects vulnerable populations from disproportionate harm.

CLIMATE JUSTICE AND EMERGING ENVIRONMENTAL EQUALITY CONCERNS :

Climate change has magnified environmental inequality in India. Rural communities in drought prone and coastal regions face severe climate threats. Urban poor populations live in heat islands where rising temperatures threaten their health. In M.K. Ranjitsinh v. Union of India, the Supreme Court recognized the right to be free from the adverse effects of climate change. This recognition marks a major shift in constitutional jurisprudence, connecting climate vulnerability with fundamental rights and equality. Climate justice requires acknowledging that climate burdens fall disproportionately on the poor. Article 14 therefore provides a crucial foundation for developing climate adaptation policies that are equitable and sensitive to socio economic disparities. As India faces escalating climate risks including heatwaves, floods, and cyclones, equality based climate governance becomes increasingly essential.

PERSISTENT CHALLENGES IN ENVIRONMENTAL EQUALITY :

Despite judicial progress, structural inequalities persist. Environmental regulations are often poorly enforced, especially in areas inhabited by vulnerable groups. Industrial pollution is frequently concentrated in low income neighbourhoods, creating environmental ghettos. Tribal communities continue to face displacement for mining, dams, and industrial projects. Urban planning decisions favour wealthy districts, while poorer areas lack green spaces, clean air, or safe water supply. Climate adaptation measures also remain inadequate, ignoring the heightened risks faced by marginalized communities. Bureaucratic inefficiencies, regulatory capture, and weak institutional coordination further weaken environmental justice. These challenges demonstrate that constitutional equality remains aspirational unless supported by strong institutional mechanisms and democratic participation.

STRENGTHENING ENVIRONMENTAL EQUALITY IN INDIA :

To strengthen environmental equality, India must move toward a comprehensive constitutional framework for environmental justice. Courts can explicitly recognize environmental equality as part of Article 14 and develop tests for disproportionate impacts. Environmental Impact Assessment procedures must incorporate distributive justice to ensure that affected communities have a meaningful voice. Recognition of environmental justice zones can help prioritize resources for high risk areas. Climate adaptation plans must be grounded in equality and protect vulnerable groups from future climate threats. Strengthening institutional transparency, community participation, and scientific capacity will also help advance environmental equality. Ultimately, constitutional environmentalism must ensure that no group bears a disproportionate share of environmental harm.

CONCLUSION :

Environmental justice has become an inseparable part of India's constitutional landscape. Across the constitutional journey from 1950 to the present, Article 14 has expanded from a narrow principle of formal equality to a transformative tool addressing structural environmental inequality. Through landmark judgments, progressive doctrines, and climate jurisprudence, courts have affirmed that environmental harm intersects with social, economic, and political disparities. The promise of environmental equality requires continuous commitment from courts, lawmakers, administrators, and civil society. Strengthening environmental justice ensures that the constitutional values of dignity, fairness, and equality become a living reality for all communities.

REFERENCES :

1. Akhil Bharatiya Upbhokta Congress v. State of Madhya Pradesh, (2011) 5 SCC 29.
2. Almitra Patel v. Union of India, (2000) 2 SCC 679.
3. Centre for Public Interest Litigation v. Union of India, (2012) 3 SCC 1.
4. E.P. Royappa v. State of Tamil Nadu, (1974) 4 SCC 3.
5. M.C. Mehta v. Kamal Nath, (1997) 1 SCC 388.
6. M.K. Ranjitsinh v. Union of India, 2024 SCC OnLine SC 285.
7. Manohar Lal Sharma v. Principal Secretary, (2014) 9 SCC 516.
8. Olga Tellis v. Bombay Municipal Corporation, (1985) 3 SCC 545.
9. Samatha v. State of Andhra Pradesh, (1997) 8 SCC 191.
10. State of West Bengal v. Anwar Ali Sarkar, AIR 1952 SC 75.
11. Subhash Kumar v. State of Bihar, (1991) 1 SCC 598.
12. Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India, (1996) 5 SCC 647.
13. Shyam Divan and Armin Rosencranz, Environmental Law and Policy in India (OUP 022).
14. Lavanya Rajamani, Climate Change Law and Policy in India (OUP 2021).
15. Usha Ramanathan, Environmental Justice in India (2014).
16. Philippe Cullet, Environmental Justice in the Indian Context (2001).

Singh09sakshi@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 46–54

21वीं सदी के युवा कहानीकारों में विकलांग विमर्श का नया स्वर : यथार्थ से प्रतीक तक

मुकेश कुमार यादव
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राजस्थान)
(महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय बीकानेर राजस्थान)

शोध सारांश :

21वीं सदी के हिंदी कथा–साहित्य में विकलांग विमर्श एक नवीन और प्रभावशाली वैचारिक धारा के रूप में उभरा है। जहाँ पूर्ववर्ती समय में विकलांगता को प्रायः करुणा, दया या असहायता के दृष्टिकोण से देखा जाता था, वहीं समकालीन युवा कहानीकारों ने इसे मानव अस्मिता, आत्मसंघर्ष और सामाजिक समानता के सशक्त प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। अब यह विमर्श केवल शारीरिक अपूर्णता का नहीं, बल्कि सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक भेदभाव के गहरे प्रश्नों का प्रतिनिधि बन गया है।

21वीं सदी के प्रमुख रचनाकार : ललित कुमार 'सम्यक ललित' (विटामिन जिन्दगी, बा–वजूद), कंचन सिंह चौहान (तुम्हारी लंगी), सुमित्रा मेहरोल (टूटे पंखों से परवाज तक), प्रदीप सौरभ (ब्लाइंड स्ट्रीट), ज्ञानप्रकाश विवेक (व्हीलचेयर), भारतेंदु मिश्र (अधेड़ हो आई है गोले), गीता शर्मा (मुड़ के देखो मुझे) तथा प्रदीप सिंह (वरक दर वरक़, बुहारे हुए पल) – इन सभी की कहानियों में विकलांगता को जीवन के विविध अनुभवों और संघर्षशील यथार्थ से गहराई से जोड़ा गया है। इन कथाओं में विकलांग पात्र केवल सहानुभूति के पात्र नहीं, बल्कि संवेदना, आत्मसम्मान और प्रतिरोध के केंद्र बनकर उभरते हैं, जो समाज की असंवेदनशीलता और दयाभाव–प्रधान दृष्टिकोण को सीधी चुनौती देते हैं। इन रचनाओं में यथार्थवाद और प्रतीकवाद का संतुलित संगम देखने को मिलता है। यहाँ विकलांग शरीर केवल एक जैविक स्थिति नहीं, बल्कि सामाजिक संरचनाओं की विकृति और असमानता का प्रतीक बन जाता है। यह दृष्टि बताती है कि व्यक्ति की पूर्णता उसकी शारीरिक सीमाओं में नहीं, बल्कि उसकी जीवन–दृष्टि और आत्मबल में निहित है। तकनीकी और डिजिटल युग के संदर्भ में भी विकलांगता अब मानसिक व भावनात्मक अपूर्णताओं के रूप में नए अर्थ ग्रहण कर रही है, जिससे यह विमर्श और अधिक व्यापक हो गया है।

यह शोध–पत्र 21वीं सदी के युवा कहानीकारों के दृष्टिकोण से विकलांग विमर्श के नए यथार्थवादी और प्रतीकात्मक स्वरूप की आलोचनात्मक पड़ताल करता है। इसका उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि समकालीन हिंदी

कथा–साहित्य अब विकलांगता को कमजोरी नहीं, बल्कि संघर्ष, आत्मगौरव और मानवीय गरिमा की सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार कर रहा है। इस प्रकार यह विमर्श केवल साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में ही नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और समानता की अवधारणा में भी एक नया अध्याय जोड़ता है।

मुख्य शब्द : विकलांग विमर्श, युवा कहानीकार, यथार्थवाद, प्रतीकवाद, सामाजिक संवेदना, समकालीन कथा, अस्मिता, समानता, संघर्ष, पहचान।

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास में 21वीं सदी एक ऐसे नए दौर की प्रतीक है जहाँ समाज के विविध विमर्शों ने अपनी सशक्त और स्वतंत्र पहचान स्थापित की है। स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्शों के पश्चात अब विकलांग विमर्श साहित्यिक अभिव्यक्ति और सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण आधार बन चुका है। यह विमर्श उस सामाजिक मानसिकता पर प्रश्न उठाता है जो शारीरिक अपूर्णता को असमर्थता या अधूरापन मानकर व्यक्ति की संपूर्णता को नकार देती है। समकालीन युवा कहानीकारों ने इस दृष्टि को तोड़ते हुए विकलांगता को मानव गरिमा, आत्मबल और अस्मिता की नई परिभाषा दी है।

इतिहास पर दृष्टि डालें तो लंबे समय तक विकलांगता को केवल दया और करुणा के दृष्टिकोण से देखा गया। साहित्य में विकलांग पात्रों को अधिकतर सहानुभूति या करुणा जगाने वाले पात्रों के रूप में चित्रित किया गया। किंतु आधुनिक काल में यह दृष्टिकोण मूलतः परिवर्तित हुआ है। अब विकलांग पात्र संघर्ष और प्रतिरोध के प्रतीक बनकर उभर रहे हैं, जो समाज की असंवेदनशीलता, भेदभाव और पूर्वाग्रहों को चुनौती देते हैं। इस परिवर्तन की बौद्धिक पृष्ठभूमि में विकलांग विमर्श की वह विचारधारा है जिसने विकलांगता को 'चिकित्सीय समस्या' नहीं, बल्कि एक 'सामाजिक बाधा' के रूप में देखने की चेतना विकसित की। इसी दृष्टि ने हिंदी कथा–साहित्य में नई मानव–केंद्रित संवेदना का संचार किया है।

ललित कुमार 'सम्यक ललित', कंचन सिंह चौहान, सुमित्रा मेहरोल, प्रदीप सौरभ, ज्ञानप्रकाश विवेक, भारतेंदु मिश्र, गीता शर्मा, और प्रदीप सिंह जैसे लेखकों ने अपनी रचनाओं में विकलांगता को जीवन के विविध यथार्थों और अनुभवों से जोड़ते हुए उसकी अंतर्निहित मानवीय गहराइयों को उद्घाटित किया है। "विटामिन जिन्दगी" और "बा–वजूद" में जीवन के संघर्ष और आत्मगौरव, "तुम्हारी लंगी" और "ब्लाइंड स्ट्रीट" में समाज की रूढ़ मान्यताओं पर सवाल, तथा "टूटे पंखों से परवाज तक" और "व्हीलचेयर" जैसी आत्मकथात्मक रचनाओं में भीतर की शक्ति और आत्मबोध का गहरा अन्वेषण दिखाई देता है।

इन युवा कथाकारों की भाषा में संवेदना, प्रतीकात्मकता और यथार्थ का अद्भुत संगम है। उनके यहाँ विकलांग शरीर केवल एक शारीरिक स्थिति नहीं, बल्कि समाज की विकृत संरचनाओं और असमानताओं का जीवंत रूपक बन जाता है। यह प्रतीकात्मकता पाठक को भीतर तक झकझोरती है और उसे तथाकथित "सामान्य" होने की अवधारणा पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करती है।

समकालीन हिंदी साहित्य अब विकलांग विमर्श के माध्यम से यह स्थापित कर रहा है कि मनुष्य की पूर्णता उसके शरीर की सीमाओं में नहीं, बल्कि उसकी चेतना, संघर्षशीलता और आत्मसम्मान में निहित है। विकलांगता अब करुणा या दया की वस्तु नहीं रही, बल्कि मानवीय गरिमा और समानता के पुनर्संरचना का सशक्त माध्यम बन गई है। इसी कारण 21वीं सदी के युवा कहानीकारों की लेखनी हिंदी साहित्य को नई सामाजिक दृष्टि, गहरी

मानवीय संवेदना और परिवर्तनकारी चेतना प्रदान कर रही है।

विकलांग विमर्श की वैचारिक पृष्ठभूमि :

विकलांग विमर्श का उद्‌भव केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि सामाजिक जागरूकता और वैचारिक परिवर्तन का परिणाम है। यह विमर्श उस पारंपरिक सोच को चुनौती देता है जिसने लंबे समय तक शारीरिक या मानसिक भिन्नता को "अपूर्णता", "असमर्थता" या "कमजोरी" के रूप में देखा। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि समाज ने विकलांग व्यक्तियों को सदियों तक मुख्यधारा से अलग–थलग रखा, जिससे उनके अनुभव, संघर्ष और संवेदनाएँ साहित्यिक विमर्शों से लगभग अनुपस्थित रहीं।

पश्चिम में 20वीं सदी के उत्तरार्ध में विकसित हुए Disability Studies ने इस परिप्रेक्ष्य को गहराई से बदला। इन अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया कि विकलांगता केवल जैविक या चिकित्सकीय समस्या (Medical Problem) नहीं है, बल्कि यह समाज द्वारा निर्मित संरचनात्मक असमानताओं और भेदभावपूर्ण दृष्टियों का परिणाम है। यही दृष्टि आगे चलकर Social Model of Disability के रूप में जानी गई। इस मॉडल के अनुसार, विकलांग व्यक्ति कोई "समस्या" नहीं है, बल्कि सामाजिक परिवेश की असंवेदनशीलता और भेदभावपूर्ण संरचनाओं का शिकार है। इस प्रकार विकलांग विमर्श दयाभाव और करुणा से आगे बढ़कर अधिकार, अस्मिता और समानता की चेतना में परिवर्तित हुआ।

हिंदी साहित्य में यह वैचारिक परिवर्तन विशेष रूप से 21वीं सदी में अधिक सशक्त रूप में उभरता है। पहले जहाँ विकलांग पात्रों को दीनता या करुणा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया जाता था, वहीं अब वे आत्मनिर्भर, जिजीविषु और प्रतिरोधी स्वर के रूप में सामने आते हैं। समकालीन लेखक विकलांगता को केवल एक व्यक्तिगत स्थिति नहीं, बल्कि समाज की विकृत मानसिकता और असमान संरचना का दर्पण मानते हैं।

ललित कुमार 'सम्यक ललित' की "विटामिन जिन्दगी" और "बा–वजूद" जैसी रचनाएँ इस दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जहाँ विकलांगता को जीवन की संघर्षशील चेतना और सकारात्मक दृष्टिकोण के रूप में देखा गया है। इसी प्रकार कंचन सिंह चौहान की "तुम्हारी लंगी" में नारी विमर्श और विकलांग विमर्श का संगम दिखाई देता है, जो समाज की दोहरी मानसिकता और लिंग–आधारित असमानता पर गहरा प्रहार करता है। प्रदीप सौरभ की "ब्लाइंड स्ट्रीट" में अंधापन केवल शारीरिक नहीं, बल्कि समाज के नैतिक और वैचारिक अंधत्व का प्रतीक बन जाता है। इन सभी रचनाओं में विकलांगता अब करुणा नहीं, बल्कि चेतना और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति बन चुकी है।

विकलांग विमर्श की वैचारिक नींव मानवाधिकार, समान अवसर और सामाजिक न्याय जैसे मूल सिद्धांतों में निहित है। 21वीं सदी के लेखकों ने साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनाते हुए यह प्रतिपादित किया है कि विकलांग व्यक्ति भी समाज का सक्रिय, रचनाशील और सम्मान के योग्य नागरिक है। आज के तकनीकी, शिक्षित और आत्मनिर्भर युग में विकलांगता अब सीमितता का नहीं, बल्कि आत्मविश्वास, आत्मसाक्षात्कार और नए यथार्थ का प्रतीक बन गई है।

अतः विकलांग विमर्श की वैचारिक पृष्ठभूमि केवल सामाजिक असमानताओं की आलोचना भर नहीं है, बल्कि यह एक ऐसे मानवीय और लोकतांत्रिक साहित्यिक आंदोलन की आधारशिला रखती है जो 'भिन्नता' में भी 'समानता' और 'अंतर' में भी 'समग्रता' को पहचानता है। यह विमर्श हिंदी साहित्य को अधिक संवेदनशील,

मानवीय और परिवर्तनशील चेतना की दिशा में अग्रसर करता है।

21वीं सदी के युवा कहानीकार और उनका सामाजिक संदर्भ :

21वीं सदी का हिंदी कथा–साहित्य सामाजिक यथार्थ, तकनीकी परिवर्तनों और मानवीय अस्मिता के गहन प्रश्नों से जूझते हुए एक नई चिंतनशील दिशा में विकसित हुआ है। इस दौर के युवा कहानीकारों ने समाज में व्याप्त असमानता, भेदभाव और शारीरिक–मानसिक विकलांगता के अनुभवों को केवल संवेदनात्मक स्तर पर नहीं, बल्कि अस्तित्व और पहचान के विमर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। आज विकलांगता करुणा का नहीं, बल्कि "प्रतिरोध और पहचान की सांस्कृतिक राजनीति" का विषय बन चुकी है, जहाँ मनुष्य अपनी परिस्थितियों से टकराकर आत्म–संभावनाओं की पुनर्खोज करता है।

ललित कुमार 'सम्यक ललित' का संस्मरण "विटामिन जिन्दगी" इस तथ्य का सशक्त उदाहरण है कि विकलांगता किसी व्यक्ति की कमजोरी नहीं, बल्कि जीवन को देखने का एक भिन्न दृष्टिकोण है। वे लिखते हैं – "शरीर नहीं, मन विकलांग होता है, जो जीवन से हार जाता है, वही असली अपाहिज है।"[1] यह कथन उस परंपरागत मानसिकता को तोड़ता है जिसमें विकलांगता को केवल शारीरिक दुर्बलता के रूप में देखा जाता रहा है।

आलोकिता का उपन्यास "लकीर के उस पार" स्त्री और विकलांगता – दोनों की दोहरी चुनौतियों को उजागर करता है। उनकी नायिका सामाजिक सीमाओं को लाँघते हुए यह साबित करती है कि "विकलांग होना अपूर्णता नहीं, बल्कि एक नई दृष्टि से पूर्ण होना है।"[2] इसी प्रकार गीता पंडित के उपन्यास "इनबॉक्स" में डिजिटल युग की आंतरिक 'भावनात्मक विकलांगता' पर तीखा व्यंग्य दिखाई देता है, "जहाँ संचार के अनेक माध्यमों के बावजूद मनुष्य भीतर से अकेला और असंबद्ध होता जा रहा है।"[3]

कंचन सिंह चौहान के कहानी–संग्रह "तुम्हारी लंगी" में " ग्रामीण परिवेश की सामाजिक जटिलताओं और विकलांग पात्रों की अस्मिता के संघर्ष को अत्यंत संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया गया है।"[4] वहीं सुमित्रा मेहरोल की आत्मकथा "टूटे पंखों से परवाज तक", "आत्मबल, आत्मसम्मान और स्त्री अस्मिता का ऐसा सशक्त संगम है जो विकलांगता के मनोवैज्ञानिक पहलुओं को अत्यंत ईमानदारी से उद्घाटित करती है।"[5]

इन रचनाकारों के अनुसार 21वीं सदी का समाज समानता की बातें तो करता है, परंतु व्यवहार में शारीरिक और मानसिक भिन्नताओं को सहजता से स्वीकार नहीं कर पाता। अतः ये युवा कहानीकार केवल कथा नहीं रचते, बल्कि समाज को उसके अंतर्विरोधों का दर्पण दिखाते हैं। प्रदीप सौरभ के उपन्यास "ब्लाइंड स्ट्रीट" में यह चेतना अत्यंत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है – "अंधी सड़क पर चलने वाला हर आदमी किसी न किसी अंधेपन से ग्रस्त है।"[6] यहाँ 'अंधापन' उस सामाजिक असंवेदनशीलता का रूपक बन जाता है जो विकलांगता को समझने और स्वीकारने से इंकार करती है।

इस प्रकार, 21वीं सदी के युवा कहानीकार अपने सामाजिक संदर्भों को नए सिरे से परिभाषित करते हुए विकलांग विमर्श को सामाजिक न्याय, समान अवसर और मानवीय गरिमा के प्रश्नों से गहराई से जोड़ते हैं।

प्रमुख युवा कहानीकारों की रचनाओं में विकलांग विमर्श 21वीं सदी के हिंदी साहित्य में विकलांगता अब केवल करुणा या सहानुभूति का विषय नहीं रही, बल्कि वह 'प्रतिरोध', 'आत्मसम्मान' और 'मानवीय अस्मिता' का प्रतीक बन चुकी है। सम्यक ललित के संपादन में प्रकाशित कहानी–संग्रह "बा–वजूद" इस नए सामाजिक

यथार्थ का सशक्त उदाहरण है। इसमें संकलित कहानियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि "मनुष्य अपनी कमी से नहीं, अपने दृष्टिकोण से सीमित होता है।"[7] यह कथन विकलांग विमर्श की उस वैचारिक पृष्ठभूमि को पुष्ट करता है, जो मनुष्य को उसकी सीमाओं के बजाय उसकी संभावनाओं के संदर्भ में देखती है।

ज्ञानप्रकाश विवेक के उपन्यास "व्हीलचेयर" में नायक की विकलांगता प्रतीक के रूप में उस समाज की जड़ सोच, उसकी असंवेदनशीलता और नैतिक अपंगता को उजागर करती है। लेखक का कथन है – "जिस समाज में संवेदना मर चुकी हो, वहाँ स्वस्थ देह भी किसी काम की नहीं।"[8] यहाँ शारीरिक अपंगता से अधिक गंभीर है वह वैचारिक विकलांगता जो संवेदना और मानवीयता को नष्ट कर देती है।

इसी क्रम में यादवेन्द्र चंद्र शर्मा का उपन्यास "आदमी बैसाखी पर" आधुनिक जीवन की निर्भरता को मानसिक विकलांगता के रूप में परिभाषित करता है। लेखक कहते हैं– "हम सब किसी न किसी बैसाखी पर टिके हैंय फर्क बस इतना है कि किसी की बैसाखी दिखाई देती है, किसी की नहीं।"[9] यह कथन आधुनिक मनुष्य की मानसिक निर्भरता और आत्मविहीनता की गहरी सामाजिक सच्चाई को सामने लाता है।

भारतेंदु मिश्र के कविता–संग्रह "अधेड़ हो आई है गोले" और मनोज छाबड़ा की कविताओं का संग्रह "व्हीलचेयर" जीवन के दार्शनिक और आध्यात्मिक आयामों को उद्घाटित करता है। मिश्र की कविता की ये पंक्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – "शरीर थका, मन नहींय यही तो जीवन का असली चमत्कार है।"[10]

यहाँ विकलांगता को शारीरिक सीमाओं से परे मानसिक दृढ़ता और जीवन–ऊर्जा के प्रतीक के रूप में देखा गया है।

प्रदीप सिंह की डायरी–रचनाएँ "वरक दर वरक़" और "बुहारे हुए पल" विकलांग अनुभवों के आत्मानुभव और समाज की प्रतिक्रियाओं – दोनों को एक साथ दर्ज करती हैं। इन रचनाओं के माध्यम से विकलांग विमर्श आत्मपरक होने के साथ–साथ आत्मालोचनात्मक भी बन जाता है।

डॉ. गीता शर्मा के कहानी–संग्रह "मुड़ के देखो मुझे" में विकलांगता केवल शारीरिक अवस्था नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टि की परीक्षा बनकर सामने आती है। वे अपनी कहानी में कहती हैं – "देखने की जरूरत मुझे नहीं, तुम्हें है – कि मैं तुम्हारे भीतर का अंधापन देख रही हूँ।"[11] यह कथन गहराई से संकेत करता है कि असली अंधापन शरीर में नहीं, बल्कि समाज की सोच में है।

इन तमाम लेखकों की रचनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि आधुनिक हिंदी साहित्य में विकलांगता अब "दया का नहीं, दृष्टि का विषय" बन चुकी है। इन रचनाकारों ने प्रतीकवाद और यथार्थ के माध्यम से उस सामाजिक अंधेपन को उजागर किया है जहाँ संवेदना का ह्रास ही सबसे बड़ी विकलांगता है।

प्रतीकवाद और यथार्थ के द्वंद्व का विश्लेषण :

21वीं सदी के हिंदी कथा–साहित्य में प्रतीकवाद और यथार्थ का संबंध विशेष रूप से विकलांग विमर्श के सन्दर्भ में अत्यंत सार्थक रूप में उभरता है। समकालीन युवा लेखकों ने प्रतीकों के माध्यम से उन अदृश्य सामाजिक यथार्थों को उद्घाटित किया है जो सामान्य दृष्टि से प्रायः अनदेखे रह जाते हैं। इन रचनाओं में विकलांगता केवल शारीरिक स्थिति न होकर समाज की दृष्टि, संवेदना और मानसिक संरचना का प्रतीक बन जाती है।

ललित कुमार 'सम्यक ललित' का संस्मरण "विटामिन जिन्दगी" इस द्वंद्व का अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण

है। यहाँ 'विटामिन' एक ऐसे जीवन–द्रव्य का प्रतीक है जो शारीरिक दुर्बलता के बावजूद व्यक्ति को संपूर्णता का अनुभव कराता है। लेखक का कथन है –"शरीर की कमी से नहीं, दृष्टि की कमी से मनुष्य अधूरा होता है।"[12]

यहाँ शारीरिक सीमाएँ यथार्थ हैं, जबकि 'विटामिन' उस जिजीविषा और आत्मबल का प्रतीक है जो मनुष्य को संघर्षशील बनाता है। ललित की दृष्टि में विकलांगता दया नहीं, बल्कि सृजनात्मक ऊर्जा का केंद्र है।

प्रदीप सौरभ के उपन्यास "ब्लाइंड स्ट्रीट" में 'अंधी गली' प्रतीक है उस सामाजिक अंधकार का जहाँ देखने वाले भी संवेदनहीन हैं। वे लिखते हैं – "इस गली में सबके पास आँखें हैं, पर कोई देखता नहीं।"[13]

यहाँ अंधकार समाज की संवेदनहीनता का प्रतीक है, जबकि यथार्थ उस भीतर बसे अंधेपन का जो देखने की क्षमता रखते हुए भी देखने से इंकार करता है। इस प्रकार प्रतीक और यथार्थ का यह द्वंद्व समाज की भीतरी सच्चाइयों को तीखे रूप में प्रकट करता है।

आलोकिता के उपन्यास "लकीर के उस पार" में 'लकीर' का प्रतीक समाज द्वारा निर्मित सीमाओं जाति, लिंग और विकलांगता को दर्शाता है। नायिका का यह कथन सार्थक है –

"लकीरें हमेशा जमीन पर नहीं, मन के भीतर भी खींच दी जाती हैं।"[14]

यहाँ 'लकीर' उस मानसिक बंधन का प्रतीक बन जाती है जो मनुष्य की स्वतंत्रता को भीतर से कैद करता है।

ज्ञानप्रकाश विवेक के उपन्यास "व्हीलचेयर" में 'व्हीलचेयर' प्रतीक है जीवन की निरंतरता, गति और आशा का। उपन्यास का पात्र कहता है – "मेरे पहिए रुके नहीं हैं, बस रास्ते ने दिशा बदल दी है।"[15]

यह प्रतीकात्मक कथन मनुष्य की जिजीविषा और यथार्थ के स्वीकार का अत्यंत संवेदनशील समन्वय प्रस्तुत करता है।

कंचन सिंह चौहान के कहानी–संग्रह "तुम्हारी लंगी" में 'लंगी' का प्रतीक स्त्री और विकलांगता दोनों के प्रति समाज की असमान दृष्टि को उद्घाटित करता है। उनके पात्र का कथन है –"जिसे तुम लाचार कहते हो, वही तो सबसे अधिक जीना जानता है।"[16]

यह कथन विकलांगता को निर्बलता के नहीं, बल्कि जीवन की प्रखर चेतना के प्रतीक के रूप में रूपांतरित कर देता है।

इसी क्रम में यादवेन्द्र चंद्र शर्मा का उपन्यास "आदमी बैसाखी पर" 'बैसाखी' को सामाजिक निर्भरता और मानसिक जड़ता का प्रतीक बनाता है। लेखक कहते हैं – "बैसाखी सिर्फ पैर के नीचे नहीं, दिमाग के भीतर भी होती है।"[17]

यहाँ प्रतीकवाद के माध्यम से आधुनिक समाज की उस मनोवृत्ति की आलोचना की गई है जो शारीरिक रूप से सक्षम होकर भी मानसिक रूप से अपंग बनी हुई है।

प्रदीप सिंह की डायरी–रचनाएँ "वरक़ दर वरक़" और "बुहारे हुए पल" प्रतीकवाद और यथार्थ के बीच एक संवेदनशील सेतु का निर्माण करती हैं। यहाँ 'वरक़' (कागज) स्मृति का प्रतीक है – जो दर्द को अनुभव से शक्ति में रूपांतरित कर देता है। लेखक लिखते हैं –

"हर पल जब शब्द बनता है, तो दर्द स्मृति नहीं, शक्ति बन जाता है।"[18]

यह कथन इस बात को पुष्ट करता है कि यथार्थ को प्रतीक में बदलना ही लेखन की सृजनात्मक प्रक्रिया

का सार है।

इन सभी रचनाओं में प्रतीकवाद यथार्थ से पृथक नहीं, बल्कि उसका विस्तार और गहराई है। प्रतीक यहाँ संवेदना की भाषा बन जाते हैं – वे दृश्य के परे जाकर अनुभूति के संसार को स्पर्श करते हैं। युवा लेखकों की यह पीढ़ी यथार्थ को सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि प्रश्न उठाने के लिए प्रस्तुत करती है। विकलांगता का प्रतीक अब दया या त्रासदी का नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, संघर्ष और जीवन–शक्ति का प्रतीक बन चुका है।

अंततः, इन रचनाओं में प्रतीक और यथार्थ का द्वंद्व समाज के भीतर और बाहर के यथार्थों की परतें खोलता है। प्रतीक मात्र कलात्मक उपकरण नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना के वाहक बन जाते हैं। इनसे होकर 21वीं सदी का हिंदी कथा–साहित्य एक नई संवेदना का निर्माण करता है – जहाँ जीवन की "अपूर्णता" ही उसका "पूर्ण प्रतीक" बन जाती है।

विकलांग विमर्श और सामाजिक परिवर्तन की दिशा :

इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य में विकलांग विमर्श अब मात्र शारीरिक अक्षमता के चित्रण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह मानवीय गरिमा, आत्मसम्मान और सामाजिक चेतना के नए प्रश्नों को केंद्र में लाने वाला एक सशक्त मानवीय आंदोलन बन चुका है। इस विमर्श के केंद्र में वह व्यक्ति है, जिसे समाज ने लंबे समय तक 'अपूर्ण' माना, किंतु जिसने अपने अनुभवों और संघर्षों के माध्यम से अपनी अस्मिता को पुनः परिभाषित किया है। समकालीन युवा कथाकारों और लेखकों ने यह स्थापित किया है कि विकलांगता किसी व्यक्ति की दुर्बलता नहीं, बल्कि समाज की संकीर्ण दृष्टि का परिणाम है।

ललित कुमार 'सम्यक ललित' की रचनाएँ 'विटामिन जिन्दगी', 'बा–वजूद' इस विमर्श की बुनियाद को सशक्त बनाती हैं। इन ग्रंथों में विकलांगता को एक सकारात्मक जीवन–दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जहाँ व्यक्ति अपनी शारीरिक सीमाओं से आगे बढ़कर जीवन को पूर्णता से स्वीकार करता है। 'विटामिन जिन्दगी' में जीवन की वास्तविक ऊर्जा शरीर नहीं, बल्कि आत्मबल और रचनात्मक दृष्टिकोण से उत्पन्न होती है, यह विचार प्रमुखता से उभरता है। वहीं 'बा–वजूद' की कहानियाँ इस तथ्य को रेखांकित करती हैं कि विकलांग व्यक्ति अब समाज से करुणा नहीं, बल्कि सम्मान और समान अधिकार की अपेक्षा रखता है। यह दृष्टि सामाजिक संरचना में परिवर्तन की मांग करती है, जहाँ व्यक्ति को उसकी क्षमताओं के आधार पर मूल्यांकित किया जाए।

प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'ब्लाइंड स्ट्रीट' और आलोकिता का 'लकीर के उस पार' विकलांगता के शहरी यथार्थ को नए आयामों में उजागर करते हैं। दोनों रचनाएँ इस बात को रेखांकित करती हैं कि दया की दृष्टि से देखे जाने के बजाय विकलांग पात्र अपनी स्वतंत्र पहचान के लिए संघर्षरत हैं। 'ब्लाइंड स्ट्रीट' में महानगरीय जीवन की संवेदनहीनता को प्रमुख विषय बनाया गया है, जहाँ मानसिक अवरोध शारीरिक अक्षमता से कहीं अधिक गंभीर प्रतीत होते हैं। वहीं 'लकीर के उस पार' यह दिखाता है कि कैसे सामाजिक पूर्वाग्रह और सीमाएँ व्यक्ति की संभावनाओं को सीमित करती हैं, किंतु शिक्षा और आत्मविश्वास के माध्यम से इन्हें तोड़ा जा सकता है।

मृदुला सिन्हा के 'ज्यों मेहंदी रंग' और गीता पंडित के 'इनबॉक्स' में स्त्री–विकलांगता का द्वंद्व अत्यंत संवेदनशील रूप में प्रस्तुत हुआ है। यहाँ विकलांग स्त्रियाँ सामाजिक भेदभाव, पारिवारिक नियंत्रण और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से संघर्ष करती हैं। ये रचनाएँ यह संकेत देती हैं कि विकलांगता केवल शारीरिक स्थिति नहीं, बल्कि मानसिक उत्पीड़न और लैंगिक असमानता का प्रतीक भी है। इस प्रकार विकलांग विमर्श, स्त्री विमर्श

के समानांतर खड़ा होकर सामाजिक परिवर्तन के विमर्श को और व्यापकता प्रदान करता है।

कंचन सिंह चौहान की 'तुम्हारी लंगी' और सुमित्रा मेहरोल की आत्मकथा 'टूटे पंखों से परवाज तक' विकलांग व्यक्तियों के आत्मसंघर्ष और आत्मस्वीकृति की गाथा कहती हैं। इन रचनाओं में यह स्पष्ट संदेश निहित है कि विकलांगता जीवन की सीमा नहीं, बल्कि आत्म–जागरण का माध्यम बन सकती है। ये कृतियाँ यह उद्घोष करती हैं कि वास्तविक परिवर्तन तब संभव होता है जब व्यक्ति अपने भीतर के भय और संकोच को त्यागकर आत्मविश्वास के साथ समाज में अपनी जगह बनाता है।

भारतेंदु मिश्र की 'अधेड़ हो आई है गोले' और गीता शर्मा की 'मुड़ के देखो मुझे' जैसी काव्य–कृतियाँ विकलांग अनुभवों को भावनात्मक और दार्शनिक गहराई प्रदान करती हैं। इन कविताओं में करुणा के स्थान पर प्रतिरोध और प्रश्न की भाषा उभरती है। समाज व्यक्ति को उसकी सीमाओं से नहीं, बल्कि उसकी क्षमताओं से देखे। विनोद कुमार मिश्र की 'महान विभूतियों का अधूरा बचपन' ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रमाणित करती है कि विकलांगता और महानता परस्पर विरोधी नहीं हैं, आत्मबल और इच्छाशक्ति के बल पर व्यक्ति हर सामाजिक अवरोध को पार कर सकता है।

ज्ञानप्रकाश विवेक का उपन्यास 'व्हीलचेयर' और मनोज छाबड़ा का कविता–संग्रह इसी शीर्षक से विकलांगता की आत्मनिर्भरता की नई व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, जहाँ व्हीलचेयर सहारे का नहीं, बल्कि आत्मसम्मान का प्रतीक बन जाती है। प्रदीप सिंह की 'वरक़ दर वरक़' और 'बुहारे हुए पल' जैसी डायरी रचनाएँ विकलांगता के दैनिक जीवन के अनुभवों को आत्मकथात्मक ईमानदारी से दर्ज करती हैं, जो पाठक को संवेदना और यथार्थ दोनों से जोड़ती हैं।

अलका सरावगी का 'कोई बात नहीं' और यादवेन्द्र चंद्र शर्मा का 'आदमी बैसाखी पर' आधुनिक समाज की उस मानसिकता पर प्रहार करते हैं जो विकलांगता को असामान्यता मानती है। इन रचनाओं में विकलांग पात्र समाज से अधिक संतुलित, आत्मजागरूक और संवेदनशील प्रतीत होते हैं। यहाँ विकलांगता अब दुर्बलता नहीं, बल्कि अलग प्रकार की क्षमता के रूप में उभरती है।

इन सभी रचनाओं के सामूहिक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समकालीन हिंदी साहित्य में विकलांग विमर्श अब केवल करुणा या सहानुभूति की अपील नहीं है, बल्कि यह समान अधिकार, गरिमा और संवेदनशील समाज की स्थापना का साहित्यिक माध्यम बन गया है। युवा लेखक और लेखिकाएँ विकलांग पात्रों के माध्यम से यह संदेश दे रहे हैं कि सामाजिक विकास का वास्तविक मापदंड वही है, जहाँ हर व्यक्ति की अस्मिता को समान दृष्टि से देखा जाए। यही इस विमर्श की मूल उपलब्धि और सामाजिक परिवर्तन की दिशा है।

निष्कर्ष :

विकलांग विमर्श पर केंद्रित 21वीं सदी का हिंदी कथा–साहित्य हमारे समाज की बदलती सोच और संवेदनात्मक परिपक्वता का सशक्त प्रतिबिंब है। समकालीन युवा कहानीकारों ने विकलांगता को दया या करुणा की दृष्टि से नहीं, बल्कि सम्मान, अधिकार और समानता के मानवीय परिप्रेक्ष्य से प्रस्तुत किया है। इनकी रचनाओं में विकलांग पात्र केवल सहानुभूति के पात्र नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, संघर्ष और जिजीविषा के प्रतीक के रूप में उभरते हैं। यह प्रवृत्ति दर्शाती है कि हिंदी कथा–जगत अब मानवीय विविधताओं को अधिक संवेदनशील और

यथार्थवादी दृष्टि से देख रहा है।

21वीं सदी के प्रमुख युवा रचनाकार – जैसे ललित कुमार, प्रदीप सौरभ, कंचन सिंह चौहान, आलोकिता और भारतेन्दु मिश्र ने विकलांगता को मात्र शारीरिक अक्षमता नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण की पहचान माना है। उनके कथा–पात्र यह स्पष्ट करते हैं कि किसी व्यक्ति को 'सक्षम' या 'विकलांग' बनाने वाला तत्व उसका शरीर नहीं, बल्कि समाज का दृष्टिकोण है। इस दृष्टि से उनकी कहानियाँ सामाजिक चेतना को एक नए विचारात्मक आयाम में रूपांतरित करती हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि विकलांग विमर्श अब सीमांत अनुभवों का नहीं, बल्कि समूची मानवीय अस्मिता, समान अवसर और गरिमा के अधिकार से जुड़ा व्यापक विमर्श बन गया है। हिंदी कथा–साहित्य ने इस विमर्श के माध्यम से समाज को एक नई दृष्टि प्रदान की है जिसमें विकलांगता किसी दुर्बलता का नहीं, बल्कि मानवीय विविधता, संघर्ष और आत्मगौरव का प्रतीक बनकर उभरती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. ललित, ललित कुमार 'सम्यक'. विटामिन जिन्दगी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 27।
2. आलोकिता. लकीर के उस पार, जयपुर : साहित्य भास्कर, जयपुर, 2019, पृ. 52।
3. पंडित, गीता. इनबॉक्स, नेशनल बुक्स, भोपाल 2021, पृ. 40।
4. चौहान, कंचन सिंह. तुम्हारी लंगी, विमर्श प्रकाशन, लखनऊ, 2020, पृ. 58–63.
5. मेहरोल, सुमित्रा. टूटे पंखों से परवाज तक. दिल्ली : प्रेरणा पब्लिशर्स, 2018, पृ. 72–78।
6. सौरभ, प्रदीप. ब्लाइंड स्ट्रीट, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, 2017, पृ. 61।
7. ललित सम्यक,बा– वजूद, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2020, पृ. 34।
8. विवेक, ज्ञानप्रकाश. व्हीलचेयर, भारती बुक्स, वाराणसी, 2019, पृ. 75।
9. शर्मा, यादवेन्द्र चंद्र. आदमी बैसाखी पर, लोकप्रकाशन, इलाहाबाद 2016, पृ. 41।
10. मिश्र, भारतेंदु. अधेड़ हो आई है गोले. भोपाल : साहित्य संगम, 2018, पृ. 19।
11. शर्मा, डॉ. गीता. मुड़ के देखो मुझे, शारदा प्रकाशन, जयपुर, 2021, पृ. 38।
12. कुमार ललित. विटामिन जिंदगी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 47।
13. सौरभ, प्रदीप. ब्लाइंड स्ट्रीट, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 79।
14. आलोकिता, लकीर के उस पार, साहित्य भास्कर, जयपुर, 2019, पृ. 69।
15. विवेक, ज्ञानप्रकाश. व्हीलचेयर, भारती बुक्स, वाराणसी, 2019, पृ. 93।
16. चौहान, कंचन सिंह. तुम्हारी लंगी, विमर्श प्रकाशन, लखनऊ, 2020, पृ. 45।
17. शर्मा, यादवेन्द्र चंद्र. आदमी बैसाखी पर, लोक प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृ. 75।
18. सिंह, प्रदीप. वरक दर वरक, कथा प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 18।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 55–64

हिंदी गद्य साहित्य और सिनेमा में समाज और राजनीति का प्रभाव : एक विश्लेषण

बिरदी चंद जाट
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
राजकीय डूंगर महाविद्यालय बीकानेर (राजस्थान)
महाराज गंगासिंह विश्वविद्यालय बीकानेर राजस्थान।

शोध सारांश :

यह शोध पत्र "हिंदी गद्य साहित्य और सिनेमा में समाज और राजनीति का प्रभाव" विषय पर केंद्रित है, जिसका उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि किस प्रकार हिंदी साहित्य और सिनेमा सामाजिक यथार्थ तथा राजनीतिक विचारधाराओं से प्रभावित होते हैं और साथ ही समाज को प्रभावित करने का कार्य भी करते हैं। हिंदी गद्य साहित्य प्रारंभ से ही सामाजिक संरचनाओं, वर्ग संघर्ष, जातिवाद, स्त्री अधिकारों, सांस्कृतिक बदलाव और राजनीतिक घटनाक्रमों पर आधारित रहा है। प्रेमचंद, भीष्म साहनी, फणीश्वरनाथ रेणु, अज्ञेय और मुक्तिबोध जैसे साहित्यकारों ने समाज के उपेक्षित वर्गों की समस्याओं को केंद्र में रखते हुए कलम चलाई।

दूसरी ओर, हिंदी सिनेमा ने भी समाज के विविध पहलुओं को प्रस्तुत करते हुए जनमानस को प्रभावित किया है। फिल्में जैसे दो बीघा जमीन, तमस, शोले, रंग दे बसंती और हजारों ख्वाहिशें ऐसी न केवल सामाजिक मुद्दों को उजागर करती हैं, बल्कि राजनीतिक चेतना को भी प्रभावित करती हैं। यह अध्ययन दर्शाता है कि कैसे सिनेमा और साहित्य ने स्वतंत्रता संग्राम, आपातकाल, और समकालीन राजनीति के दौरान जन भावनाओं को अभिव्यक्ति दी। इस शोध में यह भी रेखांकित किया गया है कि साहित्य और सिनेमा एक–दूसरे के पूरक हैं। साहित्यिक कृतियाँ जब फिल्म रूपांतरित होती हैं, तब वे समाज में गहरे स्तर पर संवाद स्थापित करती हैं। यह अध्ययन साहित्य और सिनेमा के माध्यम से समाज और राजनीति के परस्पर संबंधों को उजागर करता है और यह संकेत करता है कि ये दोनों माध्यम सामाजिक बदलाव के सशक्त उपकरण हैं।

मुख्य शब्द : साहित्य, सिनेमा, समाज, राजनीतिक चेतना, वर्ग संघर्ष।

1. प्रस्तावना –

हिंदी गद्य साहित्य और सिनेमा, दोनों ही भारतीय समाज और राजनीति के अभिन्न दर्पण रहे हैं। ये न केवल सामाजिक संरचना, संघर्ष और परिवर्तन को अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि राजनीतिक परिस्थितियों, विचारधाराओं और आंदोलनों को भी स्वर देते हैं। हिंदी गद्य साहित्य, अपनी विविध शैलियों जैसे उपन्यास,

कहानी, संस्मरण और निबंधों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को उजागर करता है, जबकि सिनेमा एक जनसंचार माध्यम के रूप में दृश्य–श्रव्य रूप में सामाजिक चेतना को जन–जन तक पहुँचाता है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि हिंदी गद्य साहित्य और सिनेमा समाज और राजनीति से किस प्रकार प्रभावित होते हैं और कैसे ये दोनों माध्यम समाज को प्रभावित करने की भूमिका निभाते हैं। साहित्य और सिनेमा केवल कलात्मक रचनाएँ नहीं हैं, बल्कि ये सामाजिक और राजनीतिक विमर्श के सक्रिय अंग हैं। ये समय–समय पर उत्पीड़न, शोषण, असमानता, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दों को केन्द्र में लाकर जनता को जागरूक करने का कार्य करते रहे हैं। यह अध्ययन इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि आज के समय में जब समाज तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है और राजनीति नए विमर्शों को जन्म दे रही है, ऐसे में यह समझना जरूरी है कि साहित्य और सिनेमा इन बदलावों को कैसे दर्ज करते हैं। यह शोध इस प्रश्न का भी उत्तर खोजने का प्रयास करता है कि क्या साहित्य और सिनेमा केवल परिस्थितियों का प्रतिरूप हैं, या वे स्वयं परिवर्तन के उत्प्रेरक भी हैं।

प्रस्तावित शोध यह स्थापित करेगा कि हिंदी गद्य साहित्य और सिनेमा न केवल समाज और राजनीति के प्रभावों को ग्रहण करते हैं, बल्कि वे एक विचारशील प्रतिक्रिया भी प्रस्तुत करते हैं। इसके माध्यम से यह स्पष्ट किया जाएगा कि किस प्रकार ये दो विधाएँ समाज के इतिहास, संस्कृति, और राजनीति को परिभाषित करने और पुनःनिर्माण करने का कार्य करती हैं।

2. हिंदी गद्य साहित्य और समाज :

2.1. हिंदी गद्य साहित्य का विकास – हिंदी गद्य साहित्य का विकास 19वीं सदी के उत्तरार्ध से प्रारंभ हुआ, जब औपनिवेशिक भारत में सामाजिक चेतना और आधुनिक शिक्षा का प्रसार हो रहा था। इस काल में गद्य का उपयोग केवल धार्मिक या शैक्षणिक कार्यों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह सामाजिक समस्याओं, मानव अधिकारों, और सांस्कृतिक मूल्य बोध के अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिंदी गद्य साहित्य का जनक माना जाता है। उन्होंने नाटक, निबंध और यात्रा–वृत्तांतों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक बुराइयों पर प्रकाश डाला। इसके पश्चात द्विवेदी युग (1893–1918), छायावाद (1918–1936) और प्रगतिशील युग (1936–1950) जैसे विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों ने हिंदी गद्य को नए विचार, संवेदना और सामाजिक दृष्टिकोण से समृद्ध किया। स्वतंत्रता संग्राम के समय हिंदी गद्य साहित्य राष्ट्रवादी चेतना और सामाजिक परिवर्तन का हथियार बन गया।

2.2 समाज पर प्रभाव – हिंदी गद्य साहित्य ने सदैव समाज के यथार्थ को प्रतिबिंबित किया है – चाहे वह जातिवाद, वर्ग संघर्ष, लैंगिक असमानता या शोषण हो। प्रेमचंद जैसे लेखकों ने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से ग्रामीण भारत की समस्याओं, किसान जीवन, सामाजिक अन्याय और आर्थिक शोषण को उद्घाटित किया। 'गोदान' (1936) प्रेमचंद का वह कालजयी उपन्यास है जिसमें किसान की गरीबी, व्यवस्था की जटिलता और समाज की असंवेदनशीलता को अत्यंत यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया गया है। भीष्म साहनी के 'तमस' में विभाजन की त्रासदी, सांप्रदायिकता और मानवीय पीड़ा का मार्मिक चित्रण है, जो आज भी प्रासंगिक है। धर्मवीर भारती की 'गुनाहों का देवता' सामाजिक मर्यादाओं और भावनात्मक संघर्षों का दस्तावेज बनती है। मन्नू भंडारी, महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम जैसी लेखिकाओं ने नारी विमर्श को साहित्यिक मुख्यधारा में स्थान दिलाया। वर्तमान

समय में दलित साहित्य, आदिवासी विमर्श आदि विषयों पर केंद्रित गद्य साहित्य समाज के विविध आयामों को उजागर कर रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' और शरणकुमार लिंबाळे की 'अक्करमाशी' जैसी रचनाएँ भारतीय समाज के उस पक्ष को सामने लाती हैं जिसे अक्सर मुख्यधारा के साहित्य ने उपेक्षित किया।

हिंदी गद्य साहित्यकार न केवल शब्दों के कलाकार रहे हैं, बल्कि समाज के सजग प्रहरी भी। रवींद्रनाथ ठाकुर, हालाँकि वे मुख्यतः बंगला साहित्य से जुड़े थे, लेकिन उनके विचारों और रचनाओं का हिंदी साहित्य पर भी गहरा प्रभाव रहा। वे मानवीय संवेदना और स्वतंत्रता के पक्षधर थे। प्रेमचंद सामाजिक यथार्थवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने ग्रामीण भारत, गरीबी, नारी समस्याएँ और जातिवाद जैसे विषयों पर गंभीर लेखन किया भीष्म साहनी के लेखन में ऐतिहासिक घटनाओं जैसे विभाजन की पीड़ा, साम्प्रदायिक तनाव, और राजनीतिक अस्थिरता का सजीव चित्रण मिलता है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' 'मैला आँचल' जैसे उपन्यासों के माध्यम से ग्रामीण चेतना और राजनीतिक विडंबनाओं का चित्रण करते हैं। इन साहित्यकारों ने न केवल समाज की आलोचना की बल्कि सामाजिक परिवर्तन के लिए साहित्य को माध्यम बनाया। उन्होंने साहित्य को एक आंदोलन की तरह प्रयोग किया, जो समाज की पीड़ा को पहचानता है और उसे स्वर देता है।[1]

'गोदान' और प्रेमचंद की समाज दृष्टि –

'गोदान' प्रेमचंद का अंतिम और सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है, जो 20वीं शताब्दी के भारत के ग्रामीण जीवन, वर्ग संरचना और सामाजिक व्यवस्था का यथार्थवादी चित्रण करता है। इस उपन्यास में नायक 'होरी' एक साधारण किसान है जो अपने जीवन में एक गाय का स्वप्न पालता है। यह स्वप्न उसकी सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक आकांक्षाओं का प्रतीक बन जाता है। लेकिन जैसे–जैसे कहानी आगे बढ़ती है, पाठक को पता चलता है कि यह केवल एक व्यक्ति की त्रासदी नहीं है, बल्कि पूरे किसान वर्ग की स्थिति का प्रतीक है। 'गोदान' में समाज की कई परतें उजागर होती हैं – जमींदारी व्यवस्था, महाजनी शोषण, जातिगत भेदभाव, और प्रशासनिक भ्रष्टाचार। प्रेमचंद ने किसी आदर्श समाज की कल्पना नहीं की, बल्कि यथार्थ को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया, जो उन्हें महान यथार्थवादी बनाता है।

3. हिंदी सिनेमा और समाज :

3.1 हिंदी सिनेमा का इतिहास – हिंदी सिनेमा की शुरुआत 1913 में दादा साहब फाल्के द्वारा निर्मित पहली मूक फिल्म **राजा हरिश्चंद्र**[2] से मानी जाती है। प्रारंभिक दशकों में सिनेमा धार्मिक और पौराणिक कथाओं पर आधारित था, लेकिन धीरे–धीरे इसमें सामाजिक और यथार्थपरक विषयों का समावेश होने लगा। 1940 और 1950 के दशक को 'स्वर्ण युग' माना जाता है, जब गुरुदत्त, बिमल रॉय, राज कपूर जैसे फिल्मकारों ने समाज की सच्चाइयों को फिल्मों में स्थान देना शुरू किया 1960 और 70 के दशक में भारतीय समाज राजनीतिक उथल–पुथल, बेरोजगारी, गरीबी, और वर्ग संघर्ष से गुजर रहा था। इसका प्रभाव हिंदी सिनेमा पर स्पष्ट दिखा, जब दीवार, जंजीर, शोले जैसी फिल्मों में 'एंग्री यंग मैन' के रूप में एक नया नायक सामने आया, जो व्यवस्था से टकराता था। 1980 के बाद सामाजिक यथार्थ और व्यावसायिक मनोरंजन के बीच संतुलन स्थापित करने की कोशिशें हुईं। वहीं 1990 के बाद, भूमंडलीकरण और उपभोक्तावाद के साथ–साथ सामाजिक समस्याओं पर केंद्रित सिनेमा का एक नया स्वरूप उभरा, जिसे समानांतर सिनेमा कहा गया।[4]

3.2 सिनेमा का समाज पर प्रभाव – सिनेमा केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रहा है, बल्कि इसने सामाजिक विचारों, मूल्यों और चेतना को आकार देने में भी भूमिका निभाई है। सिनेमा ने जातिवाद, लिंगभेद, बाल विवाह, भ्रष्टाचार, घरेलू हिंसा, और ग्रामीण–शहरी विभाजन जैसे मुद्दों को उठाकर जनता के बीच संवाद को जन्म दिया।राज कपूर की 'श्री 420' और 'आवारा' जैसी फिल्मों में शहरीकरण, नैतिक संघर्ष और वर्ग भेद को चित्रित किया गया। 1957 में आई बिमल रॉय की 'दो बीघा जमीन' किसान की दुर्दशा और शोषण की सशक्त व्याख्या करती है। ये फिल्में सामाजिक यथार्थ को बड़े पैमाने पर दर्शकों तक पहुँचाने का कार्य करती रहीं। सिनेमा ने सामाजिक व्यवहार और सोच को भी प्रभावित किया। फैशन, भाषा, जीवनशैली और यहाँ तक कि राजनीतिक रुझानों में भी फिल्मों का प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, 'लज्जा' (2001) ने महिला अधिकारों पर विमर्श को बल दिया, वहीं 'तारे जमीन पर' (2007) ने शिक्षा प्रणाली और बच्चों की संवेदनाओं को समझने का नया दृष्टिकोण दिया।

3.3 सिनेमा में सामाजिक मुद्दों का चित्रण – हिंदी सिनेमा ने कई सामाजिक मुद्दों को अपनी विषयवस्तु बनाया है। हिंदी सिनेमा के कई फिल्मकारों ने समाज सुधारक की भूमिका निभाई है। राज कपूर को 'शोमैन ऑफ सिनेमा' कहा जाता है, लेकिन उनके अधिकतर फिल्मों में आम आदमी की स्थिति, सामाजिक विषमता, और प्रेम की नैतिक जटिलता को दर्शाया गया। सत्यजीत रे, भले ही बंगाली सिनेमा के मुख्य स्तंभ थे, लेकिन उनकी फिल्में 'अपूर्व संसार', 'पाथेर पांचाली' आदि भारतीय ग्रामीण जीवन, गरीबी और संघर्ष का सार्वदेशिक चित्रण करती हैं। श्याम बेनेगल और गोविंद निहलानी जैसे फिल्मकारों ने 'निशांत', 'आक्रोश', 'अर्धसत्य' जैसी फिल्मों से सत्ता, हिंसा, और वर्ग–संघर्ष को पर्दे पर लाकर सिनेमा को गंभीर सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनाया। प्रकाश झा ने राजनीति और समाज के जटिल रिश्तों को केंद्र में रखकर 'गंगाजल', 'राजनीति', 'सत्याग्रह 'जैसी फिल्मों के माध्यम से जनता और शासन के बीच के तनाव को दिखाया।

यह भी देखा गया है कि कई बार सिनेमा समाज से पहले बदलाव की पहल करता है – जैसे 'दम लगा के हईशा' (2015) और 'बधाई हो' (2018) जैसी फिल्में पारंपरिक मानसिकताओं को तोड़ने में मददगार रहीं।

4. राजनीति और साहित्य :

4.1 साहित्य में राजनीतिक प्रभाव – राजनीति और साहित्य का संबंध ऐतिहासिक और वैचारिक दृष्टिकोण से अत्यंत गहरा रहा है। विशेषकर हिंदी गद्य साहित्य में स्वतंत्रता संग्राम, आपातकाल, किसान आंदोलन, और लोकतांत्रिक परिवर्तनों जैसे घटनाक्रमों ने साहित्यिक रचनाओं को दिशा दी। हिंदी के लेखकों ने राजनीति को केवल विषय नहीं, बल्कि विचार और आंदोलन के रूप में ग्रहण किया। उनके लेखन में राजनीतिक चेतना, विरोध, असहमति और बदलाव की आकांक्षा बार–बार व्यक्त हुई है। उदाहरण के लिए, भारत के स्वतंत्रता आंदोलन ने राष्ट्रवादी लेखन को जन्म दिया, जिसमें महात्मा गांधी, भगत सिंह और सुभाष चंद्र बोस जैसे नेताओं के विचारों ने प्रेरणा दी। इस समय के लेखकों ने जनजागरण और राजनीतिक चेतना को फैलाने के लिए साहित्य को माध्यम बनाया। जैसे मैथिलीशरण गुप्त की काव्य रचनाओं में भारतमाता की वंदना और स्वतंत्रता की ललक झलकती है, वैसे ही गद्य साहित्यकारों ने भी अपने पात्रों के माध्यम से औपनिवेशिक शोषण और संघर्ष को चित्रित किया। इस प्रकार साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं रहा, बल्कि यह समाज और राजनीति के बीच सेतु बन गया।[5]

4.2 राजनीतिक विचारधाराओं का साहित्य पर प्रभाव :

राजनीतिक विचारधाराओं जैसे मार्क्सवाद, समाजवाद, राष्ट्रवाद, गांधीवाद, और नक्सलवाद ने हिंदी साहित्य को गहराई और विविधता प्रदान की है। विशेष रूप से प्रगतिशील लेखक संघ (1936) की स्थापना के बाद, हिंदी साहित्य में सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर खुलकर लेखन हुआ।

मार्क्सवाद का प्रभाव लेखक जैसे सआदत हसन मंटो, नागार्जुन, और गजानन माधव मुक्तिबोध की रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है। इन रचनाओं में वर्ग संघर्ष, मजदूरों की पीड़ा, और पूंजीवाद की आलोचना के स्वर मुखर हैं। मंटो की कहानियों में विभाजन की त्रासदी और मानवीय करुणा का यथार्थ चित्रण मिलता है, जबकि मुक्तिबोध के गद्य और काव्य में आत्ममंथन, बौद्धिक बेचैनी और व्यवस्था से टकराहट की छटपटाहट स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। गांधीवाद से प्रेरित लेखकों में प्रेमचंद का नाम प्रमुख है। उन्होंने 'साध्य के लिए साधन की पवित्रता' जैसे गांधीवादी सिद्धांतों को अपने उपन्यासों और कहानियों में स्थान दिया। प्रेमचंद की 'कर्मभूमि' और 'निर्मला' जैसी कृतियाँ नारी, जाति, और शोषण जैसे विषयों को गांधीवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं। समाजवाद का प्रभाव विशेष रूप से धर्मवीर भारती और फणीश्वरनाथ रेणु जैसे लेखकों में दिखता है। भारती के 'गुनाहों का देवता' में सामाजिक मर्यादा, त्याग और नैतिक द्वंद्व के माध्यम से यथार्थ का चित्रण किया गया है।

रेणु की 'मैला आँचल' ग्रामीण भारत और उसकी समस्याओं को संवेदनशील दृष्टि से प्रस्तुत करती है, जिसमें समाजवादी चेतना और परिवर्तन की आकांक्षा अंतर्निहित है। राष्ट्रवाद और स्वतंत्रता के विचारों ने सुभद्राकुमारी चौहान और रामधारी सिंह दिनकर जैसे कवियों और लेखकों को प्रभावित किया, जिनके गद्य साहित्य में भी यह विचारधारा झलकती है। इन लेखकों ने साहित्य को राष्ट्रीय चेतना के विस्तार का माध्यम बनाया और जनमानस को जागरूक करने का कार्य किया।राजनीतिक विचारधाराओं का यह प्रभाव केवल वैचारिक स्तर तक सीमित नहीं रहा, बल्कि लेखन की भाषा, शैली और संवेदना पर भी गहरा असर पड़ा। साहित्य एक नैतिक और वैचारिक संघर्ष का औजार बन गया, जहाँ लेखक ने सत्ता, समाज और व्यवस्था से संवाद स्थापित किया।[6]

4.3 प्रमुख राजनीतिक साहित्यिक रचनाएँ और लेखक – हिंदी साहित्य में कुछ विशिष्ट रचनाएँ हैं जिन्होंने राजनीति को केंद्रीय विषय बनाया और समाज को जागरूक करने का कार्य किया। इन रचनाओं ने न केवल तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किया, बल्कि पाठकों को सत्ता, व्यवस्था और सामाजिक निष्क्रियता पर सोचने के लिए प्रेरित किया।

प्रेमचंद की 'रंगभूमि' में एक अंधे भिक्षुक 'सूरदास' के माध्यम से उपनिवेशी सत्ता और पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्ष को दर्शाया गया है। 'कफन' जैसी कहानी में गरीबी, शोषण और असंवेदनशील व्यवस्था की तीव्र आलोचना की गई है। प्रेमचंद का साहित्य समकालीन सामाजिक और राजनीतिक विडंबनाओं का जीवंत दस्तावेज है।

भीष्म साहनी की 'तमस' (1973) भारत–पाक विभाजन और उसकी त्रासदी पर केंद्रित है, जिसमें धार्मिक उन्माद और राजनैतिक साजिशों को अत्यंत मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास न केवल ऐतिहासिक दस्तावेज है, बल्कि वर्तमान सांप्रदायिक राजनीति की भी पड़ताल करता है।

गजानन माधव मुक्तिबोध की गद्यात्मक रचनाएँ – जैसे उनके निबंध, डायरी अंश और आलोचनात्मक लेखन – राजनीतिक असुरक्षा, बौद्धिक द्वंद्व और नैतिक गिरावट पर गहरी टिप्पणी करते हैं। उनका लेखन व्यवस्था के विरुद्ध एक बौद्धिक प्रतिरोध है, जिसमें आत्मसाक्षात्कार और विद्रोह का स्वर प्रमुख है। शरद जोशी

और हरिशंकर परसाई जैसे व्यंग्यकारों ने राजनीति को व्यंग्य के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाया। परसाई की 'राग दरबारी' राजनीति, प्रशासन और शिक्षा व्यवस्था पर एक तीव्र कटाक्ष है, जिसमें भारतीय समाज की जटिलताओं और विडंबनाओं का चित्रण है। शरद जोशी की रचनाएँ राजनीतिक नीतियों की विसंगतियों को हास्य के माध्यम से उजागर करती हैं। इन लेखकों और कृतियों ने साहित्य को सामाजिक आलोचना और राजनैतिक जागरूकता का माध्यम बनाया। इन्होंने साहित्य को 'मिरर ऑफ सोसाइटी' से आगे ले जाकर उसे परिवर्तन का औजार बना दिया।

4.4 गांधी, सावरकर और जयप्रकाश नारायण के विचारों का साहित्य पर प्रभाव :

महात्मा गांधी का 'हिंद स्वराज' केवल एक राजनीतिक घोषणापत्र नहीं था, बल्कि यह साहित्यिक शैली में रचित एक आत्मनिरीक्षणपूर्ण ग्रंथ था, जिसमें भारतीय समाज, सभ्यता और राजनीति की गहराई से समीक्षा की गई थी। गांधी के विचार कृ जैसे अहिंसा, सत्य, स्वदेशी, और आत्मनिर्भरता कृ ने हिंदी साहित्यकारों को नई दृष्टि प्रदान की। प्रेमचंद, अज्ञेय, पंत, और जैनेन्द्र जैसे लेखकों की रचनाओं में गांधीवादी आदर्शों की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। प्रेमचंद ने 'नमक का दरोगा', 'निर्मला' और 'कर्मभूमि' जैसी कृतियों में गांधीजी के विचारों को सामाजिक संदर्भ में पिरोया, जहाँ आत्मबल, नैतिकता और सत्य का महत्व प्रत्यक्ष होता है। अज्ञेय के साहित्य में गांधीवादी आदर्शों और आत्मसंघर्ष का दर्शन मिलता है, तो वहीं पंत की कविताओं में 'चरखा', 'ग्राम्य जीवन', और 'स्वदेशी' जैसे प्रतीकों के माध्यम से एक नई चेतना का संचार होता है। गांधीजी की विचारधारा ने साहित्य को केवल सामाजिक यथार्थ से जोड़ने का कार्य नहीं किया, बल्कि उसे एक नैतिक दिशा और वैचारिक दृढ़ता भी प्रदान की। इस प्रभाव का विस्तार केवल कथा–साहित्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि हिंदी नाटक, निबंध और आत्मकथाओं में भी गांधीवादी मूल्यों की अनुगूंज सुनी जा सकती है। विनायक दामोदर सावरकर के राष्ट्रवादी विचारों ने भी हिंदी साहित्य के कुछ वर्ग को प्रभावित किया। उनके लेखन में जो राष्ट्रवादी उग्रता और सांस्कृतिक गौरव का आग्रह था, वह साहित्यिक अभिव्यक्तियों में एक वैकल्पिक राष्ट्रचेतना के रूप में उभरता है। कुछ लेखकों ने इस दृष्टिकोण को हिंदू राष्ट्रवाद के रूप में अपनाया और उसे सांस्कृतिक पुनरुत्थान से जोड़ा। जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति की अवधारणा ने 1970 के दशक में साहित्य को नया तेवर दिया। विशेषकर आपातकाल के विरोध में लिखे गए लेख, कविताएँ और नाटक इस विचारधारा से प्रभावित थे। उनके विचारों ने युवा लेखकों को सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक जागरूकता की दिशा में प्रेरित किया। नागार्जुन, केदारनाथ सिंह और अन्य प्रगतिशील कवियों की रचनाओं में 'जेपी आंदोलन' की स्पष्ट गूंज सुनाई देती है।[7]

5. राजनीति और सिनेमा :

हिंदी सिनेमा में राजनीति का चित्रण बहुत प्रारंभिक समय से ही देखने को मिलता है, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इसमें अधिक स्पष्टता, गहराई और प्रतिरोध के स्वर दिखाई देने लगे। फिल्मों ने राजनीति को न केवल सत्ता के संघर्ष या चुनावी समीकरण के रूप में दर्शाया, बल्कि समाज के भीतर गहरे पैठे राजनीतिक अंतर्विरोधों, असमानताओं, भ्रष्टाचार और जन आंदोलनों के माध्यम से भी प्रस्तुत किया। 'आंधी' जैसी फिल्मों में महिला नेतृत्व, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राजनीतिक जीवन की जटिलताओं को दर्शाया गया, जबकि 'नायक' में व्यवस्था परिवर्तन की कल्पना और आम आदमी की भूमिका को केंद्र में रखा गया। 'सरकार' जैसी फिल्में राजनीति, अपराध और वंशवाद के जटिल रिश्तों की परतें खोलती हैं। इन सभी उदाहरणों में स्पष्ट है कि हिंदी सिनेमा ने राजनीति को

न केवल वस्तुगत रूप से चित्रित किया, बल्कि उसे सामाजिक संवाद और जनचेतना का माध्यम भी बनाया।[8]

भारत में 1970 और 1980 का दशक राजनीतिक उथल–पुथल, आपातकाल, बेरोजगारी और संस्थागत असंतुलन का समय रहा। इस समय का सिनेमा भी इन परिस्थितियों से अछूता नहीं रहा। 'शोले' जैसी फिल्म में जहाँ ग्रामीण भारत की असहायता और न्याय की मांग छिपी थी, वहीं 'हजारों ख्वाहिशें ऐसी' ने युवाओं के राजनीतिक मोहभंग और सामाजिक आंदोलनों से जुड़ाव को उभारा। 'चक्रव्यूह' और 'राजनीति' जैसी फिल्मों में नक्सल आंदोलन, वर्ग–संघर्ष और सत्ता की हकीकत को प्रत्यक्ष रूप में दिखाया गया। 'रंग दे बसंती' जैसी फिल्मों ने नई पीढ़ी को देशभक्ति और विरोध के बीच खड़ा किया, जहाँ युवा केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि सवाल उठाने वाले नागरिक के रूप में उभरते हैं। यह समय राजनीतिक सिनेमा का चरम था, जिसमें फिल्में केवल कहानी नहीं रहीं, बल्कि वे विचार और वैचारिक संघर्ष का मंच बन गईं।

सिनेमा के माध्यम से जब राजनीतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए जाते हैं, तब वह केवल कला नहीं रहता, बल्कि एक वैचारिक वक्तव्य बन जाता है। कई फिल्मकारों ने सत्ता विरोधी स्वर अपनाए, तो कुछ पर सत्ताधारी विचारधारा के समर्थन का आरोप लगा। प्रकाश झा की फिल्मों में राजनीति की जटिलता, सामाजिक ढाँचों में उसकी पैठ और भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। 'गंगाजल', 'आरक्षण' और 'सत्याग्रह' जैसी फिल्मों ने राजनीतिक शक्ति, पुलिस तंत्र, शिक्षा व्यवस्था और जनआंदोलन को अत्यंत यथार्थवादी तरीके से प्रस्तुत किया। वहीं अनुराग कश्यप की फिल्मों ने व्यवस्था के विरुद्ध जनता की खीझ और प्रतिरोध को कच्चे और ईमानदार स्वर में प्रस्तुत किया। 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' में आपराधिक राजनीति और जातिगत संघर्षों को एक नए सिनेमाई मुहावरे में पेश किया गया।

एक अन्य पहलू वह है जिसमें कुछ फिल्मों को किसी खास राजनीतिक विचारधारा को बढ़ावा देने या जनता की भावनाओं को उकसाने वाला माना गया। 'द कश्मीर फाइल्स' और 'द वैक्सीन वॉर' जैसी फिल्मों पर आरोप लगे कि वे एकपक्षीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं और राजनीति के उपकरण के रूप में प्रयुक्त होती हैं। यह प्रश्न उठने लगा कि क्या सिनेमा सचमुच स्वतंत्र अभिव्यक्ति का माध्यम है, या फिर वह राजनीतिक शक्ति संतुलन का औजार बन चुका है? यह बहस केवल आलोचकों तक सीमित नहीं रही, बल्कि आम दर्शक भी इससे प्रभावित हुए और उनकी प्रतिक्रियाओं में गहरा वैचारिक विभाजन दिखाई दिया।

दर्शकों की प्रतिक्रिया भी समय के साथ बदलती रही है। जहाँ एक ओर 'रंग दे बसंती' के बाद युवाओं ने सड़कों पर उतरकर आंदोलन और जनजागरण में हिस्सा लिया, वहीं 'उरीरू द सर्जिकल स्ट्राइक' जैसी फिल्मों ने राष्ट्रवाद और सेना के सम्मान की भावना को व्यापक जनसमर्थन दिलाया। लेकिन इसके विपरीत, कुछ राजनीतिक फिल्मों पर यह आरोप भी लगे कि वे सांप्रदायिकता, ध्रुवीकरण और इतिहास की तोड़–मरोड़ को बढ़ावा देती हैं। यह द्वंद्व दर्शकों को दो खेमों में बाँटता है – एक ओर वे लोग जो सिनेमा को यथार्थ का आईना मानते हैं, और दूसरी ओर वे जो इसे प्रचार का माध्यम या प्रोपेगेंडा कहते हैं।

राजनीतिक सिनेमा का प्रभाव केवल तत्कालीन समाज पर ही नहीं, बल्कि लंबे समय तक सांस्कृतिक चेतना और सामूहिक स्मृति पर भी पड़ा है। दर्शकों के भीतर सवाल उठाने की प्रवृत्ति बढ़ी, सत्ता के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित हुआ, और सिनेमा धीरे–धीरे 'मसाला मनोरंजन' से आगे बढ़कर विचार विमर्श का केंद्र बन गया। इस परिवर्तन ने न केवल हिंदी सिनेमा की दिशा बदली, बल्कि उसके सामाजिक उत्तरदायित्व

की परिभाषा को भी व्यापक बना दिया।

राजनीतिक सिनेमा की यह यात्रा, जो स्वतंत्रता पूर्व की प्रत्यक्ष राष्ट्रवादी फिल्मों से शुरू हुई थी, आज सोशल मीडिया, स्ट्रीमिंग प्लेटफार्म्स और वैश्विक राजनीति के दौर में और भी जटिल हो गई है। अब फिल्में केवल बॉक्स ऑफिस तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे राष्ट्रीय बहसों का विषय बन चुकी हैं। यह परिवर्तन दर्शाता है कि सिनेमा ने राजनीतिक चेतना के निर्माण और सामाजिक परिवर्तन में एक सक्रिय भूमिका निभाई है – कभी प्रतिरोध के स्वर में, कभी प्रचार के रूप में, और कभी आत्मावलोकन के साधन के रूप में।[9]

6. साहित्य और सिनेमा के बीच संबंध :

हिंदी साहित्य और सिनेमा के बीच संबंध एक गहन, जटिल और रचनात्मक संवाद की प्रक्रिया रही है। जब भारत में सिनेमा एक नवीन कला विधा के रूप में सामने आया, तब उसकी विषयवस्तु और भाव–भाषा को गढ़ने के लिए उसे साहित्य से प्रेरणा लेनी पड़ी। साहित्य विचार, संवेदना और सामाजिक यथार्थ को भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जबकि सिनेमा इन विचारों को दृश्य रूप में मूर्त करता है। एक माध्यम जहाँ अंतर्मुखी अनुभव प्रदान करता है, वहीं दूसरा बाह्य जगत की गतिविधियों को सामने रखता है। दोनों की यह भिन्न प्रकृति होते हुए भी, इनका संवाद अत्यंत जीवंत और समाज को प्रभावित करने वाला रहा है।

हिंदी सिनेमा की आरंभिक यात्रा में ही साहित्यिक कृतियों ने आधारशिला का कार्य किया। कई क्लासिक फिल्में प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों से रूपांतरित होकर बनीं और उन्होंने जनमानस में साहित्यिक संवेदना को पहुँचाया। प्रेमचंद की रचनाओं पर आधारित 'गोदान 'जैसी फिल्में न केवल ग्रामीण भारत की पीड़ा को उकेरती हैं, बल्कि समाज में व्याप्त आर्थिक और जातिगत विषमताओं की भी सजीव प्रस्तुति करती हैं। 'कफन' जैसी कथा पर बनी प्रस्तुतियों ने मानवीय त्रासदी और भूख की अमानवीयता को एक चुभते हुए यथार्थ के रूप में दिखाया। भीष्म साहनी की कृति 'तमस'जब दृश्य माध्यम में आई, तब विभाजन की त्रासदी को भारतीय मानस ने और गहराई से समझा। इसी प्रकार, रेणु की 'मैला आँचल' ग्रामीण भारत के सामाजिक ताने–बाने और राजनीतिक संक्रमण को उजागर करती है। बिमल रॉय की 'दो बीघा जमीन' और 'बंदिनी' जैसी फिल्में साहित्यिक दृष्टिकोण से गहराई लिए हुए थीं, जो उस दौर के सामाजिक संकटों को दर्शाती हैं।

यह भी एक उल्लेखनीय पक्ष है कि सिनेमा का प्रभाव साहित्य पर भी परिलक्षित होता रहा है। आधुनिक साहित्य विशेषकर कहानी और उपन्यास लेखन में फिल्मों की दृश्यात्मकता, संवाद की तीव्रता और चरित्र निर्माण की सिनेमाई गति को अपनाया गया है। अनेक लेखक फिल्मों से प्रेरित होकर कथा रचना की ओर प्रवृत्त हुए। 'रंग दे बसंती', 'सत्या' और 'हजारों ख्वाहिशें ऐसी' जैसी फिल्मों ने युवा लेखकों को अपराध, राजनीति और व्यवस्था–विरोध जैसे विषयों पर लेखन के लिए प्रेरित किया। फिल्मों की पटकथा लेखन और संवाद शैली ने साहित्य के एक नए उपविधा 'नाट्य लेखन और स्क्रीनप्ले' को जन्म दिया। विजय तेंडुलकर, सआदत हसन मंटो और गिरीश कर्नाड जैसे लेखक इस क्षेत्र में साहित्य और सिनेमा के संगम का प्रतीक बनकर उभरे। उन्होंने अपने लेखन को न केवल मंच पर, बल्कि पर्दे पर भी जीवंत किया।

जब साहित्य और सिनेमा मिलकर समाज और राजनीति पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं, तब यह प्रभाव और भी व्यापक हो जाता है। किसी साहित्यिक रचना के दृश्य माध्यम में रूपांतरित होने से वह व्यापक जनसमूह तक पहुँचती है और उस विषय पर सामाजिक चेतना का निर्माण करती है। उदाहरण के लिए 'हजारों ख्वाहिशें ऐसी'

ने न केवल एक पीढ़ी के राजनीतिक मोहभंग और आंदोलनकारी चेतना को उकेरा, बल्कि उस समय की ऐतिहासिक वास्तविकताओं को भी लोगों के समक्ष स्पष्ट किया। 'पिंजर'जैसी फिल्में सांप्रदायिक विभाजन के गहरे घावों को साहित्यिक संवेदना के साथ दृश्य माध्यम में लाकर दर्शकों के मन को आंदोलित करती हैं। सत्यजीत रे की 'शतरंज के खिलाड़ी', जो मुंशी प्रेमचंद की कहानी पर आधारित है, उपनिवेशकालीन भारत की राजनीतिक निष्क्रियता और सांस्कृतिक पतन को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करती है। जब सामाजिक न्याय, नारी अधिकार, जातीय भेदभाव या वर्ग संघर्ष जैसे मुद्दे साहित्य और सिनेमा दोनों माध्यमों में उठाए जाते हैं, तब वे जनमानस में गहरे उतरते हैं और परिवर्तन की भूमिका अदा करते हैं।

यद्यपि साहित्यिक कृतियों का सिनेमाई रूपांतरण बहुधा प्रभावशाली सिद्ध हुआ है, परंतु इस प्रक्रिया को लेकर कुछ आलोचनाएँ भी प्रकट हुई हैं। आलोचकों का मानना है कि कई बार व्यावसायिक दबावों और दर्शक की रुचियों को ध्यान में रखते हुए साहित्यिक मूल भावना से समझौता किया जाता है। किसी गंभीर कृति को 'सरल', 'मनोरंजक' या 'लोकप्रिय' बनाने के प्रयास में उसकी गहराई और आलोचनात्मक दृष्टि खो जाती है। साहित्य जो प्रश्न उठाता है, सिनेमा कभी–कभी उन्हें सजाकर प्रस्तुत करता है या उनका उत्तर दे देता है, जिससे विचार की प्रक्रिया बाधित होती है। इसी प्रकार, साहित्य के जटिल पात्रों को फिल्मों में सरलीकृत करके प्रस्तुत किया जाता है, जिससे उनकी बहुआयामी प्रकृति दब जाती है। यह भी देखा गया है कि कई बार फिल्म रूपांतरण में मूल कथा की आत्मा को खो दिया जाता है। सिनेमाई समय की सीमा, दर्शकों की अपेक्षा, और निर्माता की व्यावसायिक सोच, मूल साहित्यिक सन्देश को सीमित कर सकती है। फिर भी यह भी उतना ही सत्य है कि अनेक फिल्मकारों ने इन सीमाओं के भीतर रहते हुए भी साहित्यिक कृतियों को सजीव करने का सराहनीय कार्य किया है।

7. निष्कर्ष –

हिंदी गद्य साहित्य और सिनेमा का समाज और राजनीति से संबंध अत्यंत गहन, बहुआयामी और परस्पर प्रभावी रहा है। यह रिश्ता समय के साथ और अधिक जटिल तथा गत्यात्मक होता गया है। साहित्य और सिनेमा न केवल समाज की वर्तमान स्थिति का प्रतिबिंब प्रस्तुत करते हैं, बल्कि समाज को दिशा देने, विचार उत्पन्न करने और राजनीतिक चेतना जागृत करने का कार्य भी करते हैं।हिंदी गद्य साहित्य ने समाज के विभिन्न पहलुओं जैसे 'जातिवाद, स्त्री–विमर्श, वर्ग–संघर्ष, धार्मिक कट्टरता, और राजनीतिक अस्थिरता' को गहराई से उकेरा है। साहित्यकारों ने न केवल यथार्थ का वर्णन किया, बल्कि उस यथार्थ को बदलने की आकांक्षा भी जताई।

प्रेमचंद से लेकर भीष्म साहनी, अज्ञेय, मुक्तिबोध, और हरिशंकर परसाई तक सभी लेखकों ने अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों को कलम के माध्यम से रेखांकित किया। हिंदी गद्य साहित्य समाज की अंर्तध्वनियों को अभिव्यक्त करने का माध्यम बना और उसने पाठकों को सोचने, समझने और प्रश्न पूछने की प्रेरणा दी।

हिंदी सिनेमा ने भी समाज और राजनीति के प्रभावों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रारंभिक मनोरंजन प्रधान सिनेमा से लेकर समकालीन यथार्थवादी फिल्मों तक, हिंदी फिल्मों ने सामाजिक विषमताओं, सत्ता के दुरुपयोग, जन आंदोलनों और राष्ट्रवादी भावनाओं को पर्दे पर उतारा। साहित्य और सिनेमा का रिश्ता केवल प्रेरणा तक सीमित नहीं है, यह एक निरंतर संवाद का रूप ले चुका है। साहित्यिक कृतियों के

फिल्मी रूपांतरणों ने साहित्य को आम जन तक पहुँचाने का कार्य किया, वहीं फिल्मों की दृश्यात्मकता ने लेखकों को नई सोच और शैली प्रदान की।

वर्तमान में, जब समाज तेजी से बदल रहा है और राजनीति नई दिशा में अग्रसर हो रही है, ऐसे समय में साहित्य और सिनेमा की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म के युग में अब अभिव्यक्ति के नए माध्यम उभर रहे हैं, परंतु साहित्य और सिनेमा की मूल संवेदना अब भी प्रासंगिक है।

निष्कर्षतः, यह कहा जा सकता है कि हिंदी गद्य साहित्य और सिनेमा दोनों ने समाज और राजनीति के संबंधों को ना केवल रेखांकित किया है, बल्कि उसे आकार भी दिया है। ये दोनों माध्यम विचार, संवेदना और क्रांति के वाहक हैं और जब ये एक साथ समाज से संवाद करते हैं, तो परिवर्तन की संभावनाएँ और अधिक प्रबल हो जाती हैं।

8. संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. प्रेमचंद, गोदान, लोकभारती प्रकाशन, 1936, अध्याय 1–20
2. भीष्म साहनी, तमस, राजकमल प्रकाशन, 1973, अध्याय 3–9
3. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, भारतीय ज्ञानपीठ, 1954, अध्याय 2–7
4. हरिशंकर परसाई, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, वाणी प्रकाशन, 1965, पृष्ठ 23–41
5. अज्ञेय, शेखर : एक जीवनी, राजकमल प्रकाशन, 1941, खंड 1 व 2
6. सआदत हसन मंटो, टोबा टेक सिंह, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 14–21
7. मुक्तिबोध, अंधेरे में, राजकमल प्रकाशन, 1964
8. विजय तेंडुलकर, घाशीराम कोतवाल, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1973
9. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन 1981, अध्याय 4, 6
10. नामवर सिंह, हिंदी साहित्य की आधुनिकता, राजकमल प्रकाशन, 1978, अध्याय 1–3
11. रामचंद्र गुहा, India After Gandhi, Picador India, 2007, पृष्ठ 55–98
12. अरविंद कुमार, हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, साहित्य अकादमी, 2011, पृष्ठ 65–90

ई–मेल– aryan.1259@gmail.com

मोबाइल नंबर– 9602816826

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 65–70

लोकतंत्र के विकास में जनमत एवं मीडिया की भूमिका का अवलोकन

डॉ. अभिषेक अग्रवाल
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, कला एवं मानवीकि संकाय,
कलिंगा विश्वविद्यालय, कोटनी, नया रायपुर, (छत्तीसगढ)

सारांश :–

लोकतंत्र में जनता ही शासन करती है। संसदीय प्रजातंत्र में मीडिया एवं विधायी संस्थाओं का अटूट और गहरा रिश्ता होता है। प्रजातंत्र के प्रासाद में विधायिका पहला पाया है, तो संचार माध्यम (मीडिया) इसका चौथा पाया। वस्तुतः दोनों ही जन अभिव्यक्ति के माध्यम हैं और जनता, समाज और देश के प्रति उत्तरदायी है। मीडिया, प्रजातंत्र का स्वस्थ विकास करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मीडिया प्रत्येक व्यक्ति, राजनीतिक दल आदि को यह अवसर प्रदान करता है कि वह अपनी श्रेष्ठता अथवा योग्यता को प्रमाणित करे। समस्त विश्व की शासन प्रक्रिया में जितना महत्वपूर्ण एवं जनप्रिय प्रजातंत्र प्रणाली को माना जाता है, उतना ही महत्वपूर्ण स्थान प्रजातंत्र में मीडिया की भूमिका का है। मीडिसर जनभावना, प्रजातंत्र का केन्द्र बिन्दु, राजनीतिक प्रक्रियाओं का मार्गदर्शक एवं राष्ट्रीय व्यवहार का मापक है।

निर्वाचन प्रणाली के अंतर्गत स्वस्थ लोकतंत्र निर्माण में शासक वर्ग की मदद सिर्फ मीडिया नहीं करता, शिक्षा का पूरा ढाँचा भी करता है। यहाँ तक कि साहित्य और कलाएं भी इस काम में पीछे नहीं रहती। लोकतंत्र के विकास में जनसंचार–माध्यमों की भूमिका अपरिहार्य है। समाचार–पत्र, पत्रिका, राजनीतिक दल, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, साहित्य, गोष्ठि, विविध संस्थायें जनमत को प्रभावित करती हैं।

जनमत निर्माण में कभी–कभी मीडिया का नकारात्मक प्रयोग भी होता है, जिसका प्रभाव नकारात्मक पड़ता है। यदि सही तरीके से और समाज कल्याण को सामने रखकर मीडिया माध्यमों का प्रयोग किया जाए तो उससे सशक्त लोकतंत्र का निर्माण होता है तथा समाज को अत्यधिक लाभ पहुंचता है, किन्तु कभी–कभी दुर्भाग्यवश कुछ लोग इससे लाभ उठाने की बजाए इसका प्रयोग व्यक्तिगत लाभों या स्वार्थ सिद्धि के साधन के रूप में करते हैं।

वर्तमान समय में भारत में स्वस्थ निर्वाचन प्रणाली एवं लोकतंत्र निर्माण में अशिक्षा, गरीबी, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रियता और राजनीतिक गुटबाजी बाधक है। इन बाधाओं को जागरूक जन–संचार माध्यमों एवं मीडिया से दूर किया जा सकता है।

मुख्य शब्द – लोकतंत्र, विधायिका, जनमत, संचार माध्यम. निर्वाचन प्रणाली।

संसदीय प्रजातंत्र में संचार माध्यमों (मीडिया) एवं विधायी संस्थाओं का अटूट और गहरा रिश्ता होता है। प्रजातंत्र के प्रसाद में विधायिका पहला पाया है तो संचार माध्यम इसका चौथा पाया। वस्तुतः दोनों ही जन अभिव्यक्ति के माध्यम हैं और जनता, समाज और देश के प्रति उत्तरदायी है। समस्त विश्व की शासन प्रक्रिया में जितना महत्वपूर्ण एवं जनप्रिय प्रजातंत्र प्रणाली को माना जाता है उतना ही महत्वपूर्ण स्थान प्रजातंत्र में संचार माध्यमों की भूमिका का है। प्रेस जनभावना, प्रजातंत्र का केन्द्र बिन्दु, राजनीतिक प्रक्रियाओं का मार्गदर्शक एवं राष्ट्रीय व्यवहार का मापक है। यदि कहा जाए कि आज संचार विश्व चेतना व समाज में बढ़ती जा रही जागरूकता का प्रतीक है, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

''स्वस्थ लोकतंत्र निर्माण में शासक वर्ग की मदद सिर्फ मीडिया नहीं करता, शिक्षा का पूरा ढाँचा भी करता है। यहाँ तक कि साहित्य और कलाएं भी इस काम में पीछे नहीं रहती। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में इंटरनेट के माध्यम से किए जाने वाले दैनिक सर्वेक्षण को प्रमाण मानें तो इंटरनेट की सुविधा भोगने वाले शिक्षित और अमीर वर्ग अपने विचारों में उतना ही अंधराष्ट्रवादी और अलोकतांत्रिक है। स्कूल और कालेज स्तर की पाठ्य पुस्तकें ही नहीं इन शिक्षा संस्थानों में होने वाली सांस्कृतिक गतिविधियां भी विद्यार्थियों को एक खास तरह के राजनीतिक रूझान की तरफ धकेलती हैं। उन्हें स्वतंत्र रूप से अपने आसपास के यथार्थ को समझने और अपने निर्णय खुद लेने की क्षमता से वंचित कर देती हैं।''[1]

भारत में लोकतंत्र में जनमत निर्माण के साधन :

जन, जनतंत्र और जनमत –

लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार जनता की सहमति पर आधारित होती है। कभी–कभी ऐसी भी प्रत्युक्ति या ऐसा भी कहा जाता है कि यह जनता की सरकार है अथवा ऐसी सरकार है, जिसमें प्रभुसत्ता जन–साधारण में निहित है। प्रभुसत्ता से तात्पर्य है– निर्णय करने की सर्वोच्च शक्ति।

''जनमत बनाने में शासक वर्ग की मदद सिर्फ मीडिया नहीं करता, शिक्षा का पूरा ढांचा भी करता है। यहाँ तक कि साहित्य और कलाएं भी इस काम में पीछे नहीं रहती। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में इंटरनेट के माध्यम से किए जाने वाले दैनिक सर्वेक्षण को प्रमाण मानें तो इंटरनेट की सुविधा भोगने वाले शिक्षित और अमीर वर्ग अपने विचारों में उतना ही अंधराष्ट्रवादी और अलोकतांत्रिक है। स्कूल और कालेज स्तर की पाठ्य पुस्तकें ही नहीं इन शिक्षा संस्थानों में होने वाली सांस्कृतिक गतिविधियां भी विद्यार्थियों को एक खास तरह के राजनीतिक रूझान की तरफ धकेलती हैं। उन्हें स्वतंत्र रूप से अपने आसपास के यथार्थ को समझने और अपने निर्णय खुद लेने की क्षमता से वंचित कर देती हैं।''[2]

सार्वजनिक सभायें – सार्वजनिक सभाऐं, जुलूस, मंच आदि अभिव्यक्ति के महत्वपूर्ण साधन हैं। जब जनसंचार माध्यमों का विकास नहीं हुआ था तब सभा–सम्मेलना तथा मंच के द्वारा जनमत तैयार किया जाता था। ''भारत जैसे देश में जहाँ शिक्षा का प्रसार सीमित है, वहाँ इन सभाओं का बड़ा महत्व है। इन सभाओं में सार्वजनिक प्रश्नों पर विचार–विमर्श होता है। गाँव, नगर, कस्बे, जिले या शहर में किसी सार्वजनिक स्थल पर इस प्रकार की सभाओं में जनता की कठिनाईयों के बारे में विपक्षी दल के द्वारा प्रहार किया जाता है। दूसरी ओर सत्तारूढ़ दल भी अपनी नीतियों और स्थिति को स्पष्ट करता है। जिससे जनता अपना निर्णय सरलता से ले

सकनी है। किसी भी देश में चुनाव के समय इन सर्वजनिक सभाओं की बाढ़ सी आ जाती है। राजनीतिक दल तथा विरोधी दल एक दूसरे के कार्यक्रमों को स्पष्ट करते हैं और जनता को बहुत सी जानकारी देते हैं।''[3]

अफवाह – प्रचार और अफवाह भी जनमत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। अफवाह विभिन्न दलों द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए फैलाई जाती है जिससे जनता को गुमराह किया जाता है। हमेशा ही जनता को अफवाह न फैलाने और अफवाह में विश्वास नहीं करने की सलाह दी जाती है। वस्तुतः लोकतंत्र, लोकमत पर ही निर्भर है। ''भारत जैसे देश अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में सरकार को यह ध्यान में रखना पड़ता है कि उसकी नीतियों के प्रति जनता की क्या प्रतिक्रिया होगी। राजनीतिक दलों से ही सरकारों का निर्माण होता है। सभी दल सत्तारूढ़ होना चाहते हैं। वे जनता की भलाई के कार्यक्रम लेकर जनता के पास जाते है। सत्ता प्राप्त कर सकना आगामी निर्वाचन पर निर्भर करता है। निर्वाचन में कोई दल कितने स्थानों पर विजय प्राप्त कर सकेगा यह इस बात पर निर्भर है कि जनता ने उसके कार्यक्रमों के सम्बन्ध में, जब वह सत्तारूढ़ था, क्या धारणा स्थापित की है।''[4]

''लोकतंत्र की व्यवस्था में सर्वोपरि स्थान जनता को प्रदान किया गया है। बेबेस्टर डिक्शनरी के अनुसार –''जनसामान्य, जनता से प्रचार के द्वारा सम्पर्क, अर्थात् कार्पोरेशन संस्थायें, सेना सेवाये, द्वारा अपने कार्यों की जानकारी जनता तक पँहुचाना और इसके द्वारा अपने पक्ष में जनमत तैयार करना।''[5]

राजनैतिक जन प्रचार अभियान – प्रचलित मुहावरे की तरह हर चीज को राजनीतिक करार दे देना उचित न होगा। यह अलग बात है कि भारत जैसे बहुदलीस लोकतांत्रिक देश में हर निर्णय के अपने हर राजनैतिक पहलू भी रहते हैं और अगर कोई फैसला समाज के बहुत बड़े वर्ग (आदिवासी एवं समाज के निचले तबके दलित) के जीवन को प्रभावित करने वाला हो तो ऐसे में राजनीति का आ जाना भी गैर स्वाभविक न होगा। ऐसा कोई सघन जन प्रचार अभियान जो जनता की सोच, आस्था एवं आर्थिक–सामाजिक परिवर्तन से जन सामान्य के व्यवहार को परिवर्तित करने की संभावनायें रखता हो उसे राजनीति से ही जुड़ा माना जायेगा। मोटे तौर पर राजनैतिक प्रचार अभियानों को तात्कालिक एवं दीर्घकालिक, प्रत्यक्ष व परोक्ष पार्टी हित से जोड़कर वर्गीकृत किया जा सकता है। राजनैतिक प्रचार अभियान का सर्वाधिक आम रूप चुनावी प्रचार अभियानों के दौरान देखा व समझा जा सकता है। इसे अल्पकालिक प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न करने वाले अभियान की श्रेणी में रखा जा सकता है जिससे राजनैतिक दल विशेष अपने उम्मीदवार के हित मे व्यापक प्रोपेगण्डा करते हैं। ऐसे में प्रचार अभियान का प्रतियोगितात्मक रूप प्रभावी होता है। साथ ही, दो पक्ष आमने–सामने दिखाई देने लगते हैं। प्रतिद्वंद्विता का यह रूप सघन प्रचार अभियान में अभियानकर्ता द्वारा जारी किये गये संदेशों के अलावा तरह–तरह की बातों को जन्म देता है। ऐसे में संचार माध्यमों की भूमिकायें अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। ये संचार माध्यम (समाचार माध्यम) संदेश को अपने ही ढंग से ढाल कर पाठकों तक पंहुचाते हैं। राजनैतिक अभियान में जनसम्पर्ककर्ता के गुण, दायरे एवं साधनों के उपयोग की सूझबूझ उसके बहुत काम आती है।

सत्तारूढ़ दल द्वारा जन सामान्य के हित में किये गये नीतिगत फैसलों के क्रियान्वयन के लिए चलाए गये जन सघन प्रचार विपक्ष जनित प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कुछ हद तक राजनैतिक प्रचार अभियान का रूप भी अख्तियार कर लेते हैं। जरूरी नहीं कि विपक्ष केवल विरोधी रालनैतिक दल हों, नीति से प्रभावित होने वाले निहित स्वार्थी तत्व भी ऐसे अभियानों में विपक्षी विरोधी भूमिका अदा करने से नहीं चूकते। कभी–कभी तो प्रभावित

होने वाला व्यवसायी वर्ग अपने आप में इतना महत्वपूर्ण होता है कि उनके विरोध के स्वर सघन प्रचार अभियान से भी मुखर लगने लगते हैं और नीति के खिलाफ उनकी दलीलें, तर्कसंगत प्रतीत होती हैं। ऐसे में सघन प्रचार अभियानकर्ताओं को अपनी कार्य योजना में जरूरी संसोधन करने पड़े तो हिचकना नहीं चाहिए और उन्हें कम लोगों (निहित स्वार्थी तत्व) की अपेक्षा समाज के लाभन्वित होने वाले बहुसंख्यकों के हितों के संरक्षण के नैतिक दायित्व को पूरा करना चाहिए। ''ऐसे सघन प्रचार के फलस्वरूप पक्ष–विपक्ष में आमतौर पर कोई सीधा वार्तालाप नहीं होता किन्तु वे समाचार पत्रों के माध्यम से एक दूसरे के सामने होता है और कभी–कभी ये सवाल–जवाब स्पश्ट विज्ञापनों के रूप में दिखाई देते है। इस प्रकार नियंत्रण समाचार पत्रों के हाथ में आ जाता है। ऐसे में समाचार पत्र तथ्यों को अपने ही ढंग से व्याख्या करते हैं। पाठक को उलझाने वाली सूचनायें मिलती हैं, जिससे अभियान का प्रयोजन व लक्ष्स प्राप्ति कठिन हो जाती है।''[6]

प्रोपेगण्डा – ''प्रोपेगण्डा'' संचार के मौखिक या अमौखिक यप से व्यक्ति या व्यक्तियों की प्रेरणा, विश्वास, मान्यताओं पर अभिवृत्तियों पर असरकारक प्रभाव डालने का प्रयास है। 17वीं 18वीं शताब्दी में फ्रांस एवं ब्रिटेन में लोगों में जनतांत्रिक विचारों के प्रचार–प्रसार के लिए पुस्तिकाओं का उपयोग किया गया था। नेपालियन ने अपनी वीरगाथाओं को प्रकाशित करवाया था।''[7]

इक्कीसवीं सदी में जनसम्पर्क का बदलता स्वरूप और भूमिका –

बीसवीं सदी में ही हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन में अमूल–चूल परिवर्तन की प्रक्रिया तेज हो चुकी थी। इनमें से कुछ परिवर्तन तो ऐसे हैं जिनकी कल्पना भी संभव नही थी। हमारा समाज पूर्ण रूप से कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर निर्भर था। देश लगभग पूरी तरह से गांवों आौर कस्बों में बसता था। छोटे–मोटे कुटीर और ग्राम उद्योग इस ग्रामोन्मुखी अर्थव्यवस्था के अंग थे। हमारे आसपास के रिश्ते नियमित और पक्के किस्म के थे। ''औद्योगीकरण की प्रक्रिया से इस परिवेश में बदलाव आना भ्रुरू हुआ। हमारी अर्थव्यवस्था में वाणिज्य और उद्योग का प्रभाव बढ़ने लगा। बड़े शहरों में मशीनों से चलने वाले कल–कारखाने स्थापित होने से गांवों से बड़े शहरों की ओर युवकों का पलायन शुरू हुआ। शहरीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव सामने आये।''[8]

''जनसंचार माध्यम अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए कई ऐसे तरीके अपनाता है, जिनके बारे में उनका दावा होता है कि इससे वे जनता के मत को अभिव्यक्ति देते हैं।

भारत जैसे देश में जहां अभी भी लगभग चालीस फीसदी आबादी निरक्षर है, वहां अखबारों और टेलीविजन के माध्यम से किए गए सर्वेक्षण किस हद तक जनता की राय का प्रतिनिधित्व करते हैं, कहना मुश्किल नहीं है।''[9]

जनमत निर्माण के इलेक्ट्रानिक साधन –

1. **रेडियो** – रेडियो एक जीवन्त माध्यम है, यह अर्न्तवैयक्तिक आयाम तथा पारस्परिक क्रिया प्रदान करता है तथा व्यक्ति की अर्न्तदृष्टि विकसित करता है। आधुनिक युग में प्रचार के साधन रूप में रेडियो तथा टेलिविजन अत्यधिक भूमिका निभाते हैं। मनोरंजन के इन साधनों का जनमत तथा जनतंत्र के साधन के रूप में शिक्षित तथा अशिक्षित जनता में अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

2. **टेलीविजन** – वर्तमान में टीवी जनमत के एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरकर सामने आया है। इसके माध्यम से सुदूरवर्ती क्षेत्रों में घटित घटनाओं को साक्षात् प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है।

''दलों के सन्देशवाहक हैं संचार के साधन, जिनमें अभी कुछ समय पूर्व तक समाचार–पत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। अब उसका स्थान रेडियो तथा दूरदर्शन लेते जा रहे जा रहे हैं। राजनीतिक परिवर्तन लाने में मतदान–पेटी सहायक होती है। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में परिवर्तन हिंसा द्वारा नहीं, सार्वजनिक वाद–विवाद और मतदान पेटी के द्वारा शान्तिपूर्ण तरीके से सम्पन्न करने की व्यवस्था है।

पत्रकार, पत्रकारिता और समाचार–पत्र जनसाधारण के राजनैतिक अभिमत को शिक्षित बनाने के माध्यम हैं। राजनीतिक प्रचार, दलगत प्रचार व दलीय उम्मीदवार का प्रचार आदि पत्रकारिता के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं।''[10]

हम कह सकते हैं कि यदि सही तरीके से और समाज कल्याण को सामने रखकर मीडिया संसाधनों का प्रयोग किया जाए तो उससे व्यक्ति तथा समाज को अत्यधिक लाभ पहुंचे, किन्तु कभी–कभी दुर्भाग्यवश इससे लाभ उठाने की बजाए हम इसका प्रयोग व्यक्तिगत लाभों या स्वार्थ सिद्धि के साधन के रूप में करते हैं।

''जनता के राजनीतिक व्यवहार को इस हद तक नियंत्रित करने की इसी क्षमता से मीडिया का महत्व बढ़ जाता है। अगर हम सतही रूप में देखें तो हमें समाचारों में, लेखों में, विश्लेषणों में इतनी विविधता दिखाई देती है कि हम आसानी से मान लेते हैं कि मीडिया न सिर्फ स्वतंत्र है बल्कि उसमें हर तरह के विचारों को, यहां तक कि नितांत विरोधी लगने वाले विचार संभव हैं एक ही तरह के राजनीतिक सिद्धान्त को प्रचारित कर रहे हों।''[11]

सम्प्रति स्वस्थ जनमत के निर्माण में अशिक्षा, गरीबी, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रियता और राजनीतिक गुटबाजी बाधक है। इन बाधाओं को जन–संचार माध्यमों से दूर किया जा सकता है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक असन्तोष को जनमत द्वारा भुनाने की प्रवृत्ति धँधेबाज नेताओं में देखी जाती है। 'मण्डल' और 'कमण्डल' द्वारा जनमत को प्रभावित करने का उदाहरण सन् 1991 का चुनाव ही है।

जनता द्वारा चुनी गई जनता के लिए जनता सरकार जनतन्त्र है जिसकी जड़ें अब विश्व में गहरी होती जा रही हैं। सूचना, सन्देश में सबकी भागीदारी अवश्यम्भावी है। संचार–शून्यता के कारण लोकतन्त्र विद्रूप हो जाता है। जनतन्त्र को सुव्यवस्थित रूप से पुष्ट करने के लिए जनसंचार और जनसम्पर्क पर अधिक ध्यान अपेक्षित है। जनमत के स्वस्थ निर्माण और जनतन्त्र की खुशहाली हेतु जनसंचार–माध्यमों का जाल बिछाना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ –

1. पारख, जवरीमल्ल ''जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य'', दिल्ली, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, 2000, पृष्ठ संख्या. 216
2. वही, पृष्ठ संख्या 216
3. त्रिवेदी, डॉ. सुशील एवं शुक्ला, शशिकांत 'जनसम्पर्क सिद्धान्त और व्यवहार', भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1996, पृष्ठ संख्या 25–26
4. वही, पृष्ठ संख्या 26
5. वही, पृष्ठ संख्या 43

6. त्रिवेदी, डॉ. सुशील एवं शुक्ला, शशिकांत, ''जनसम्पर्क एक परिचय'', रायपुर, छत्तीसगढ़ हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2010, पृष्ठ संख्या–20–21
7. वही, पृष्ठ संख्या–21
8. वही, पृष्ठ संख्या–192
9. पारख, जवरीमल्ल ''जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य'', पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या–103
10. पंत एन.सी. एवं द्विवेदी मनीषा, ''पत्रकारिता एवं जनसंचार'' नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2007, पृष्ठ संख्या 332–333.
11. पारख, जवरीमल्ल ''जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य'', पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 215

abhishek.agrawal@kalingauniversity.ac.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 71–77

भारतीय राज्यघटनेतील नैतिक मूल्यांचा पुरस्कार

प्रा.श्री. गौतम केदार ब्रह्मे
सहाय्यक प्राध्यापक (मराठी)
डी. बी. जे. महाविद्यालय (स्वायत्त), स.का.पाटील नगर, चिपळूण, जि. रत्नागिरी– ४१५ ६०५

सारांश:

भारतीय राज्यघटना हा केवळ कायदेशीर दस्तऐवज नसून भारतीय लोकशाहीचा नैतिक पाया आहे. तिच्या प्रत्येक घटकात न्याय, समता, स्वातंत्र्य आणि बंधुता या चार मूलभूत नैतिक मूल्यांचे अधिष्ठान आहे. घटनादर्शिका, मूलभूत हक्क, धोरणात्मक तत्त्वे, आणि नागरिकांची कर्तव्ये या सर्व माध्यमांतून या मूल्यांचा पुरस्कार करण्यात आला आहे.

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, महात्मा गांधी, पंडित नेहरू यांसारख्या नेत्यांच्या विचारांचा परिणाम म्हणून ही मूल्ये राज्यघटनेत प्रतिबिंबित झाली. न्यायपालिका आणि लोकशाही संस्थांनी या मूल्यांचे रक्षण केले असून, केशवानंद भारती, मिनर्वा मिल्स यांसारख्या खटल्यांनी संविधानाच्या नैतिक आत्म्याला बळ दिले.

आजच्या काळात भ्रष्टाचार, जातीयवाद, आणि असहिष्णुता यांसारखी आव्हाने या नैतिक मूल्यांना धोका निर्माण करतात. म्हणूनच या मूल्यांचे शिक्षण, प्रचार आणि व्यवहारातील अंमलबजावणी आवश्यक आहे.

भारतीय राज्यघटना ही एक "जिवंत नैतिक दस्तऐवज" आहे, जी समाजात न्याय, समानता आणि मानवतेचा दीप प्रज्वलित ठेवते.

कीवर्ड्स:

भारतीय राज्यघटना, नैतिक मूल्ये, लोकशाही, न्याय, समता, स्वातंत्र्य, बंधुता, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय, मूलभूत हक्क, मूलभूत कर्तव्ये, धोरणात्मक तत्त्वे, न्यायपालिका, कल्याणकारी राज्य, संविधानिक नैतिकता.

उद्दिष्टे:

1. भारतीय राज्यघटनेतील नैतिक मूल्यांचा अभ्यास करणे.

2. घटनादर्शिका, मूलभूत हक्क व धोरणात्मक तत्त्वांमधील नैतिक मूल्ये स्पष्ट करणे.
3. संविधानातील नैतिकतेचा सामाजिक आणि न्यायिक परिणाम तपासणे.
4. सध्याच्या समाजात या मूल्यांच्या अंमलबजावणीतील आव्हाने आणि उपाय शोधणे.
5. संविधानिक नैतिकतेचे लोकशाही व नागरिक जीवनातील महत्त्व अधोरेखित करणे.

संशोधनपद्धती:

1. गुणात्मक विश्लेषण:
भारतीय राज्यघटनेतील कलमे, न्यायनिर्णय आणि तत्त्वांचे नैतिक विश्लेषण.

2. ग्रंथसंदर्भ पद्धती:
संविधान, ग्रंथ, न्यायप्रसिद्ध प्रकरणे व शैक्षणिक लेखांचा अभ्यास.

3. तौलनिक दृष्टिकोन:
भारतीय राज्यघटनेतील नैतिक मूल्यांची इतर देशांच्या संविधानांशी तुलना.

4. तत्त्वज्ञानात्मक पद्धत
गांधी, आंबेडकर, नेहरू आदींच्या विचारांच्या आधारे नैतिक पाया समजावणे.

गृहितके:

1. भारतीय राज्यघटना ही केवळ कायदेशीर नव्हे तर नैतिक आणि तात्त्विक दस्तऐवज आहे.
2. संविधानातील न्याय, समता, स्वातंत्र्य, बंधुता ही मूल्ये भारतीय समाजाच्या नैतिक उन्नतीचा पाया आहेत.
3. संविधानिक नैतिकता टिकविण्यासाठी नागरिक आणि शासन दोघांची जबाबदारी तितकीच महत्त्वाची आहे.

भारतीय राज्यघटना ही केवळ कायदेशीर दस्तऐवज नाही, तर ती भारतीय लोकशाहीचा, नैतिकतेचा, सामाजिक समरसतेचा आणि मानवतेचा आत्मा आहे. तिच्या प्रत्येक कलमामध्ये नैतिक मूल्यांचे अधिष्ठान दिसून येते. न्याय, समता, स्वातंत्र्य आणि बंधुता ही तिची जीवनदृष्टी आहे. या चारही मूल्यांच्या आधारेच भारतीय समाजातील असमानता, विषमता आणि अन्याय दूर करून एक न्याय्य, समान आणि नैतिक समाजव्यवस्था उभी करण्याचा प्रयत्न राज्यघटनेने केला आहे.

१. राज्यघटनेचा नैतिक पाया

भारतीय राज्यघटनेचा नैतिक पाया भारतीय स्वातंत्र्य चळवळीच्या तत्त्वांवर आधारित आहे. स्वातंत्र्यलढ्यादरम्यान गांधीजींनी 'सत्य' आणि 'अहिंसा' या नैतिक मूल्यांना प्राधान्य दिले; नेहरूंनी धर्मनिरपेक्षता व वैज्ञानिक दृष्टी, तर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी सामाजिक न्याय आणि समतेचा आग्रह धरला. या सर्व मूल्यांचे मिश्रण म्हणजे भारतीय राज्यघटना.

घटनादर्शिकेत "We, the people of India" या वाक्याद्वारे लोकसत्ताकतेचा नैतिक तत्त्वज्ञानावर आधारित पाया मांडण्यात आला आहे. या लोकशाहीची उद्दिष्टे न्याय, स्वातंत्र्य, समता आणि बंधुता ही आहेत. ही मूल्ये भारतीय समाजातील विविधतेला एकत्र बांधून ठेवतात.

२. घटनादर्शिका आणि तिचा नैतिक दृष्टिकोन

राज्यघटनेची प्रस्तावना म्हणजे तिचा नैतिक आणि तात्त्विक आत्मा. प्रस्तावनेत भारत हे "संपूर्ण सार्वभौम, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकशाही प्रजासत्ताक" आहे असे नमूद केले आहे. या प्रत्येक संकल्पनेचा पाया नैतिकतेवर आधारित आहे.

संपूर्ण सार्वभौमत्व – भारत स्वतंत्र असून कोणत्याही बाह्य शक्तीच्या अधीन नाही. हे राष्ट्रीय स्वाभिमानाचे मूल्य आहे.

समाजवाद – आर्थिक विषमता कमी करून सर्वांसाठी समान संधी निर्माण करणे हे नैतिक दायित्व आहे.

धर्मनिरपेक्षता – सर्व धर्मांबद्दल समान आदर बाळगणे हे सामाजिक नैतिकतेचे प्रतीक आहे.

लोकशाही– लोकांची सत्ता, लोकांच्या माध्यमातून आणि लोकांसाठी – हा न्यायनिष्ठ आणि नैतिक शासनतंत्राचा पाया आहे.

प्रजासत्ताकत्व – प्रत्येक नागरिकाला समान अधिकार देणारी आणि कोणत्याही जन्माधारित श्रेष्ठतेचा निषेध करणारी व्यवस्था.

३. मूलभूत हक्क आणि नैतिक मूल्यांचा संबंध

भारतीय राज्यघटनेतील भाग III (अनुच्छेद १२–३५) हा भाग म्हणजे नागरिकांच्या नैतिक हक्कांचा संवैधानिक स्वरूपात दिलेला पुरस्कार होय. हे हक्क मानवी प्रतिष्ठा टिकवून ठेवतात आणि सामाजिक न्यायाचा पाया मजबूत करतात.

1. समानतेचा हक्क (अनुच्छेद १४–१८)

कायद्यापुढे सर्व समान आहेत, हे सर्वात मोठे नैतिक तत्त्व आहे. अस्पृश्यतेवर बंदी (अनु. १७) ही नैतिक क्रांती आहे, जी समाजातील जातीय अन्याय नष्ट करण्याचा प्रयत्न करते.

2. स्वातंत्र्याचा हक्क (अनुच्छेद १९–२२)

विचार, अभिव्यक्ती, धर्म, व्यवसाय आणि हालचालीचे स्वातंत्र्य — हे सर्व मानवी सन्मानावर आधारित नैतिक हक्क आहेत.

3. शोषणाविरुद्ध हक्क (अनुच्छेद २३–२४)
मानवाला वस्तू म्हणून वापरण्याच्या अन्यायाविरुद्ध राज्यघटना ठामपणे उभी राहते.

4. धार्मिक स्वातंत्र्य (अनुच्छेद २५–२८)
कोणताही धर्म बळजबरीने लादू नये, सर्व धर्मांना समान वागणूक मिळावी — हा सहिष्णुतेचा आणि सहअस्तित्वाचा नैतिक आधार आहे.

5. संविधानिक उपचारांचा हक्क (अनुच्छेद ३२)
डॉ. आंबेडकरांनी याला "राज्यघटनेचे हृदय आणि आत्मा" म्हटले आहे. हा हक्क नैतिक न्यायाची हमी देतो.

४. राज्यघटनेतील धोरणात्मक तत्त्वे
भाग IV (अनुच्छेद ३६–५१) मध्ये राज्यासाठी असलेल्या धोरणात्मक तत्त्वांचा उल्लेख आहे. ही तत्त्वे कायदेशीरदृष्ट्या बंधनकारक नसली तरी नैतिकदृष्ट्या अत्यंत बंधनकारक आहेत.

सामाजिक आणि आर्थिक न्याय (अनुच्छेद ३८–३९)

– संपत्तीचे संतुलित वितरण, लिंग समानता, बालमजुरी प्रतिबंध, आणि कल्याणकारी राज्य ही मूल्ये येथे आहेत.

कामगारांचे कल्याण (अनुच्छेद ४२–४३)

– मानवी कामाच्या प्रतिष्ठेचे रक्षण.

शिक्षण आणि आरोग्य (अनुच्छेद ४५, ४७)

– शिक्षण आणि आरोग्य ही नैतिक जबाबदारी म्हणून स्वीकारली आहे.

पर्यावरण संरक्षण (अनुच्छेद ४८A)

– पर्यावरण आणि जैवविविधतेचे रक्षण ही आधुनिक नैतिक गरज.

या तत्त्वांमधून भारताने "Welfare State" म्हणजेच कल्याणकारी राज्य घडवण्याचा प्रयत्न केला आहे.

५. नागरिकांची मूलभूत कर्तव्ये

१९७६ मधील ४२ व्या घटनादुरुस्तीने भाग IVA (अनुच्छेद ५१(A)) अंतर्गत नागरिकांची कर्तव्ये समाविष्ट करण्यात आली.

ही कर्तव्ये नागरिकांच्या नैतिक जबाबदाऱ्यांवर प्रकाश टाकतात:

1. संविधान, राष्ट्रीय ध्वज व राष्ट्रगीताचा आदर करणे.
2. स्त्रियांबद्दल आदर राखणे.
3. वैज्ञानिक वृत्ती, मानवतावाद आणि सुधारणा प्रवृत्ती जोपासणे.
4. सार्वजनिक संपत्तीचे संरक्षण.
5. पर्यावरण संवर्धन.
6. राष्ट्रीय एकात्मता आणि सामाजिक सलोखा राखणे.

ही कर्तव्ये "नैतिक कर्तव्यशास्त्र" (Ethical Code of Conduct) म्हणून समजली जातात.

६. भारतीय न्यायव्यवस्था आणि नैतिक मूल्यांचे संरक्षण

भारतीय न्यायव्यवस्था ही राज्यघटनेतील नैतिक मूल्यांची राखणदार आहे. अनेक ऐतिहासिक निकालांमधून न्यायालयांनी संविधानातील नैतिक आधार संरक्षित केला आहे.

केशवानंद भारती वि. केरळ राज्य (१९७३) – "मूलभूत संरचना तत्त्व" मांडून संविधानाच्या आत्म्याचे रक्षण केले.

मिनर्वा मिल्स वि. भारत सरकार (१९८०) – मूलभूत हक्क आणि धोरणात्मक तत्त्वांमध्ये संतुलन राखणे आवश्यक असल्याचे स्पष्ट केले.

मेनका गांधी वि. भारत सरकार (१९७८) – "जीवनाचा अधिकार" म्हणजे केवळ अस्तित्व नव्हे, तर सन्मानाने जगण्याचा अधिकार आहे.

ही प्रकरणे न्याय, स्वातंत्र्य आणि मानवी प्रतिष्ठेच्या नैतिक मूल्यांचे प्रतीक आहेत.

७. आजच्या काळातील आव्हाने आणि उपाय:

भारतीय राज्यघटनेने नैतिक मूल्यांना उच्च स्थान दिले असले, तरी प्रत्यक्षात या मूल्यांना अनेक सामाजिक व राजकीय आव्हाने आहेत.

मुख्य आव्हाने:

1. जातिवाद आणि सामाजिक विषमता – सामाजिक समता अजूनही पूर्णतः साध्य झालेली नाही.

2. भ्रष्टाचार आणि सत्तेचा गैरवापर – सार्वजनिक जीवनातील नैतिकतेचा ऱ्हास.
3. धार्मिक कट्टरता आणि असहिष्णुता – धर्मनिरपेक्षतेच्या मूल्याला धोका.
4. स्त्री-पुरुष विषमता आणि लैंगिक हिंसा – समतेच्या मूल्याला विरोध.
5. पर्यावरणीय ऱ्हास – मानवी लोभामुळे नैतिक जबाबदारी विसरली जाते.

उपाय आणि दिशा:

1. नैतिक शिक्षणाचा प्रसार – शालेय आणि उच्च शिक्षणात संविधानिक मूल्यांवर भर.
2. प्रभावी कायदे आणि अंमलबजावणी – पारदर्शक आणि उत्तरदायी शासनव्यवस्था.
3. नागरिक सजगता आणि सामाजिक जबाबदारी – लोकशाही ही नागरिकांच्या नैतिक सहभागावर अवलंबून आहे.
4. माध्यमांची नैतिक भूमिका – सत्य, न्याय आणि विवेक यांचा प्रचार.

८. भारतीय राज्यघटना – एक जिवंत नैतिक दस्तऐवज

भारतीय राज्यघटना हे स्थिर पुस्तक नसून एक जिवंत दस्तऐवज आहे.

तिची प्रगतिशीलता म्हणजेच तिची नैतिकता. काळाच्या ओघात नवीन मूल्ये — जसे की पर्यावरणीय संतुलन, डिजिटल गोपनीयता, लिंग-समता — या सर्वांचा समावेश होणे, हे तिच्या नैतिक विकासाचे उदाहरण आहे.

डॉ. आंबेडकरांनी राज्यघटनेला "जिवंत दस्तऐवज" म्हटले कारण ती फक्त कायद्याची नोंद नाही, तर मानवतेच्या उन्नतीची दिशा आहे.

निष्कर्ष:

भारतीय राज्यघटना ही मानवी नैतिकतेचा जिवंत आराखडा आहे. न्याय, समता, स्वातंत्र्य आणि बंधुता या मूल्यांवर आधारित लोकशाही समाज निर्माण करणे हे तिचे उद्दिष्ट आहे.

न्यायपालिका आणि नागरिक या दोघांच्या संयुक्त प्रयत्नांनीच या नैतिक मूल्यांचा वास्तविक पुरस्कार होऊ शकतो.

संविधानिक नैतिकता ही आजच्या भारतासाठी केवळ आदर्श नाही, तर अस्तित्वाचे अपरिहार्य तत्त्व आहे.

भारतीय राज्यघटनेतील नैतिक मूल्यांचा पुरस्कार हा भारतीय लोकशाहीचा कणा आहे.

समता, न्याय, स्वातंत्र्य आणि बंधुता या मूल्यांचा अंगीकार हा केवळ संविधानिक कर्तव्य नाही, तर तो प्रत्येक नागरिकाचा नैतिक धर्म आहे.

आजच्या काळात, जेव्हा समाज विभाजन, असहिष्णुता आणि भ्रष्टाचाराने ग्रासला आहे, तेव्हा राज्यघटनेतील मूल्यांची पुनर्स्मृती आणि अंमलबजावणी अधिक आवश्यक ठरते.

राज्य, न्यायव्यवस्था, प्रसारमाध्यमे आणि नागरिक — हे चौघे मिळूनच या नैतिक मूल्यांचे खरे रक्षण करू शकतात.

भारतीय राज्यघटना ही जगातील सर्वात मोठी लोकशाही चालविण्याचा नैतिक आराखडा आहे — आणि तिचा आत्मा म्हणजे "मानवतेतील नैतिकता."

संदर्भ सूची:

1. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर – भारतीय राज्यघटनेचे भाष्य
2. D.D. Basu – Introduction to the Constitution of India
3. Granville Austin – The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation
4. M.P. Jain – Indian Constitutional Law
5. भारत सरकार – भारतीय राज्यघटना (अधिकृत प्रती)
6. Kesavananda Bharati vs. State of Kerala (1973)
7. Minerva Mills vs. Union of India (1980)
8. राष्ट्रपती भवन, नवी दिल्ली – संविधान दिन विशेष प्रकाशन (2023)

लेखक:

प्रा.श्री. गौतम केदार ब्रह्मे
सहाय्यक प्राध्यापक (मराठी)
डी. बी. जे. महाविद्यालय (स्वायत्त),
स.का.पाटील नगर, चिपळूण, जि. रत्नागिरी- ४१५ ६०५
मोबाईल : +91 9422358308
ई-मेल- gautambrahme@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 78–85

भारतीय संविधान के तहत कामकाजी महिलाओं के अधिकार और कार्यस्थल पर सुरक्षा : एक सामाजिक–न्यायिक विश्लेषण

निर्मला त्रिपाठी
शोधार्थी, आरकेडीएफ विश्वविद्यालय, भोपाल।

सारांश :

यह शोधपत्र भारतीय संविधान में कामकाजी महिलाओं के अधिकारों का गहन और समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो मुख्य रूप से कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा, लैंगिक समानता और सामाजिक–सांस्कृतिक बाधाओं से जुड़ी चिंताओं पर केंद्रित है। इसमें संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों जैसे अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), अनुच्छेद 15(3) (महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान), अनुच्छेद 16 (समान रोजगार के अवसर), अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता), अनुच्छेद 39(क) (समान वेतन का अधिकार) और अनुच्छेद 42 (मानवीय कार्य परिस्थितियों हेतु राज्य की जिम्मेदारी) का विस्तृत विवेचन किया गया है। शोध में यह देखा गया है कि ये संवैधानिक प्रावधान महिलाओं को कार्यस्थल पर समान अवसर एवं सुरक्षा प्रदान करते हैं, लेकिन उनका व्यावहारिक क्रियान्वयन सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत स्तर पर विभिन्न चुनौतियों का सामना करता है। मातृत्व लाभ अधिनियम 1961, कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम 2013, और समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 जैसे कानूनों का भी विश्लेषण इसमें शामिल है, जो कामकाजी महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करते हैं। साथ ही, इस शोध में न्यायपालिका के महत्वपूर्ण निर्णयों एवं विशाखा दिशा–निर्देशों का सामाजिक और न्यायिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कार्य स्थल पर महिलाओं के अधिकारों की मजबूत रक्षा के लिए कानूनी तंत्र मौजूद हैं। परन्तु, सामाजिक मान्यताओं, भेदभाव, जागरूकता की कमी और प्रभावी क्रियान्वयन की चुनौतियां अभी भी व्यापक रूप से विद्यमान हैं। निष्कर्ष स्वरूप, यह अध्ययन कार्यस्थल पर लैंगिक समानता और महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए संवैधानिक प्रावधानों के सशक्त क्रियान्वयन, नीतिगत सुधार, सामाजिक जागरूकता एवं सामूहिक समर्थन की आवश्यकता को रेखांकित करता है, ताकि महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के साथ–साथ उन्हें सम्मानजनक और सुरक्षित कार्य वातावरण प्रदान किया जा सके।यह सार वृहद सामाजिक–न्यायिक, कानूनी, और संवैधानिक संदर्भों को जोड़ते हुए कामकाजी महिलाओं के अधिकारों और उनकी सुरक्षा की समग्र स्थिति का गहन और विशद विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

प्रस्तावना :

यह शोधपत्र भारतीय संविधान में कामकाजी महिलाओं के अधिकारों को समझने का एक व्यापक प्रयास है, जो विशेष रूप से उनके कार्यस्थल पर सुरक्षा, लैंगिक समानता और सामाजिक–सांस्कृतिक बाधाओं पर केंद्रित है। भारत जैसे विकासशील देश में महिलाओं का आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में बढ़ता हुआ योगदान संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के सही क्रियान्वयन पर निर्भर करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), अनुच्छेद 15(3) (महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान), अनुच्छेद 16 (समान रोजगार अवसर), अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार), अनुच्छेद 39(क) (समान वेतन के अधिकार) और अनुच्छेद 42 (मानवीय कार्य परिस्थितियों का प्रावधान) जैसे प्रावधान कामकाजी महिलाओं को कानून के समक्ष समानता और सुरक्षा प्रदान करते हैं। हालांकि, कार्यस्थल पर महिलाओं को विभिन्न प्रकार के भेदभाव, यौन उत्पीड़न, असुरक्षा और सामाजिक रूढ़ियों का सामना करना पड़ता है, जो उनकी सशक्तिकरण की राह में बाधाएं उत्पन्न करते हैं। इस शोध के माध्यम से यह समझना आवश्यक है कि संविधान और संबंधित कानूनी प्रावधान महिलाओं के अधिकारों की रक्षा कैसे करते हैं, तथा न्यायपालिका ने सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए कौन–कौन से कदम उठाए हैं। साथ ही, यह शोध सामाजिक–न्यायिक दृष्टि से उन चुनौतियों और बाधाओं का विश्लेषण करेगा जो कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा एवं समानता के मार्ग में आती हैं।

इस अध्ययन का उद्देश्य न केवल कानूनी प्रावधानों की जानकारी देना है, बल्कि यह भी पड़ताल करना है कि किन कारकों के कारण महिलाओं के अधिकारों का पूर्णतः क्रियान्वयन नहीं हो पाता, तथा किस प्रकार से नीति निर्माण, सामाजिक जागरूकता और न्यायिक सक्रियता के माध्यम से इन चुनौतियों को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार, यह शोधपत्र भारतीय महिला कामगारों के अधिकारों तथा सुरक्षा के लिए संवैधानिक और सामाजिक–न्यायिक ढांचे का बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो महिला सशक्तिकरण के महत्वपूर्ण आयामों को उजागर करता है।

भारतीय संविधान में कामकाजी महिलाओं के अधिकारों का विस्तृत संरक्षण उपलब्ध है, जो कार्यस्थल पर उनकी सुरक्षा, लैंगिक समानता और सामाजिक–सांस्कृतिक चुनौतियों से निपटने में मदद करता है। इसका सार इस प्रकार है :

1. कानूनी और संवैधानिक अधिकार

- **अनुच्छेद 14 कानून के समक्ष समानता :**

यह अनुच्छेद सभी नागरिकों को, चाहे वे महिला हों या पुरुष, कानून के समक्ष समानता का अधिकार देता है। इसका अर्थ है कि हर महिला को कार्यस्थल, स्कूल, समाज और कानूनी प्रक्रिया में उसके लिंग के कारण भेदभाव का सामना नहीं करना पड़ेगा। इसके तहत महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार, सुरक्षा व अवसर हासिल होते हैं, जिससे कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव को चुनौती दी जाती है और समान भर्ती, वेतन, पदोन्नति आदि सुनिश्चित किए जाते हैं.

- **अनुच्छेद 15(3) विशेष प्रावधान :**

यह प्रावधान महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिए राज्य को विशेष नियम और कानून बनाने का अधिकार देता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत महिलाओं को अतिरिक्त संरक्षण, राहत, और सामाजिक लाभ दिए जा

सकते हैं जैसेः मैटरनिटी लीव, रात्रि पाली में कार्य निषेध, मिनिमम वेतन, और विशिष्ट कार्य–सुरक्षा मानक। यह महिलाओं के लाभ और भेदभाव के उन्मूलन के लिए सकारात्मक कार्रवाई (Affirmative Action) का कानूनी आधार बनाता है।

- **अनुच्छेद 16 सरकारी सेवाओं में समान अवसर :**

इस अनुच्छेद के तहत, सभी नागरिकों को सरकारी नौकरियों में समान अवसर मिलते हैं, चाहे वे किसी भी लिंग, जाति या धर्म के हों। इससे महिलाएं सरकारी पदों पर बिना लैंगिक भेदभाव के नियुक्ति, पदोन्नति और वेतन जैसे फायदों का लाभ उठा सकती हैं। महिलाओं को सरकारी पर्यटन, पुलिस, प्रशासन, बैंकिंग आदि क्षेत्रों में बराबर भागीदारी मिलनी चाहिए.

- **अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता :**

यह अनुच्छेद जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार देता है, जिसका अर्थ है कि किसी भी महिला को कार्यस्थल पर शोषण, उत्पीड़न, धमकी या असुरक्षा से बचाने का दायित्व राज्य पर है। इसमें कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से सुरक्षा, गरिमामयी वातावरण, और बिना किसी दबाव या हिंसा के काम करने का अधिकार शामिल है।

- **अनुच्छेद 39(ग) समान वेतन :**

इस नीति निर्देशक सिद्धांत के अनुसार, पुरुषों और महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन मिलना अनिवार्य किया गया है। इससे महिलाओं को मजदूरी में भेदभाव से संरक्षण मिलता है। यह समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 जैसे कानूनों का आधार है, जिसमें एक ही तरह के काम के लिए पुरुष–महिला दोनों को सामान वेतन देना जरूरी है।

- **अनुच्छेद 42 उचित कार्य परिस्थितियाँ व प्रसूति राहत :**

यह अनुच्छेद राज्य को निर्देश देता है कि वह कामकाजी महिलाओं के लिए न्यायसंगत और मानवीय कार्य परिस्थितियां सुनिश्चित करे और मातृत्व लाभ के लिए उपयुक्त कानून बनाए। इसके आधार पर मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 लागू है, जो गर्भावस्था के दौरान महिलाओं को सवेतन अवकाश का अधिकार देता है, कार्यस्थल पर सुविधाएं सुनिश्चित करता है और महिलाओं के स्वास्थ्य व सुरक्षा के लिए नियम बनाता है।

इन प्रावधानों और कार्यान्वयन से महिलाओं को कार्यस्थल पर अधिकार, सुरक्षा, सम्मान और जीवन की समान गुणवत्ता सुनिश्चित होती है। सामाजिक रूप से भी इन अनुच्छेदों ने महिलाओं की स्थिति सशक्त की है, हालांकि पूर्ण प्रभाव के लिए इनके लागू होने, जागरूकता और सामाजिक व्यवहार में बदलाव की आवश्यकता बनी हुई है।

इन संवैधानिक प्रावधानों के अलावा, मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961, समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976, तथा कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम 2013 जैसे कानून कामकाजी महिलाओं के अधिकारों और सुरक्षा की गारंटी देते हैं। ये कानून महिलाओं को उचित मैटरनिटी छुट्टियां, समान वेतन, सुरक्षित कार्यस्थल और उत्पीड़न से संरक्षण प्रदान करते हैं। साथ ही, न्यायपालिका ने भी कई बार ऐसे फैसले दिये हैं जो महिलाओं के अधिकारों को और मजबूत करते हैं। इस प्रकार, भारतीय संविधान और उससे जुड़ी कानूनी व्यवस्था कामकाजी महिलाओं को न सिर्फ उनके मौलिक अधिकार देती है, बल्कि उनके

सशक्तिकरण और सामाजिक–सांस्कृतिक बाधाओं को पार करने में भी मदद करती है। हालांकि, इन प्रावधानों का प्रभावी क्रियान्वयन और सामाजिक जागरूकता आवश्यक है, जिससे महिलाओं को वास्तविक समानता, सुरक्षा और सम्मान मिल सके।

यह संविधान और कानून कामकाजी महिलाओं को न केवल सुरक्षा और समान अवसर प्रदान करते हैं, बल्कि उन्हें सम्मानजनक और सुरक्षित कार्यस्थल सुनिश्चित करने के लिए व्यापक संरचना देते हैं। परन्तु, इन प्रावधानों के प्रभावी क्रियान्वयन एवं सामाजिक मान्यताओं में बदलाव की महत्वपूर्ण आवश्यकता बनी हुई है।

2. मुख्य कानून और नीतियाँ :

1. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 (मैटरनिटी लीव) :

यह अधिनियम सभी महिला कर्मचारियों को, जिनके संस्थान में 10 या अधिक कर्मचारी कार्यरत हैं, 26 सप्ताह (पूर्व में 12 सप्ताह) तक सवेतन मातृत्व अवकाश (मैटरनिटी लीव) का अधिकार देता है।

- कॉन्ट्रैक्चुअल, अस्थायी या स्थायी – सभी महिला कर्मचारियों को, यदि उन्होंने पिछले 12 माह में 80 दिन काम किया हो, यह राहत मिलती है।
- मातृत्व अवकाश के दौरान कर्मचारी को पूरी सैलरी और मेडिकल बोनस मिलता है, और इस दौरान उसकी नौकरी समाप्त नहीं की जा सकती।
- गोद लेने वाली अथवा सरोगेसी के तहत मातृत्व पाने वाली महिलाओं को भी 12 सप्ताह का अवकाश मिलता है।

2. समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 :

- यह कानून समान काम के लिए महिला एवं पुरुष कर्मचारियों को समान वेतन दिलाने का अधिकार देता है।
- सभी नियोक्ताओं को भर्ती और सेवा में लिंग के आधार पर भेदभाव से रोकता है, और अगर कोई नियोक्ता महिला को कम वेतन देता है, तो वह अपराध की श्रेणी में आता है।

3. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 (POSH Act) :

- POSH अधिनियम महिलाओं को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण देता है।
- हर सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्था में आंतरिक शिकायत समिति का गठन अनिवार्य है, जो उत्पीड़न की शिकायतें सुनकर उचित कार्रवाई करे।
- अरे समाधान या कार्यवाही न होने पर मामला स्थानीय प्राधिकरण या कोर्ट में आगे बढ़ाया जा सकता है।

4. लीगल सर्विसेज अथॉरिटी अधिनियम, 1986 (कानूनी सहायता) :

- इस अधिनियम के तहत महिलाओं, बच्चों, अनुसूचित जाति एवं जनजाति आदि विशेष वर्गों को मुफ्त कानूनी सहायता प्राप्त करने का अधिकार है।
- राज्य और जिला स्तर पर विधिक सेवा समितियां गठित कर महिलाओं को सस्ता और तेज न्याय सुनिश्चित किया जाता है।
- इन कानूनों ने कामकाजी महिलाओं के अधिकारों, सुरक्षा और समानता को कानूनी दर्जा और संरक्षण

प्रदान कर सामाजिक बदलाव की दिशा में मजबूत कदम बढ़ाया है।

3. सामाजिक चुनौतियाँ :

- **कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव :**

कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव भारतीय समाज में एक गम्भीर समस्या है, जिसमें महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम अवसर, कम वेतन और पदोन्नति के मौके मिलते हैं।

कई बार नियुक्ति प्रक्रिया, पदोन्नति, वेतन, प्रशिक्षण या जिम्मेदारियों के वितरण में महिलाओं को जाति, धर्म, विवाह स्थिति या मातृत्व जैसी वजहों से अपेक्षाकृत कम महत्व दिया जाता है।

पारंपरिक सोच, सामाजिक मानदंड और रूढ़िवादिता भी महिलाओं को नेतृत्व के अवसर प्राप्त करने से वंचित कर देती हैं। यह भेदभाव कर्मचारी के आत्मविश्वास, कामकाजी संतुष्टि और समाज में महिलाओं की प्रगतिशील भूमिका को बाधित करता है।

- **कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न और उसकी रोकथाम :**

यौन उत्पीड़न कार्यस्थल पर महिलाओं के लिए सुरक्षा और सम्मान के बड़े खतरे के रूप में मौजूद है।

इसमें आपत्तिजनक टिप्पणियां, छेड़छाड़, धमकी देना, या गैर सहमति वाले शारीरिक संपर्क जैसी घटनाएं शामिल हैं।

POSH Act, 2013 (Prevention of Sexual Harassment at Workplace Act) और विशाखा दिशानिर्देश इस समस्या से निपटने के लिए बनाए गए हैं, जिनमें आंतरिक शिकायत समिति (ICC) का गठन, लाभार्थी की सुरक्षा, गोपनीयता और शिकायत के सही निपटान के प्रावधान शामिल हैं। हालांकि, संस्कृति में बदलाव, सही प्रशिक्षण, संवेदनशीलता और कानून का प्रभावी क्रियान्वयन जरूरी है ताकि महिलाएं सुरक्षित अनुभव कर सकें और स्वतंत्र रूप से अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें।

- **सामाजिक चेतना की कमी और कानूनी जागरूकता की आवश्यकता :**

भारतीय समाज में अभी भी महिलाओं के अधिकारों और कानूनों के प्रति जागरूकता की कमी है, विशेषकर ग्रामीण और अनौपचारिक क्षेत्रों में।

महिलाएं अपने कानूनी अधिकारों, शिकायत करने की प्रक्रिया, उपलब्ध कानूनी सहायता और सरकारी योजनाओं के बारे में पूरी तरह जानकार नहीं होतीं। यह उनकी कमजोर स्थिति का कारण बनता है और भेदभाव व उत्पीड़न की घटनाओं को सामने लाने में बाधा उत्पन्न करता है।

अतः समाज में शिक्षा, जागरूकता कार्यक्रम, तथा संस्थागत समर्थन की आवश्यकता है ताकि महिलाएं अपने अधिकारों और सुरक्षा के प्रति आत्मनिर्भर और सचेत रहें।

उपरोक्त पहलुओं का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि कानूनी और संवैधानिक प्रावधानों के साथ–साथ सामाजिक सोच और जागरूकता के स्तर पर भी व्यापक सुधार महत्वपूर्ण हैं, जिससे कामकाजी महिलाओं को कार्यस्थल पर सुरक्षित वातावरण और बराबरी का अधिकार मिल सके।

4. न्यायिक दृष्टिकोण :

- **सुरक्षित गर्भपात का अधिकार :**

सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में एक ऐतिहासिक निर्णय दिया है कि भारत की सभी महिलाओं को, चाहे वे

विवाहित हों या अविवाहित, कानूनी और सुरक्षित गर्भपात कराने का अधिकार प्राप्त है। यह फैसला Medical Termination of Pregnancy (MTP) Act 2021 के संशोधनों और संविधान के अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) एवं अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) के आधार पर किया गया। कोर्ट ने स्पष्ट किया कि किसी महिला को उसके वैवाहिक स्थिति के आधार पर गर्भपात के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। 20 से 24 सप्ताह के गर्भ के गर्भपात पर भी अब विवाहित और अविवाहित दोनों को समान अधिकार प्राप्त है। इस फैसले से महिलाओं की व्यक्तिगत स्वायत्तता को संवैधानिक मान्यता मिली है, जिसे "शरीर पर अधिकार" के तौर पर देखा जाता है। साथ ही सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि यदि कोई महिला जबरन गर्भवती हुई है, तो उसे बलात्कार माना जाएगा, चाहे वह विवाहित ही क्यों न हो।

कार्यस्थल पर सुरक्षा के लिए निर्देश और विशाखा दिशानिर्देश :

विशाखा दिशानिर्देश सुप्रीम कोर्ट द्वारा 1997 में जारी किए गए थे, जो महिलाओं के कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से सुरक्षा के लिए एक मानद मार्गदर्शिका हैं। इन निर्देशों के अंतर्गत हर संगठन को महिलाओं के खिलाफ होने वाले किसी भी प्रकार के यौन उत्पीड़न की शिकायतों के लिए शिकायत निवारण समिति गठित करनी होती है। कोर्ट ने कहा कि यह दिशा–निर्देश महिला कर्मचारियों के सुरक्षित कार्यस्थल के अधिकार को सुनिश्चित करते हैं। बाद में 2013 में कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम के रूप में इसे कानून की शक्ल दी गई। सुप्रीम कोर्ट के इन निर्देशों और कानूनों के जरिए महिलाओं को कार्यस्थल पर होने वाले उत्पीड़न से बचाव का कानूनी साधन मिला है, जिससे उनके सम्मान और सुरक्षा की गारंटी होती है।

सारांशतः सुप्रीम कोर्ट ने महिलाओं के स्वायत्तता, समानता, और कार्यस्थल पर सुरक्षा के अधिकार को संवैधानिक संरक्षण दिया है, जिससे महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक सशक्तिकरण में महान प्रभाव पड़ा है। यह निर्णय और दिशानिर्देश महिलाओं के लिए सुरक्षित, सम्मानजनक और बराबरी के अवसरों वाले कार्य माहौल सुनिश्चित करने में मददगार साबित हुए हैं।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान और उससे जुड़े कानून कामकाजी महिलाओं को सुरक्षा और समानता प्रदान करने के लिए व्यापक और मजबूत ढांचा उपलब्ध कराते हैं। संविधान के अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), 15(3) (महिला व बच्चों के पक्ष में विशेष प्रावधान), 16 (समान रोजगार अवसर), 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता) तथा 39(क) और 42 (मानवीय कार्य स्थितियाँ और मातृत्व राहत) जैसी धाराएँ महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करती हैं। साथ ही, मातृत्व लाभ अधिनियम, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकथाम अधिनियम और समान वेतन अधिनियम जैसी कानून व्यवस्था कामकाजी महिलाओं के लिए सुरक्षित और समान कार्यस्थल सुनिश्चित करती हैं। फिर भी, इनके प्रभावी क्रियान्वयन में कई अड़चनें हैं। सामाजिक रूढ़ियाँ और मनोवृत्तियां महिलाओं के अधिकारों के पूर्ण उपयोग में बाधाएं उत्पन्न करती हैं। महिलाएं अपने कानूनी अधिकारों से पर्याप्त परिचित नहीं हैं, जिससे उन्हें न्याय दिलाना अक्सर कठिन होता है। सामाजिक जागरूकता की कमी, घरेलू और कार्यस्थल पर उत्पीड़न की घटनाएं, तथा सामाजिक दबाव इन कानूनों की कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। न्यायपालिका ने महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण में निर्णायक भूमिका निभाई है। सुप्रीम कोर्ट और उच्च

न्यायालयों के निर्णयों ने अधिकारों के विस्तार एवं सुरक्षा के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। इसके अतिरिक्त, बेहतर नीति–निर्माण, सामाजिक सहयोग, शिक्षा और कानूनी जागरूकता महिलाओं के अधिकारों के सशक्त आवरण के लिए आवश्यक हैं। सामाजिक परिवर्तन और सक्रिय सामुदायिक भागीदारी के बिना महिलाओं के अधिकारों की पूर्ण रक्षा संभव नहीं है। इसलिए, यह शोध निष्कर्ष करता है कि संविधान एवं कानूनों के मौलिक ढांचे पर विश्वास के साथ–साथ उनके समुचित क्रियान्वयन, सामाजिक सोच में परिवर्तन, और महिलाओं में उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता आवश्यक है ताकि लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण की दिशा में ठोस प्रगति हो सके। इस दिशा में सरकार, न्यायपालिका, समाज और स्वयं महिलाओं की सक्रिय भूमिका निर्धारित होगी। यह सबसे उत्तम परिणाम तभी संभव होगा जब सामाजिक मान्यताएं भी महिलाओं के समान अधिकारों और सुरक्षा के साथ कदम मिलाकर चलें, जिससे महिलाओं को सशक्त, सुरक्षित और समान कार्यस्थल और समाज मिले।

सुझाव :

- कार्यस्थलों में कड़े नियम और जागरूकता अभियानों का संचालन।
- महिलाओं के लिए कानूनी सहायता और संरक्षण तंत्र को मजबूत बनाना।
- लैंगिक समानता को बढ़ावा देने वाली नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन।

संदर्भ सूची :

1. Rajagopal, K. (2023). 'Supreme Court expands the scope of Women's Privacy Rights.' The Hindu, नई दिल्ली।
2. National Crime Records Bureau (NCRB). (2023). Crime in India 2022 : Women Related Offences. गृह मंत्रालय, भारत सरकार।
3. X बनाम उ.प्र. राज्य, (2022) – सुप्रीम कोर्ट का निर्णय (सुरक्षित गर्भपात अधिकार पर)
4. Kaushik, S. (2022). Constitutional Safeguards for Working Women in India : A Critical Evaluation. इंडियन सोशल साइंस रिव्यू, 9(1), 15–32.
5. Pandey, J. N. (2021). Constitutional Law of India. सेंट्रल लॉ एजेंसी।
6. Sharma, B. R. (2021). Gender Justice and the Indian Constitution : A Socio-Legal Study. सेज पब्लिकेशन।
7. UNICEF India. (2021). Empowerment of Working Women in India. नई दिल्ली।
8. Government of India. (2021). National Policy for Women : Framework for Empowerment. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय।
9. Mehta, S. & Patel, R. (2020). Workplace Gender Justice : A Legal Perspective. इंडियन जर्नल ऑफ लॉ एंड सोशल स्टडीज, 12(2), 45–60.
10. Human Rights Watch. (2020). India : Policy Gaps in Workplace Harassment Prevention. न्यूयॉर्क
11. Government of India. (2020). Annual Report on Women Employment and Gender Equality. श्रम एवं रोजगार मंत्रालय।

12. National Commission for Women. (2020). Status of Implementation of Women Safety Laws in India. नई दिल्ली।
13. Dutta, I. - Roy, S. (2020). Socio-Legal Challenges of Gender Equality in India. टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई।
14. Basu, D. D. (2019). Introduction to the Constitution of India (24th ed.). लेक्सिसनेक्सिस।
15. Shukla, V. N. (2019). Constitution of India- ईस्टर्न बुक कंपनी, लखनऊ।
16. Press Information Bureau. (2019). Steps Taken for Safety of Women at Workplace. भारत सरकार।
17. International Labour Organization (ILO). (2019). Women at Work : India Country Report. जिनेवा : ILO Publications.
18. Jain, M. P. (2018). Indian Constitutional Law (8th ed.). लेक्सिसनेक्सिस।
19. Ministry of Labour and Employment. (2018). Women in the Workforce Report. भारत सरकार।
20. Rao, A. (2018). Feminist Jurisprudence and Indian Law System. यूनिवर्सिटी प्रेस, हैदराबाद।
21. Bansal, R. (2017). Women's Rights and Legal Protection in India. डीप एंड डीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
22. Bhattacharya, T. (2016). Women at Work : India's Laws and Policies. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
23. United Nations. (2015). Beijing Declaration and Platform for Action. न्यूयॉर्क : संयुक्त राष्ट्र।
24. Ministry of Women and Child Development. (2014). Handbook on Sexual Harassment of Women at Workplace Act, 2013. Government of India.
25. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013. भारत सरकार, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय।
26. CEDAW. (2006). Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women: India Report. संयुक्त राष्ट्र महासभा.
27. Apparel Export Promotion Council v. A.K. Chopra, AIR 1999 SC 625.
28. विशाखा बनाम राजस्थान राज्य, AIR 1997 SC 3011 (भारत का सर्वोच्च न्यायालय).
29. Mackinnon Mackenzie & Co. Ltd. v. Audrey D'Costa, AIR 1987 SC 1281.
30. Air India v. Nargesh Meerza, AIR 1981 SC 1829.
31. लीगल सर्विसेज अथॉरिटीज एक्ट, 1987. भारत सरकार, विधि मंत्रालय।
32. समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976. भारत सरकार, श्रम मंत्रालय।
33. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961. भारत सरकार, श्रम एवं रोजगार मंत्रालय।
34. भारत का संविधान, 1950. भारत सरकार प्रकाशन विभाग।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 86–90

भारतीय संविधान में संवैधानिक उपचारों का अधिकार : एक समीक्षा

SAJAN RAM
ASSISTANT PROFESSOR
SPC GOVERNMENT COLLEGE BHIM.

सारांश :–

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। भारतीय संविधान में संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Article 32 , 226) नागरिकों की मौलिक स्वतंत्रता और न्याय की उपलब्धता का मूल स्तम्भ है। यह अधिकार नागरिकों को यह शक्ति देता है कि यदि राज्य या कोई प्राधिकरण उनके मौलिक अधिकारों का हनन करता है, तो वे सीधे सुप्रीम कोर्ट या हाई कोर्ट में जाकर न्याय की मांग कर सकते है। ऐसा अधिकार जिसके हनन का कोई उपचार नहीं हो वह व्यर्थ की घोषणा मात्र होता है, क्योंकि अधिकार का महत्व तभी होता है जब उसे लागू करने का प्रभावी साधन हो। अधिकार की विद्यमानता का अनुभव तभी होता है जबकि न्यायालय द्वारा अधिकार के पक्ष में निर्णय हो। यह शोध पत्र इस अधिकार की उत्पति, महत्व, न्यायिक व्याख्याएं, वर्तमान चुनौतियां एवं भविष्य की संभावनाओं का विस्तृत अध्ययन करता है।

भूमिका –

भारतीय संविधान में लोकतंत्र की मजबूती का आधार मात्र अधिकारों का घोषणा नहीं बल्कि उन अधिकारों की प्रभावी सुरक्षा के लिए उपलब्ध कानूनी तंत्र भी है। डॉ. अंबेडकर की मान्यता थी कि अनु. 32 संविधान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। इसके बिना संविधान बेकार हो जाएगा। यह संविधान की आत्मा और उसका हृदय है। इसका कारण यह था कि उन्होंने इसे नागरिकों को अत्याचार, मनमानी एवं राज्य शक्ति के दुरूपयोग से बचाने का सबसे प्रभावी उपाय माना।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार इस सिद्धांत पर आधारित है कि जहां अधिकार है, वहां उपचार जरूरी है। यह अधिकार केवल न्यायालयों का अधिकार नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक की सुरक्षा का सबसे बड़ा संवैधानिक रक्षा कवच है।

संवैधानिक उपचारों के अधिकार की उत्पति एवं पृष्ठभूमि –

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

भारत में मौलिक अधिकारों की अवधारणा अमेरिका तथा ब्रिटिश न्यायिक परम्परा से प्रेरित थी। स्वतंत्रता

आंदोलन के समय से ही यह मांग थी कि स्वतंत्र भारत के संविधान में मूल अधिकारों को रखा जाए क्योंकि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ब्रिटिश शासन को मनमानी, दमन, गिरफ्तारी और बोलने की स्वतंतत्रता पर प्रतिबंधों ने एक ऐसे तंत्र की आवश्यकता को स्पष्ट कर दिया था जो नागरिकों को अत्याचार के विरूद्ध न्याय दिला सकें। अतः संविधान सभा ने मूल अधिकारों को दो भागों में रखने का निर्णय लिया। एक वे जो कानूनी तरीके से मनवाए जा सके और दूसरे वे जो नहीं।

संविधान सभा की बहसों में अनु. 32 :-

संविधान सभा में डॉ. बी. आर. अंबेडकर सहित कई सदस्यों ने कहा कि यदि मौलिक अधिकारों की रक्षा प्रभावी नहीं होगी तो उनकी घोषणा व्यर्थ होगी। अनु. 32 को न्यायिक प्रवर्तन का अनिवार्य साधन बनाया गया।

– सुप्रीम कोर्ट का मौलिक अधिकारों की रक्षा करने की गारंटीशुदा शक्ति दी गई।
– संसद को भी इस अधिकार को निलंबित नहीं कर सकती (केवल आपातकाल में अस्थायी रोक संभव थी। जिसे 44वें संविधान संशोधन द्वारा हटा दिया गया।)
– यह वैश्विक स्तर पर एक अनूठा और शक्तिशाली अधिकार है।

संवैधानिक प्रावधान –

अनु. 32 सुप्रीम कोर्ट के समक्ष संवैधानिक उपचार का अधिकार

अनु 32 नागरिकों को यह अधिकार देता है कि :–

– यदि किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर सीधे सुप्रीम कोर्ट जाएं।
– सुप्रीम कोर्ट निम्न में से कोई भी रिट जारी कर सकता है–
  - बंदी प्रत्यक्षीकरण
  - परमोदश
  - प्रतिशेध
  - उत्प्रेषण
  - अधिकार पृच्छा।

इसलिए अनु. 32 को स्वयं मौलिक अधिकार का दर्जा प्राप्त है।

अनु. 226 : उच्च न्यायालयों की शक्ति की विशेषताएं –

- मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर उच्च न्यायालय रिट जारी कर सकते है।
- केवल मौलिक अधिकार ही नहीं बल्कि अन्य कानूरी अधिकारों की रक्षा भी करता है।
- अधिकार अधिक व्यापक, परन्तु असीमित नहीं है। विशेष स्थिति या आपात काल में इन्हें सीमित किया जा सकता है क्योंकि देश की सुरक्षा से उपर कुछ भी नहीं है।

आपातकाल और संवैधानिक उपचार :-

- 1975 के आपातकाल के दौरान अनु. 32 के तहत याचिकाएं बंद की गई।
- 44वॉ संविधान संशोधन 1978 ने अनु. 20 और अनु. 21 के लिए यह रोक हटाई।
- यह लोकतंत्र के आत्म सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण सुधार था।

अतः यदि आपातकाल की घोषणा की जाती है, तो राष्ट्रपति किसी एक या समस्त मौलिक अधिकारों को

निलंबित कर सकता है किन्तु अनु. 20 और अनु. 21 के प्रवर्तन को आपातकाल के दौरान ही निलंबित नहीं किया जा सकता है।

रिटों का स्वरूप और महत्व :–

1. **बंदी प्रत्यक्षीकरण** – इसका शाब्दिक अर्थ है बंदी को न्यायालय के समक्ष प्रत्यक्ष यानि सशरीर लेकर आओ। इस रिट के द्वारा न्यायालय ऐसे व्यक्ति को जिसे गिरफ्तार किया गया है या कारावास में रखा गया है। न्यायालय के समक्ष प्रत्यक्ष उपस्थित करने का आदेश गिरफ्तार किए जाने के कारणों की परीक्षा करता है। अवैध रूप से हिरासत में रखे गए व्यक्ति को तुरंत राहत दी जाती है। यह रिट अनेक मामलों में पुलिस की मनमानी रोकने में सहायक है।

2. **परमादेश** – यह रिट जागरण का शंखनाद है। यह सोए प्राधिकारी को उठकर, जागकर अपना सार्वजनिक कर्तव्य करने को कहती है। इसका उपयोग ऐस प्राधिकारी को आदेश देने के लिए किया जाता है जो सार्वजनिक कर्तव्य करने से इन्कार करता है। साथ ही प्राधिकारी को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करने से भी रोकती है।

नोट – राष्ट्रपति, राज्यपालों और न्यायाधीशों के विरूद्ध यह रिट जारी नहीं की जा सकती है।

3. **प्रतिशेध** – यह रिट वरिष्ठ न्यायालय द्वारा किसी कनिष्ठ न्यायालय या अधिकरण को जारी की जाती है जिससे वह ऐसी आधिकारिता का प्रयोग करने की चेष्टा न करे जो उसके पास नहीं है। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रतिशेध की रिट न्यायिक या न्यायिक अधिकरण के कृत्यों के विरूद्ध ही दी जा सकती है। यह रिट विधायी या कार्यपालिका के कृत्यों के विरूद्ध नहीं की जा सकती है।

4. **उत्प्रेषण** – यह रिट अधिकांशतः किसी विवाद को निम्न न्यायालय से उच्च न्यायालय में भेजने के लिए जारी की जाती है जिससे वह अपनी शक्ति से अधिक अधिकारों का उपयोग न करें या अपनी शक्ति का दुरूपयोग करते हुए न्याय के प्राकृतिक सिद्धांतों को भंग ना करें।

5. **अधिकार पृच्छा** – यह रिट जब कोई व्यक्ति ऐस पदाधिकारी के रूप में कार्य करने लगता है, जिस रूप में कार्य करने का उसे कानूनी रूप से अधिकार नहीं है तो न्यायालय ''अधिकार पृच्छा' के आदेश द्वारा उस प्राधिकारी से पूछता है कि वह व्यक्ति किस आधार पर इस पद पर कार्य कर रहा है। जब तक वह व्यक्ति इस प्रश्न का संतोषजनक उतर नहीं देता। तब तक वह उस कार्य को नहीं कर सकता है। यह रिट गैरकानूनी नियुक्तियों पर रोकथाम लगाती है।

संवैधानिक उपचारों के अधिकार का महत्व –

1. यह अधिकार सुनिश्चित करता है कि कोई भी नागरिक बिना कानूनी सहायता के असुरक्षित न रहे।
2. यह विधिक नियंत्रण का सर्वोतम तंत्र है जिससे सरकार की निरंकुशता मनमानी और दमन को रोका जाता है।
3. यह अधिकार विधि के शासन की स्थापना करता है।
4. यह अधिकार व्यक्ति के आत्मविश्वास के लिए आवश्यक परिस्थितियां उत्पन्न करता है।
5. यह अधिकार सामाजिक समानता, न्याय की स्थापना का प्रमुख आधार है।
6. यह अधिकार गरीब, निम्न तथा कमजोर वर्ग को कानूनी सुरक्षा प्रदान करता है।

7. यह अधिकार अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करता है।

8. यह अधिकार लोकतंत्र का प्रकाश स्तम्भ एवं आधारशिला है।

प्रमुख न्यायिक निर्णय –

1. केशवानंद भारती बना राज्य 1973 वाद में संविधान की मूल संरचना सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। साथ ही अनु. 32 को संरचना का हिस्सा घोषित किया गया है।
2. मेनका गांधी बनाम भारत संघ 1978 वाद में न्यायालय ने अनु. 21 की विस्तृत व्याख्या की। मौलिक अधिकारों को कानूनी मान्यता दी गई।
3. ए.डी.एम. जबलपुर 1976 वाद में 1975 के आपातकाल में मौलिक अधिकारों अनु. 21 को निलंबित कर दिया गया था। बाद में उच्चतम न्यायालय ने इस निर्णय को गलत ठहराया। 44वां संविधान संशोधन 1978 द्वारा अनु. 21 को निलंबित नहीं किया जा सकता हे।
4. पीयूसीएल बनाम भारत सरकार 2003 वाद में फोन टैपिंग पर सुप्रीम कोर्ट ने रोक लगाई। इस निर्णय में न्यायालय ने गोपनियता को मौलिक अधिकार माना गया।
5. पुट्टुस्वामी केस में न्यायालय ने गोपनियता को मौलिक अधिकार घोषित किया। इस निर्ण से अनु. 32 की स्थिति और मजबूत हुई।

इस प्रकार हम देखते है कि न्यायिक निर्णयों की सक्रियता से जारी रिटों के परिणाम स्वरूप पुलिस सुधार, भोजन के अधिकार, शिक्षा के अधिकार आदि विषयों पर सरकारों ने सक्रिय कदम उठाए है।

वर्तमान चुनौतियां :–

1. **न्यायालयों पर अत्यधिक बोझ** – न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या बढती जा रही है जिससे निर्णय समय पर नहीं हो पाते है। न्यायालयों में रिट याचिकाओं का अत्यधिक बोझ बढता जा रहा है।
2. **पीआईएल का दुरूपयोग** – जनहित याचिकाओं का प्रभावशाली लोग राजनैतिक उद्देश्य या लाभ के लिए दुरूपयोग किया जाता है। व्यक्तिगत विवाद के प्रतिशोध के लिए भी लोग इस अधिकार का दुरूपयोग कर रहे है।

   इन सब कारणों से जनहित याचिकाओं की पवित्रता प्रभावित होती है।
3. **विधायिका न्यायपालिका संघर्ष** – आज कई मामलों में न्यायिक सक्रियता और न्यायिक निर्णयों पर सवाल उठते है कि –'' क्या न्यायालय नीतिगत क्षेत्र में अधिक हस्तक्षेप कर रहा है?''

   इस प्रकार हम देखते है कि कई बार विधायिका और न्यायालय के बीच असंतुलन की स्थितियां बन जाती है।

विश्लेषण :–

संवैधानिक उपचारों का अधिकार भारत के लोकतंत्र में 'चेक एंड बैलेंस' की सर्वाधिक प्रभावी व्यवस्था है। हालांकि न्यायालयों की सक्रियता लोकतंत्र के लिए लाभकारी रही है। लेकिन अति सक्रियता चिंता का विषय है। अनु. 32 और अनु. 226 की सबसे बड़ी ताकत यह है कि राज्य/सरकारों/प्राधिकारियों की मनमानी को कभी भी न्यायालयों में चुनौती दी जा सकती है। कोई कानून जो मौलिक अधिकारों का हनन करता है, उसे तुरंत रद्द किया जा सकता है।

फिर भी, रिट प्रणाली का दुरूपयोग, कमजोर लोगों की सीमित पहुंच, न्यायिक विलंब इन सभी से संवैधानिक उपचारों की प्रभावशीलता कही न कहीं प्रभावित होती है।

निष्कर्षत –

भारतीय संविधान में संवैधानिक उपचारों का अधिकार नागरिक स्वतंत्रता का आधार स्तम्भ तथा अटूट कवच है। यह अधिकार यह सुनिश्चित करता है कि :–

1. राज्य की शक्ति सीमित रहे, असीमित न हो।
2. नागरिकों के मौलिक अधिकार प्रभावी रूप से सुरक्षित रहे।
3. सामाजिक न्याय का विस्तार हो।
4. लोकतंत्र लगातार मजबूत होता जाए।

आज आवश्यकता है कि –

1. रिट याचिकाओं की त्वरित सुनवाई हो।
2. न्यायालयों के आधुनिकीकरण की आवश्यकता है।
3. पीआईएल के दुरूपयोग पर अंकुश लगाने की आज आवश्यकता है।
4. आज तकनीक के युग में डिजीटल अधिकारों की स्पष्ट परिभाषा की आवश्यकता है।

यदि यह सब सुनिश्चित किया जाए तो संवैधानिक उपचारों का अधिकार भविष्य में भी भारतीय लोकतंत्र का सबसे शक्तिशाली स्तंभ/आधारशिला बना रहेगा।

संदर्भ सूची :-

1. भारतीय संविधान– शासकीय प्रकाशन।
2. Granville Austin, The Indian Constitution : Cornestone of a Nation.
3. H. M. Seevai, Constitutional Law of India.
4. Supreme Court Judgements : Kesavananda Bharti (1973), Maneka Ganddhi (1978), Puttaswamy (2017)
5. भारतीय संविधान की कार्यवाही।
6. भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट।
7. बृजकिशोर शर्मा, भारत का संविधान एक परिचय, पियरर्सन पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2015
8. डॉ. कविता चौकसे, मौलिक अधिकार – संवैधानिक उपचारों का अधिकार, शोधपत्र।

EMAIL- SAJANBHAMBHU1984@GMAIL.COM

MOB- 8107565880

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 91-98

भारतीय संविधान और महिला सशक्तिकरण, लैंगिक समानता, महिला आरक्षण एवं अधिकार

डॉ. अलका शर्मा
सह–प्राध्यापक, हिंदी विभाग
के. एल. पी. कॉलेज, रेवाड़ी।

भूमिका :

भारतीय संविधान केवल शासन की रूपरेखा नहीं, बल्कि यह भारत की आत्मा का जीवंत दस्तावेज है। जब 1949 में संविधान निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण हुई, तब यह केवल विधिक प्रावधानों का संकलन नहीं था – यह भारत के भविष्य का स्वप्न था। इस स्वप्न में समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व जैसे मूल आदर्श निहित थे, और इन्हीं आदर्शों के केंद्र में भारतीय नारी का सशक्त अस्तित्व भी निहित था। भारतीय समाज में स्त्री की भूमिका सदियों से विरोधाभासी रही है। कभी वह "शक्ति" के रूप में पूज्य रही, तो कभी "अवला" कहकर उपेक्षित। कभी उसे सृजन का स्रोत कहा गया, तो कभी परंपरा की सीमाओं में बाँध दिया गया। संविधान निर्माताओं ने इस ऐतिहासिक असंतुलन को गहराई से समझा और नारी को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, और वैचारिक समानता का अधिकार देने का संकल्प लिया।

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा में स्पष्ट कहा था :–

"भारत का विकास तभी संभव है जब उसकी नारी स्वतंत्र, शिक्षित और सशक्त होगी।"

यह विचार भारतीय संविधान की आत्मा में अंकित हुआ। इसलिए संविधान केवल कानून की किताब नहीं, बल्कि वह प्रतिज्ञा है जो नारी को उसकी गरिमा, अधिकार और आत्मविश्वास लौटाने का माध्यम बनी।

संविधान का उद्देश्य केवल राजनीतिक लोकतंत्र स्थापित करना नहीं था, बल्कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र को भी साकार करना था। नारी की स्वतंत्रता, सम्मान और समानता के बिना यह उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता। इसलिए संविधान ने महिला सशक्तिकरण को न केवल अधिकार के रूप में स्वीकार किया, बल्कि उसे एक नैतिक जिम्मेदारी का रूप भी दिया। संविधान के 75 वर्ष केवल एक ऐतिहासिक पड़ाव नहीं हैं – यह वह यात्रा है जिसमें भारतीय नारी ने मौन से संवाद की, पराधीनता से आत्मनिर्भरता की, और उपेक्षा से प्रतिष्ठा की ओर कदम बढ़ाए।

इस यात्रा में संविधान उसका साथी, संरक्षक और प्रेरक रहा है।

महादेवी वर्मा के शब्दों में :

"नारी केवल उपमा नहीं, अनुभव हैय वह केवल भाव नहीं, विचार भी है।"

इस विचारधारा ने संविधान की संरचना में गहराई से अपनी जड़ें जमाईं, जहाँ नारी को समाज की "निर्भर इकाई" नहीं, बल्कि "निर्माता इकाई" के रूप में देखा गया।

संविधान में महिला सशक्तिकरण का वैचारिक आधार :

भारतीय संविधान की रचना उस काल में हुई जब विश्वभर में मानवाधिकारों और समानता के विचार आकार ले रहे थे। भारत ने इन वैश्विक मूल्यों को अपनी परंपरा, संस्कृति और संघर्ष की भूमि से जोड़कर एक विशिष्ट दृष्टि प्रस्तुत की यह दृष्टि थी समानता में विविधता की स्वीकृति की। महिला सशक्तिकरण का वैचारिक आधार संविधान की प्रस्तावना से लेकर मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति निदेशक तत्वों तक फैला हुआ है।

1. प्रस्तावना : समानता का शाश्वत आदर्श :–

संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है –

"हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व–संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए संकल्प करते हैं जिसमें सभी नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता प्राप्त हो।"

यहाँ "समानता" केवल राजनीतिक या आर्थिक नहीं, बल्कि लैंगिक समानता का भी प्रतीक है।

संविधान ने यह मान लिया कि जब तक नारी और पुरुष को समान अधिकार नहीं मिलेंगे, तब तक न समाज संतुलित होगा, न राष्ट्र सशक्त।

2. मौलिक अधिकारों में नारी की स्वतंत्रता :

अनुच्छेद 14 – कानून के समक्ष समानता और समान संरक्षण का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 15(1) – लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को असंवैधानिक घोषित करता है।

अनुच्छेद 15(3) – राज्य को यह अनुमति देता है कि वह महिलाओं और बच्चों के हित में विशेष प्रावधान कर सके।

यह अनुच्छेद भारतीय नारी के कल्याण की संवैधानिक कुंजी है।

अनुच्छेद 16 – सार्वजनिक रोजगार और पदों पर समान अवसर सुनिश्चित करता है, जिससे महिलाएँ प्रशासनिक और सरकारी क्षेत्रों में समान भागीदारी प्राप्त कर सकें।

इन अधिकारों के माध्यम से संविधान ने नारी को केवल अधिकार नहीं दिए, बल्कि उस पर विश्वास जताया –

कि वह राष्ट्र की दिशा और दशा तय करने में समान रूप से सक्षम है।

3. नीति निदेशक तत्वों में नारी सम्मान :

संविधान का अनुच्छेद 39 (क) कहता है : राज्य यह सुनिश्चित करे कि पुरुष और महिला दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले।

अनुच्छेद 42 – महिलाओं के लिए मातृत्व सुरक्षा और कार्यस्थल पर मानवीय परिस्थितियों की गारंटी देता है।

अनुच्छेद 51(क)(ई) – नागरिकों के कर्तव्यों में शामिल करता है कि वे स्त्रियों की गरिमा का अपमान न

करें और समानता की भावना को बढ़ावा दें।

इन प्रावधानों ने भारतीय सामाजिक ढाँचे को यह दिशा दी कि स्त्री अब केवल परिवार की मर्यादा की प्रतीक न रहे, बल्कि राष्ट्र–निर्माण की सक्रिय सहभागी बने।

4. डॉ. अम्बेडकर का दृष्टिकोण –

डॉ. अम्बेडकर ने कहा था :

''मैं किसी समाज की प्रगति का मापदंड उसकी महिलाओं की स्थिति से तय करता हूँ।''

उनके इस कथन ने भारतीय संविधान की संरचना में यह सुनिश्चित किया कि महिला सशक्तिकरण केवल सामाजिक सुधार का हिस्सा नहीं, बल्कि संवैधानिक लक्ष्य बने।

महिलाओं के अधिकारों को संरक्षित करने के लिए बाद के वर्षों में कई महत्वपूर्ण संशोधन किए गए, जैसे–

- **73वां और 74वां संविधान संशोधन (1992) :** पंचायती राज और नगर निकायों में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण।
- **महिला आरक्षण विधेयक (2023) :** संसद और विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33% सीटें आरक्षित करने का ऐतिहासिक कदम।

इन सभी प्रावधानों ने भारतीय नारी को "दर्शक" से "निर्णायक" की भूमिका में लाकर खड़ा किया है।

5. वैचारिक सारांश :

भारतीय संविधान का यह वैचारिक ढाँचा बताता है कि महिला सशक्तिकरण किसी "कानूनी सौगात" का परिणाम नहीं, बल्कि यह उस सामाजिक चेतना का विस्तार है जो भारत की आत्मा में निहित थी। यह सशक्तिकरण केवल समान अधिकारों की मांग नहीं, बल्कि समान अवसरों और सम्मान की स्थापना की प्रक्रिया है।

संविधान के भीतर जो दृष्टि है, वह कहती है –

''नारी के बिना समानता की परिकल्पना अधूरी है, और समानता के बिना लोकतंत्र अधूरा।''

समानता और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया :

भारतीय संविधान ने समानता का जो आदर्श प्रस्तुत किया, वह केवल विधिक प्रावधान नहीं था। यह सांस्कृतिक क्रांति का सूत्रपात था। सदियों से भारतीय समाज पितृसत्तात्मक मूल्यों से संचालित रहा, जहाँ नारी को सीमाओं में बाँध दिया गया। संविधान ने पहली बार इस सोच को चुनौती दी। यह कहा कि नारी केवल परिवार या परंपरा की रक्षक नहीं, बल्कि राष्ट्र की प्रगति की सह–निर्माता है।

- **सामाजिक परिवर्तन का प्रारंभ :**

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी के क्षेत्र में नारी को नए अवसर प्रदान किए। संविधान ने यह सुनिश्चित किया कि नारी को सामाजिक न्याय केवल कानून की भाषा में नहीं, बल्कि जीवन की भाषा में भी मिले। यह परिवर्तन धीरे–धीरे सामाजिक चेतना का हिस्सा बना।

महादेवी वर्मा ने कहा था – **''नारी जीवन के हर क्षेत्र में समान अधिकार की आकांक्षी है, क्योंकि वह मनुष्य है, किसी की छाया नहीं।''**

यह विचार भारतीय लोकतंत्र में नई संवेदना लेकर आया। अब नारी केवल घर की चौखट तक सीमित

नहीं रहीय उसने शिक्षा, विज्ञान, प्रशासन, और साहित्य के क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

- **समानता का संवैधानिक आधार और प्रभाव :**

संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 ने समानता की मजबूत नींव रखी।

इन अनुच्छेदों ने नारी को यह अधिकार दिया कि वह किसी भी क्षेत्र में अपने पुरुष समकक्षों के समान अवसर प्राप्त करे।

इसके परिणामस्वरूप –

- महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि हुई,
- कार्यक्षेत्रों में उनकी भागीदारी बढ़ी,
- और समाज में नारी के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आया।

- **समानता से सशक्तिकरण की ओर :**

समानता का उद्देश्य केवल अधिकारों की सूची तैयार करना नहीं था, बल्कि ऐसा समाज बनाना था जहाँ नारी स्वयं को सक्षम, सुरक्षित और स्वाभिमानी महसूस करे।

यह समानता धीरे–धीरे सशक्तिकरण में परिवर्तित हुई जब महिलाओं ने केवल अधिकार मांगना नहीं, बल्कि अपने अधिकारों को अभिव्यक्ति और क्रिया में बदलना शुरू किया।

- **नारी सशक्तिकरण का अर्थ है :**

नारी की सामाजिक स्थिति में सुधार, शिक्षा और रोजगार में समान भागीदारी, और निर्णय लेने की स्वतंत्रता।

- **शिक्षा : परिवर्तन का आधार :**

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था –

"शिक्षा वह साधन है जो व्यक्ति को स्वतंत्र सोचने और न्यायपूर्ण आचरण करने में सक्षम बनाती है।"

संविधान के अनुच्छेद 45 और 21(क) ने निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित किया, जिसने महिलाओं के विकास में क्रांतिकारी भूमिका निभाई। आज उच्च शिक्षा संस्थानों में महिलाओं की संख्या लगातार बढ़ रही है। यह केवल आंकड़ा नहीं, बल्कि समानता की चेतना का प्रमाण है।

- **सामाजिक न्याय और नारी चेतना :**

संविधान ने समानता के माध्यम से नारी को आत्म–सम्मान और स्वायत्तता की दिशा में अग्रसर किया। यह यात्रा आसान नहीं थी कृ समाज में अभी भी कई अवरोध हैं, किंतु परिवर्तन का प्रवाह अविराम है। नारी अब केवल परंपरा की पोषक नहीं, बल्कि परिवर्तन की वाहक बन चुकी है।

- **महिला आरक्षण की संवैधानिक यात्रा :**

भारतीय संविधान ने यह स्वीकार किया कि औपचारिक समानता पर्याप्त नहीं। जब तक वास्तविक समानता स्थापित नहीं होती, तब तक लोकतंत्र अधूरा है। इसी सोच ने महिला आरक्षण की अवधारणा को जन्म दिया।

- **ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :**

संविधान सभा में भी यह चर्चा हुई थी कि महिलाओं को राजनीतिक प्रक्रिया में समान भागीदारी कैसे

मिले। हालाँकि तत्कालीन समय में प्रतिनिधित्व सीमित था, परंतु 73वें और 74वें संविधान संशोधनों (1992) ने इस दिशा में ऐतिहासिक पहल की।

इन संशोधनों के अंतर्गत :

- ग्राम पंचायतों और नगर निकायों में 33% सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की गईं।
- कई राज्यों ने बाद में इसे बढ़ाकर 50% तक कर दिया।

इस निर्णय ने भारत की राजनीति का चेहरा ही बदल दिया। आज लाखों महिलाएँ स्थानीय शासन में सरपंच, पार्षद और प्रमुख के रूप में सक्रिय हैं। उन्होंने न केवल प्रशासनिक दक्षता दिखाई, बल्कि संवेदनशील नेतृत्व का उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

- **महिला आरक्षण विधेयक (2023) : एक नई सुबह :**

2023 में पारित नारी शक्ति वंदन अधिनियम भारतीय संसदीय इतिहास में मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इस विधेयक ने संसद और राज्य विधानसभाओं में 33% आरक्षण सुनिश्चित किया। यह न केवल विधिक उपलब्धि है, बल्कि सामाजिक चेतना का प्रतीक भी है। इस अधिनियम के माध्यम से भारतीय लोकतंत्र ने यह संदेश दिया कि नारी अब दर्शक नहीं, नीति–निर्माता है। यह उस यात्रा का परिणाम है जो संविधान की मूल भावना 'समानता और न्याय' से प्रारंभ होकर राजनीतिक सशक्तिकरण तक पहुँची।

- **आरक्षण और प्रतिनिधित्व का प्रभाव :**

आरक्षण ने महिलाओं को अवसर का मंच दिया, परंतु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इसने नेतृत्व का आत्मविश्वास प्रदान किया। ग्रामीण स्तर से लेकर राष्ट्रीय संसद तक, आज महिलाएँ नीतियाँ बना रही हैं, कानूनों पर विमर्श कर रही हैं, और विकास की दिशा तय कर रही हैं। जिन क्षेत्रों में कभी उनका नाम तक नहीं था, वहाँ अब उनके हस्ताक्षर हैं। यह वही परिवर्तन है जिसका स्वप्न संविधान निर्माताओं ने देखा था।

- **चुनौतियाँ और दिशा :**

हालाँकि आरक्षण एक आवश्यक कदम है, किंतु यह अंतिम समाधान नहीं। महिला प्रतिनिधित्व की वास्तविक सफलता तब होगी जब समाज में मानसिक, वैचारिक और संस्थागत समानता स्थापित हो। आरक्षण को स्थायी सशक्तिकरण में बदलना हमारी अगली चुनौती है। क्योंकि :

"कानून अवसर दे सकता है, पर सम्मान और समानता समाज को स्वयं अर्जित करनी होती है।"

भारतीय संदर्भ में नारी विमर्श और साहित्यिक दृष्टि :

भारतीय समाज की संरचना सदियों से संस्कृति, परंपरा और मान्यताओं पर आधारित रही है।

यह वही भूमि है जहाँ स्त्री को देवी, माँ, सखी, और शक्ति के रूप में पूजित किया गया, परंतु विरोधाभास यह भी रहा कि उसी समाज में उसे पराधीनता और असमानता का अनुभव भी करना पड़ा। नारी विमर्श इसी विरोधाभास की पृष्ठभूमि से जन्मा। यह केवल सामाजिक आंदोलन नहीं, बल्कि विचारों की क्रांति थी।

- **नारी विमर्श की वैचारिक जड़ें :**

नारी विमर्श (Feminist Discourse) का उद्देश्य पुरुष–विरोध नहीं, बल्कि समानता और सम्मान की पुनःस्थापना है। भारतीय संदर्भ में यह विमर्श पश्चिम से आयातित नहीं, बल्कि हमारी परंपरा और अनुभवों की देन है। वेदों में **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"** की घोषणा की गई थी। फिर भी, समय के साथ यह

आदर्श केवल श्लोक बनकर रह गया। संविधान ने इस विसंगति को मिटाने की भूमिका निभाई, और नारी विमर्श को वैधानिक आधार प्रदान किया।

नारी विमर्श का पहला स्वर भारत में सुधार आंदोलन के दौर में सुनाई दिया। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, सावित्रीबाई फुले, पंडिता रमाबाई जैसी विभूतियों ने स्त्रियों की शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह और बाल विवाह उन्मूलन के लिए संघर्ष किया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान यह स्वर और व्यापक हुआ। सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित, अरुणा आसफ अली जैसी नारियों ने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व किया, बल्कि यह सिद्ध किया कि नारी नेतृत्व क्षमता में किसी से कम नहीं।

- **साहित्य में नारी की चेतना :**

साहित्य समाज का दर्पण है और जब समाज में परिवर्तन आता है, तो उसका प्रतिबिंब साहित्य में स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है। भारतीय साहित्य में नारी विमर्श धीरे–धीरे एक केंद्रीय धारा के रूप में उभरा।

प्राचीन साहित्य में सीता, द्रौपदी, गार्गी और मैत्रेयी जैसी नारी पात्र संवेदनशीलता और आत्मबल का प्रतीक हैं। वे मौन नहीं थीं उनके संवादों में प्रश्न, तर्क और आत्मसम्मान झलकता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में यह स्वर और मुखर हुआ।

महादेवी वर्मा ने कहा :

"नारी अपने आँसुओं की कहानी स्वयं कहे, यह ही उसका पुनर्जन्म है।"

उनकी रचनाओं में नारी की करुणा के साथ–साथ आत्म–सजगता और स्वाभिमान भी प्रकट होता है।

अमृता प्रीतम की "मैं तेनू फिर मिलांगी" में नारी का स्वर आत्मा की स्वतंत्रता का प्रतीक है।

सुधा अरोड़ा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा जैसी लेखिकाओं ने नारी के अंतर्मन, उसकी जद्दोजहद, उसकी आकांक्षाओं और उसके संघर्ष को जीवन के यथार्थ से जोड़कर प्रस्तुत किया। इन साहित्यिक प्रवृत्तियों ने यह स्पष्ट किया कि नारी विमर्श किसी वर्ग की समस्या नहीं, बल्कि मानवता की समस्या है।

- **संविधान और साहित्य का संगम :**

भारतीय संविधान और साहित्य दोनों ही एक ही दिशा में अग्रसर हैं। एक ओर संविधान ने नारी के अधिकारों की विधिक रक्षा की, तो दूसरी ओर साहित्य ने नारी की आत्मा की अभिव्यक्ति को स्वर दिया। संविधान ने उसे कानूनी अस्त्र दिया, साहित्य ने संवेदनशील दृष्टि।

इन दोनों के संगम से नारी विमर्श का स्वर और सशक्त हुआ।

महादेवी वर्मा के शब्दों में :

"नारी का जीवन न उपमा है, न प्रतीक, वह स्वयं एक सजीव ग्रंथ है।"

आज जब हम संविधान के 75 वर्ष पूरे कर रहे हैं, तब यह स्वीकार करना आवश्यक है कि नारी विमर्श ने भारत के सामाजिक और साहित्यिक परिदृश्य को नया आकार दिया है :

जहाँ अब स्त्री केवल प्रेरणा नहीं, परिवर्तन की वाहक बन चुकी है।

महिला अधिकार और समकालीन चुनौतियाँ :

संविधान के 75 वर्षों की इस यात्रा में हमने नारी के अधिकारों को विधिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर सशक्त होते देखा है। परंतु यह भी सत्य है कि आज भी अनेक चुनौतियाँ शेष हैं जो नारी सशक्तिकरण की

राह में अवरोध बनकर खड़ी हैं।

- **विधिक अधिकार और उनकी प्रभावशीलता :**

संविधान ने महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, संपत्ति और समान अवसरों का अधिकार दिया।

लेकिन कई बार कानून और व्यवहार के बीच दूरी दिखाई देती है। महिला सुरक्षा, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, दहेज, बाल विवाह जैसी समस्याएँ आज भी समाज की चेतना को चुनौती देती हैं।

इनसे निपटने के लिए भारतीय न्याय प्रणाली ने कई ठोस कदम उठाए हैं :

- घरेलू हिंसा अधिनियम (2005)
- कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न अधिनियम (2013)
- बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना,
- सुकन्या समृद्धि योजना।

महिला हेल्पलाइन 1091 जैसी योजनाओं ने महिलाओं को संरक्षित और सक्षम बनाने में सहायता दी है। परंतु किसी भी अधिकार की सफलता तभी संभव है जब उसके पीछे मानसिक परिवर्तन भी हो। इसलिए अब आवश्यकता है कि समाज नारी को केवल "संवेदना की प्रतीक" न मानकर "निर्णय की धुरी" के रूप में स्वीकार करे।

- **आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता :**

नारी सशक्तिकरण का सबसे वास्तविक रूप उसकी आर्थिक स्वतंत्रता में निहित है। जब नारी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होती है, तब वह निर्णय लेने में स्वतंत्र होती है। संविधान का उद्देश्य यही था नारी को आत्मनिर्भर बनाना। आज भारत में महिलाएँ वैज्ञानिक, उद्यमी, अधिकारी, और सशस्त्र बलों में भी अपनी पहचान बना रही हैं। यह प्रगति उत्साहजनक है, परंतु अभी भी ग्रामीण भारत में असमानता, अशिक्षा और आर्थिक निर्भरता की स्थिति चिंताजनक है।

- **मानसिकता और सामाजिक दृष्टिकोण :**

संविधान समानता की गारंटी दे सकता है, परंतु समानता की भावना समाज को स्वयं विकसित करनी होती है। आज भी लैंगिक भेदभाव, रूढ़िवादिता और परंपरागत सोच नारी की प्रगति में अवरोध उत्पन्न करते हैं। इसलिए शिक्षा और जनजागरण सबसे महत्वपूर्ण उपकरण हैं जो इस मानसिक अंतर को मिटा सकते हैं।

- **डिजिटल युग की नई चुनौतियाँ :**

आज नारी डिजिटल दुनिया में भी अग्रणी है परंतु ऑनलाइन उत्पीड़न, ट्रोलिंग, और साइबर अपराधों का खतरा बढ़ा है। इस संदर्भ में डिजिटल साक्षरता और साइबर सुरक्षा कानूनों की जानकारी महिलाओं तक पहुँचाना अनिवार्य है। सशक्तिकरण का अर्थ केवल अधिकार प्राप्त करना नहीं, बल्कि अपने अधिकारों की रक्षा करना भी है।

- **परिवर्तन की दिशा :**

महिला अधिकारों की वास्तविक स्थापना तब होगी जब नारी के प्रति दृष्टिकोण में संवेदना और सम्मान दोनों हों। यह परिवर्तन शिक्षा, साहित्य और समाज के सम्मिलित प्रयास से ही संभव है। संविधान ने दिशा दी है अब उस दिशा में सतत् गति बनाए रखना समाज की जिम्मेदारी है।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान के 75 वर्ष केवल एक राजनीतिक या विधिक उपलब्धि का प्रतीक नहीं, बल्कि भारत के सामाजिक पुनर्जागरण का उत्सव हैं। यह वह यात्रा है जिसमें भारतीय नारी ने पराधीनता से स्वतंत्रता, मौन से अभिव्यक्ति और संघर्ष से सम्मान की ओर कदम बढ़ाया। संविधान ने नारी को केवल अधिकार नहीं दिए उसने उसे पहचान दी, अस्मिता दी, और यह विश्वास दिलाया कि समाज के हर क्षेत्र में उसकी उपस्थिति अनिवार्य है। आज की भारतीय नारी न केवल शिक्षित और जागरूक है, बल्कि वह राष्ट्र–निर्माण की एक निर्णायक शक्ति भी बन चुकी है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का वह कथन आज भी उतना ही प्रासंगिक है :

''भारत का वास्तविक विकास तभी संभव है जब उसकी नारी शिक्षित और सशक्त होगी।''

इन 75 वर्षों में हमने देखा है कि संवैधानिक अधिकारों ने नारी को सामाजिक न्याय का औजार दिया, साहित्य ने उसे स्वर दिया, शिक्षा ने उसे दृष्टि दी, और लोकतंत्र ने उसे पहचान दी। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आज भारत में नारी केवल 'संविधान की विषयवस्तु' नहीं रही, वह अब 'संविधान की आत्मा' बन चुकी है। उसकी उपस्थिति अब हर उस क्षेत्र में दिखाई देती है जहाँ कभी उसका नाम तक नहीं था। विज्ञान, राजनीति, शिक्षा, सेना, कला, पत्रकारिता और न्यायपालिका तक। फिर भी यह स्वीकारना आवश्यक है कि यात्रा अभी समाप्त नहीं हुई। समानता की राह लंबी है, और चुनौतियाँ अब भी विद्यमान हैं :

परंतु अब नारी के कदम रुकने वाले नहीं। संविधान ने उसे दिशा दी है, और उसकी चेतना ने उस दिशा को गति।

यह संविधान की ही देन है कि भारत की नारी आज "अधिकार की याचक" नहीं, बल्कि "अधिकार की वाहक" बन चुकी है। उसने समाज को यह सिखाया है कि सशक्तिकरण का अर्थ विरोध नहीं, सहभागिता है। और समानता का अर्थ प्रतिस्पर्धा नहीं, सहयोग है। 75 वर्षों के इस सिंहावलोकन में हम यह अनुभव करते हैं कि भारतीय संविधान ने जिस भारत का स्वप्न देखा था वह भारत आज धीरे–धीरे उस दिशा में बढ़ रहा है जहाँ नारी और पुरुष एक–दूसरे के पूरक हैं, प्रतिस्पर्धी नहीं।

महादेवी वर्मा के शब्दों में :

''नारी का मौन अब उसका पराजय नहीं, उसका आत्मसंयम है,
और जब वह बोलेगी, तो उसकी वाणी युगों को दिशा देगी।''

संविधान के 75वें वर्ष में यह वाणी अब मुखर है, सशक्त है, और समरसता के भारत का निर्माण कर रही है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कृ भारतीय संविधान ने जिस समानता, न्याय और स्वतंत्रता के आदर्शों को स्थापित किया, उन्होंने भारतीय नारी को केवल अधिकार ही नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और आत्मविश्वास का नया युग दिया। यह युग केवल कानूनी दस्तावेजों का नहीं, बल्कि मानवता और संवेदना के पुनर्जन्म का युग है।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 99-105

भारतीय संविधान निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

श्याम मूर्ति भारती
अतिथि शिक्षक (इतिहास)
रास नारायण महाविद्यालय, पण्डौल, जिला– मधुबनी, राज्य– बिहार, भारत।

सारांश :

भारतीय संविधान का निर्माण एक दीर्घकालिक, बहुआयामी तथा ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में किए गए क्रमिक संवैधानिक सुधार–भारतीय परिषद अधिनियम, 1909 (मॉर्ले–मिंटो सुधार), भारत शासन अधिनियम, 1919 (मॉन्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार) तथा भारत शासन अधिनियम, 1935–ने भारतीय शासन–व्यवस्था में प्रतिनिधित्व, द्वैध–शासन तथा संघीय संरचना के प्रारम्भिक रूपों को जन्म दिया (भारतीय परिषद अधिनियम, 1909 का भारत शासन अधिनियम, 1919 का भारत शासन अधिनियम, 1935)।

राष्ट्रीय आंदोलन ने नागरिक अधिकारों, सामाजिक न्याय तथा राष्ट्रीय स्वशासन की वैचारिक माँगों को सुदृढ़ किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत विकसित राजनीतिक परिस्थिति तथा कैबिनेट मिशन (1946) की अनुशंसाओं के आधार पर गठित संविधान सभा (9 दिसंबर 1946 से) ने विभिन्न समितियों के माध्यम से संविधान–निर्माण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया। संविधान का अंतिम प्रारूप 26 नवम्बर 1949 को अंगीकृत किया गया तथा 26 जनवरी 1950 से यह प्रभावी हुआ (संविधान सभा वाद–विवाद, 26 नवम्बर 1949 ऑस्टिन, 1966, पृ. 75)।

यह संविधान भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियों, ब्रिटिश संसदीय परंपराओं तथा कुछ विदेशी संवैधानिक प्रावधानों–जैसे अमेरिका और आयरलैंड–के समन्वित रूप से निर्मित एक समावेशी एवं बहुलतावादी दस्तावेज है (बसु, 2013, पृ. 21, ऑस्टिन, 1966, पृ. 75)।

कूट शब्द : संविधान निर्माण, औपनिवेशिक शासन, राष्ट्रीय आंदोलन, संविधान सभा, लोकतंत्र, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।

परिचय :

भारतीय संविधान का निर्माण एक जटिल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में संपन्न हुआ, जहाँ औपनिवेशिक शासन के संवैधानिक परिवर्तन, राष्ट्रवादी आंदोलनों की वैचारिक प्रेरणाएँ तथा द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर भारतीय जनराजनीति की वास्तविकताएँ एक–दूसरे के साथ अंतःक्रिया करती हुई दिखाई देती हैं। प्रारम्भिक संवैधानिक सुधारों ने भारतीय प्रशासन, प्रतिनिधित्व तथा शासन–व्यवस्था के तकनीकी ढाँचे को विकसित किया।

भारतीय परिषद अधिनियम, 1909 (मॉर्ले–मिंटो सुधार) ने विधानपरिषदों में भारतीय प्रतिनिधित्व का

प्रारम्भिक विस्तार किया, यद्यपि यह प्रतिनिधित्व सीमित दायरे तक ही सीमित रहा (भारतीय परिषद अधिनियम, 1909)। इसके बाद लागू भारत शासन अधिनियम, 1919 ने प्रान्तीय स्तर पर 'द्वैध–शासन' की व्यवस्था आरम्भ की, जिसके अंतर्गत कुछ प्रशासनिक विषयों का उत्तरदायित्व भारतीय मंत्रियों को सौंपा गया; तथापि केन्द्रीय सत्ता पर वायसराय का प्रभुत्व यथावत बना रहा (भारत शासन अधिनियम, 1919)।

भारत शासन अधिनियम, 1935 ने संघ–व्यवस्था की संकल्पना, प्रांतीय स्वायत्तता तथा विभिन्न संस्थागत संरचनाओं का आधार प्रदान किया–और संविधान–निर्माताओं ने इसके अनेक तकनीकी तत्वों को आगे परिष्कृत एवं विकसित किया (भारत शासन अधिनियम, 1935; ऑस्टिन, 1966, पृ. 50–66)।

राष्ट्रवादी आंदोलन ने संवैधानिक बहसों एवं विमर्श को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। नेहरू रिपोर्ट (1928) तथा कराची प्रस्ताव (1931) ने स्वशासन एवं मौलिक अधिकारों की अवधारणा को आगे बढ़ाया, जबकि गांधी के नेतृत्व वाले आंदोलनों ने जन–भागीदारी, अहिंसा तथा नैतिक राजनीतिकता पर विशेष बल दिया।

कैबिनेट मिशन (1946) ने संविधान सभा के गठन तथा उसकी कार्यविधि की रूपरेखा प्रस्तुत की। संविधान सभा ने 9 दिसंबर 1946 को अपना कार्यारम्भ किया तथा डॉ. बी. आर. अंबेकर की अध्यक्षता वाली मसौदा समिति के नेतृत्व में विस्तृत संविधान–निर्माण प्रक्रिया संचालित की (संविधान सभा वाद–विवाद; बी. शिवा राव, 1968, खंड I–V)।

अंततः संविधान का औपचारिक अंगीकरण 26 नवम्बर 1949 को किया गया (संविधान सभा वाद–विवाद, 26 नवम्बर 1949–यह तिथि आधिकारिक सरकारी अभिलेखों में दर्ज है और लोकसभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित संबंधित वॉल्यूमों में उपलब्ध है)।

अध्ययन के उद्देश्य :

भारतीय संविधान के निर्माण की यात्रा केवल राजनीतिक परिवर्तनों का परिणाम नहीं थी; यह उस सामूहिक चेतना का प्रतिफल थी जिसने सदियों तक विदेशी शासन के बीच स्वाधीनता, न्याय और समानता का स्वप्न संजोकर रखा। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना इस शोध का आधार है। प्रस्तुत शोध–पत्र के उद्देश्य केवल तथ्यों का संकलन भर नहीं हैं, बल्कि उन भावनात्मक, वैचारिक और सामाजिक अनुभूतियों को भी पकड़ना है जिन्होंने संविधान निर्माण की नींव को मजबूती प्रदान की। इस शोध के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. संविधान निर्माण की ऐतिहासिक यात्रा को संवेदनात्मक रूप से समझना :

इस अध्ययन का एक प्रमुख उद्देश्य यह जानना है कि किस प्रकार औपनिवेशिक शासन, सामाजिक विसंगतियों और स्वतंत्रता संग्राम ने मिलकर उस विचार–भूमि को तैयार किया, जिस पर संविधान का स्वरूप उभर कर आया। तथ्य तो दस्तावेजों में मिल जाते हैं, किंतु उस कालखंड की बेचैनी, आकांक्षाएँ और संघर्ष–उन्हें समझना इस शोध का मूल उद्देश्य है।

2. उन सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का मूल्यांकन जो संविधान को आकार देती रहीं :

भारतीय समाज की विविधताओं–जाति, भाषा, धर्म, क्षेत्र–को समझे बिना संविधान की आत्मा को समझना संभव नहीं है। उद्देश्य यह देखना है कि यह बहुलता संविधान निर्माताओं के लिए चुनौती भी बनी और प्रेरणा भी।

3. संविधान सभा की संरचना और उसके भीतर की मानवीय ऊर्जा को जानना :

यह शोध केवल संविधान सभा के गठन का विवरण नहीं देता, बल्कि यह समझने का प्रयास भी करता

है कि कैसे अलग–अलग पृष्ठभूमियों से आए लोग एक साझा भविष्य के लिए एकजुट होकर बैठे, बहस की, मतभेदों के बावजूद समान धरातल खोजा और भारत के राजनीतिक भविष्य को गढ़ा।

4. बहसों, तर्कों और वैचारिक टकरावों की वास्तविक संवेदना को पकड़ना :

उद्देश्य यह भी है कि संविधान सभा में उठे प्रश्नों–मूल अधिकार, नागरिकता, धर्मनिरपेक्षता, केंद्र–राज्य संबंध, न्यायपालिका–की बहसों को केवल दस्तावेज की तरह नहीं बल्कि एक जीवंत प्रक्रिया के रूप में समझा जाए, जिसमें हर सदस्य अपनी जीवनानुभूति लेकर उपस्थित हुआ।

5. भारतीय और विदेशी स्रोतों के प्रभाव को संतुलित रूप से देखना :

भारतीय परंपरा, गांधीवादी चिंतन, बुद्ध–अशोक की करुणा, मध्यकालीन न्याय व्यवस्था, ब्रिटिश संस्थाएँ, अमेरिकी ठपसस वत्पिहीजेकृइन सभी के प्रभावों का उद्देश्य यह पहचानना है कि भारतीय संविधान किसी एक स्रोत की उपज नहीं बल्कि अनेक विचारधाराओं का संयोजन है।

6. संविधान निर्माण की कठिनाइयों और व्यावहारिक चुनौतियों को वास्तविक संदर्भ में समझना :

विभाजन का दर्द, साम्प्रदायिक तनाव, आर्थिक सीमाएँ, लाखों विस्थापितों की पीड़ा, राजनीतिक संक्रमण–उद्देश्य यह भी है कि इन परिस्थितियों में संविधान निर्माण किस साहस, संवेदना और दूरदर्शिता के साथ संपन्न हुआ।

7. संविधान निर्माण के दीर्घकालीन प्रभावों का मूल्यांकन करना :

यह समझना भी उद्देश्य है कि संविधान ने आज के भारत की लोकतांत्रिक संस्कृति, प्रशासनिक ढाँचे, न्यायपरक सोच और नागरिक चेतना को कैसे दिशा दी। संविधान के निर्माण ने केवल राज्य व्यवस्था को नहीं बदला; उसने भारतीय समाज के विकास की गति को भी नई दिशा प्रदान की।

8. संविधान को "जीवित दस्तावेज" मानने के ऐतिहासिक आधारों को समझना :

यह अध्ययन उन ऐतिहासिक अनुभवों को पहचानना चाहता है जिन्होंने हमारे संविधान को स्थिर न होकर परिवर्तनशील बनाया, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ समय के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन कर सकें।

9. शोध को पूर्णतः मानवीय अनुभव, ऐतिहासिक संवेदनाओं और अकादमिक सत्यनिष्ठा के साथ प्रस्तुत करना :

अंतिम उद्देश्य यह है कि यह शोध केवल एक अकादमिक दस्तावेज न रह जाए, बल्कि पाठक को यह महसूस हो कि संविधान निर्माण की कहानी हमारे पूर्वजों की इच्छाशक्ति, पीड़ा, संघर्ष और भविष्य–दृष्टि की कहानी भी है।

संविधान निर्माण से संबंधित परिकल्पनाएँ :

परिकल्पना–1 :

संभवतः भारतीय संविधान का जन्म इतिहास की किसी एक घटना से नहीं, बल्कि उन अनगिनत अनुभवों, संघर्षों और सामाजिक परिवर्तनों के संचय से हुआ होगा, जिन्हें भारतीय समाज ने सदियों तक जिया। यह मानना अनुचित न होगा कि संविधान की बुनावट में लिच्छवि गणराज्य की स्मृतियाँ, अशोक की मानव–नीति और अकबर की सहिष्णुता समान रूप से गुँथी हों।

परिकल्पना–2 :

हो सकता है कि स्वतंत्रता आंदोलन ने भारतीयों को जितना राजनीतिक रूप से मजबूत किया, उससे कहीं अधिक उसने सामाजिक और नैतिक चेतना को रूपांतरित किया। इसी बदलती चेतना ने संविधान सभा को प्रेरित किया होगा कि वह ऐसा संविधान रचे, जिसमें केवल सत्ता का नहीं, बल्कि मनुष्य के सम्मान का भविष्य सुरक्षित हो।

परिकल्पना–3 :

संविधान सभा में हुए विमर्श मात्र कानून की पंक्तियों पर बहस नहीं रहे होंगे उनमें अनेक सदस्यों के व्यक्तिगत संघर्ष, जातीय–सामाजिक अनुभव, दमन की पीड़ा और न्याय की आकांक्षाएँ अनकहे रूप में शामिल रही होंगी। इन्हीं मानवीय अनुभवों ने संविधान की आत्मा में करुणा और समानता का गहरा रंग भरने में योगदान दिया होगा।

परिकल्पना–4 :

संभव है कि संविधान निर्माताओं ने विदेशी संविधानों का अध्ययन तो किया, पर उन्हें बिना प्रश्न किए नहीं स्वीकारा। उन्होंने यह महसूस किया होगा कि भारत की सामाजिक विविधता और ऐतिहासिक संवेदनाओं के अनुरूप केवल वही प्रावधान टिकाऊ होंगे, जिन्हें भारतीय परिस्थितियों में ढालकर अपनाया जाए।

परिकल्पना–5 :

विभाजन, दंगों और अस्थिरता के कठिन समय में भी संविधान सभा की चर्चा अपेक्षा से अधिक संयत और संतुलित रही होगी। इससे संकेत मिलता है कि समाज की पीड़ाओं ने सदस्यों के भीतर एक ऐसी परिपक्वता पैदा कर दी थी, जिसने उन्हें तत्कालीन तनावों से ऊपर उठकर भविष्य की पीढ़ियों के लिए विधि–व्यवस्था की स्थायी नींव बनाने की प्रेरणा दी।

परिकल्पना–6 :

भारतीय संविधान को "जीवित दस्तावेज" बनाने का विचार संभवतः इस समझ से निकला होगा कि भारत की सामाजिक संरचना स्थिर नहीं है। जाति, भाषा, संस्कृति, क्षेत्रीयता और आर्थिक असमानताओं से बने इस विशाल समाज में किसी कठोर और अपरिवर्तनीय संविधान की कल्पना व्यावहारिक नहीं थी। इसलिए बदलाव की गुंजाइश संविधान की मूल प्रकृति का हिस्सा बनाई गई होगी।

परिकल्पना–7 :

यह भी माना जा सकता है कि संविधान निर्माण की प्रक्रिया ने स्वयं भारतीय समाज को लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ समझने का अवसर दिया। जनता ने बहसें पढ़ीं, तर्क सुने, और पहली बार यह अनुभव किया कि सत्ता जनता के विचारों से भी बन सकती है–सिर्फ शासन की शक्ति से नहीं। संभवतः इस पूरे अनुभव ने नागरिक चेतना को गहरे स्तर पर प्रभावित किया होगा।

परिकल्पना–8 :

संभव है कि संविधान निर्माताओं ने यह अनुभव किया हो कि भारत का भविष्य केवल बहुसंख्या पर आधारित नहीं हो सकता; बल्कि सबसे कमजोर, सबसे वंचित और सबसे मौन वर्ग की गरिमा में ही राष्ट्र की असली मजबूती छिपी है। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने ऐसे प्रावधान बनाए होंगे जो सामाजिक न्याय को

केवल एक आदर्श नहीं, बल्कि राष्ट्र के मूल ढांचे का अनिवार्य तत्व बनाते हैं।

परिकल्पना–9 :

हो सकता है कि संविधान निर्माण के दौरान यह सहज समझ बनी हो कि भारत जैसे विविध, विस्तृत और भावनात्मक समाज में कानून की कठोर भाषा तभी कारगर हो सकती है, जब उसके पीछे नैतिकता, संवेदना और सामाजिक समरसता की भावना भी उपस्थित हो। इसीलिए भारतीय संविधान विधिक दस्तावेज होते हुए भी एक नैतिक घोषणापत्र जैसा प्रतीत होता है।

अनुसंधान विधि :

इस शोध में निम्नलिखित अनुसंधान विधियों का प्रयोग किया गया –

(1) ऐतिहासिक–विश्लेषणात्मक विधि :

जिसके अंतर्गत प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक स्रोतों का आलोचनात्मक परीक्षण किया गया।

(2) प्राथमिक स्रोतों का उपयोग :

संविधान सभा की कार्यवाही।

ब्रिटिश शासन के अधिनियम (1861 एवं 1935)।

क्रिप्स मिशन, वेवेल योजना, कैबिनेट मिशन रिपोर्ट।

गांधी, नेहरू, अम्बेडकर, पटेल के भाषण।

समकालीन अखबार (The Hindu, Bombay Chronicle आदि)

(3) द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन :

मान्यता–प्राप्त इतिहासकारों, राजनीतिक वैज्ञानिकों और संवैधानिक विशेषज्ञों की पुस्तकों, शोधपत्रों और रिपोर्टों का विश्लेषण किया गया।

(4) स्रोत त्रिकोणीयकरण :

एक घटना की पुष्टि तीन विभिन्न स्रोतों से की गई :–

(क) आधिकारिक दस्तावेज।

(ख) इतिहासकारों का विश्लेषण।

(ग) समकालीन समाचार स्रोत।

(5) मानवीय विश्लेषण :

औपनिवेशिक दमन, जातीय संरचना, किसान–श्रमिक वर्ग, महिला आंदोलन, दलित चिंतन आदि पर आधारित सामाजिक–ऐतिहासिक आयामों को शामिल किया गया।

विश्लेषण :

भारतीय संविधान का विश्लेषण तीन परस्पर–संबद्ध आधारों पर किया जा सकता है –

(1) औपनिवेशिक कानूनी–संस्थागत विरासत,

(2) राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा प्रतिपादित वैचारिक लक्ष्य, तथा

(3) विभाजन–कालीन परिस्थितियाँ और रियासतों से संबंधित व्यवहारिक चुनौतियाँ।

औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत बने अधिनियमों ने भारतीय प्रशासन एवं संवैधानिक ढाँचे की प्रारम्भिक

संरचनाएँ उपलब्ध कराईं—1909 के अधिनियम ने सीमित रूप में प्रतिनिधित्व की शुरुआत की (भारतीय परिषद अधिनियम, 1909); 1919 के अधिनियम ने प्रान्तीय स्तर पर 'द्वैध—शासन' की व्यवस्था स्थापित की (भारत शासन अधिनियम, 1919) और 1935 के अधिनियम ने संघीय अवधारणा तथा संस्थागत संरचनाओं का प्रारम्भिक खाका प्रदान किया (भारत शासन अधिनियम, 1935)। इन अधिनियमों का प्रभाव संविधान—निर्माताओं के तकनीकी निर्णयों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है (ऑस्टिन, 1966, पृ. 50—66)।

राष्ट्रीय आंदोलन ने संविधान के मूल्यों—स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय—को वैचारिक आधार प्रदान किया। नेहरू रिपोर्ट (1928) और कराची प्रस्ताव (1931) ने मौलिक अधिकारों और संघात्मक संरचना पर आधारित विमर्श को दिशा दी। सामाजिक न्याय की अवधारणा को बाद में राज्य के नीति—निर्देशक तत्वों में शामिल किया गया (ऑस्टिन, 1966, पृ. 113)।

विभाजन—काल (1947) की असाधारण परिस्थितियाँ, मुस्लिम लीग की असंगत राजनीतिक स्थिति, और रियासतों के विलय से उत्पन्न जटिल चुनौतियों ने संविधान सभा को तत्कालीन राजनीतिक—प्रशासनिक आवश्यकताओं तथा दीर्घकालिक सिद्धांतों के बीच संतुलन स्थापित करने का अनुभव दिया (संविधान सभा वाद—विवाद; बी. शिवा राव, 1968, पृ. 130—132)।

ड्राफ्टिंग कमेटी द्वारा तैयार मसौदा, मौलिक अधिकारों का समावेश, नीति—निर्देशक तत्वों का निर्धारण, तथा संघ—राज्य संबंधों में संतुलन स्थापित करने के प्रयास यह दर्शाते हैं कि भारतीय संविधान केवल शासन—व्यवस्था का ढाँचा भर नहीं है, बल्कि वह एक समग्र सामाजिक—राजनीतिक रूपरेखा भी है—जो विविध समुदायों की सुरक्षा, सामाजिक सुधार और लोकतांत्रिक शासन की स्थायी मजबूती को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से निर्मित किया गया (बसु, 2013, पृ. 21; ऑस्टिन, 2003)।

निष्कर्ष :

भारत का संविधान किसी एक समय या एक विचारधारा का परिणाम नहीं है। यह भारतीय इतिहास की दीर्घ यात्रा का सार है, जिसमें –

- प्राचीन लोकतांत्रिक परंपराएँ।
- मध्यकालीन प्रशासनिक अनुभव।
- औपनिवेशिक शासन का विवेचन।
- आधुनिक समाजशास्त्रीय चिंतन—सभी सम्मिलित हैं।

संविधान के निर्माता एक ऐसा भारत बनाना चाहते थे जो –

- सामाजिक न्याय पर आधारित हो,
- बहुलता का आदर करता हो,
- नागरिक स्वतंत्रताओं की रक्षा करता हो,
- और लोकतांत्रिक मूल्यों को सर्वोच्च मानता हो।

इस प्रकार, संविधान केवल विधिक दस्तावेज नहीं, बल्कि आधुनिक भारत का दार्शनिक आधार है। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि यह स्पष्ट करती है कि भारतीय लोकतंत्र संघर्ष, संवाद और सहमति की प्रक्रिया से निर्मित हुआ है।

संदर्भ सूची :

1. भारतीय संविधान सभा (Constituent Assembly of India). (1946–1949). संविधान सभा वाद–विवाद; आधिकारिक प्रतिवेदन (खंड I–XII). लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली। (पुनर्मुद्रणः 2014)।
   – ऑनलाइन (कुछ खंड उपलब्ध) : NBU IR Repository.
2. ब्रिटिश संसद. (1935). भारत शासन अधिनियम, 1935 (Government of India Act, 1935). एच.एम.एस. ओ., लंदन।
   – आधिकारिक पाठ एवं अनुसूचियाँ : legislation.gov.uk।
3. ब्रिटिश संसद. (1909). भारतीय परिषद अधिनियम, 1909 (Indian Councils Act, 1909 / Morley–Minto Reforms).
   – ऐतिहासिक प्रतियां : ब्रिटिश संसदीय अभिलेखागार / विधि–संग्रह।
4. ब्रिटिश संसद. (1919). भारत शासन अधिनियम, 1919 (Government of India Act, 1919 / Montagu–Chelmsford Reforms).
   – आधिकारिक अभिलेख : विभिन्न ऐतिहासिक अभिलेखागार / विधि–संग्रह।
5. ऑस्टिन, ग्रैनविल (1966). भारतीय संविधान : एक राष्ट्र की आधारशिला (The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation). क्लैरेंडन प्रेस / ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
   – उल्लेखित पृष्ठः 75, 113।
6. ऑस्टिन, ग्रैनविल (2003). वर्किंग ए डेमोक्रेटिक कॉन्स्टिट्यूशनः द इंडियन एक्सपीरियंस (Working a Democratic Constitution: The Indian Experience). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
7. बसु, डी. डी. (2013). भारतीय संविधान का परिचय (21वाँ संस्करण). लेक्सिसनेक्सिस बटरवर्थ्स इंडिया, नई दिल्ली।
   – (उद्धृत पृष्ठः 21–प्रस्तावना–संबंधी चर्चा)।
8. बी. शिवा राव (1968). फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन (खंड I–V). भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली।
   – उल्लेखित पृष्ठः 130–132 (संविधान–निर्माण प्रक्रिया एवं प्रस्तावना पर चर्चा)।
9. कश्यप, सुभाष सी. (2012). हमारा संविधान / Our Constitution. नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
10. चंद्रा, बिपिन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य. (2016). भारतीय स्वतंत्रता संग्राम (India's Struggle for Independence). पेंग्विन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली।
11. नूरानी, ए. जी. (2010). भारतीय संविधान संबंधी प्रश्नः राष्ट्रपति, संसद और राज्य (Constitutional Questions in India: The President, Parliament and the States). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली।

ई–मेल : bhartismb@mail.com

मोबाइल नंबर : 9968032124

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 106–107

डॉ० रामविलास शर्मा : भारतीय संस्कृति, इतिहासबोध और संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि

अमेय विक्रम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
रॉची विश्वविद्यालय, राँची।

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी के उन गिने–चुने आलोचकों में से हैं जिन्होंने किसी भी अवस्था में उपनिवेशवाद को सकारात्मक रूप में नहीं देखा। उपनिवेशवाद को उन्होंने हमेशा शोषण और दासत्व का पर्याय ही माना। अंग्रेजों की छोटी से छोटी शोषण प्रक्रिया पर उनकी पैनी नजर थी। उनके विचार भारत और भारतीयता के समर्थक थे। एक मार्क्सवादी आलोचक होते हुए भी उन्होंने सकारात्मक राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, इतिहास और जातीय अस्मिता के प्रश्नों को एक नयी वैचारिक दिशा दी। उनका चिंतन केवल साहित्य समीक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि भारतीय राष्ट्र–राज्य के निर्माण और भारतीय संविधान की पृष्ठभूमि को समझने के लिए भी एक आवश्यक वैचारिक आधार प्रदान करता है।

प्रगतिशील आलोचना और संस्कृति की गतिशील अवधारणा :–

शर्मा जी मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित थे और उन्होंने साहित्य तथा संस्कृति को आर्थिक और सामाजिक विकास की उपज माना। वह संस्कृति को एक जड़ इकाई के बजाए, निरंतर संघर्ष और परिवर्तन से गुजरने वाली एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में देखते थे। शर्मा जी कहते हैं : 'भारतीय संस्कृति को स्थिर मानकर नहीं चला जा सकता ..... भारतीय इतिहास में निरंतर संघर्ष चलते रहे हैं, और इन्हीं संघर्षों के कारण भारतीय संस्कृति का विकास हुआ है।'[1]

उनका जोर इस बात पर था कि भारतीय संस्कृति की व्याख्या औपनिवेशिक चश्मे से मुक्त होकर किया जाए। वह उन इतिहासकारों और आलोचकों का खंडन करते थे जिन्होंने भारतीय इतिहास को सिर्फ ह्रास और विघटन की कहानी के रूप में प्रस्तुत किया।

जातीयता, राष्ट्र और संविधान की नींव :–

शर्मा जी का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान 'जातीयता' की अवधारणा को भारतीय संदर्भ में स्थापित करना था। उन्होंने 'हिन्दी जाति' की अवधारणा दी और तर्क दिया कि भारत विभिन्न जातीयताओं का एक समूह है, और इन जातीयताओं की सक्रिय भागीदारी के बिना राष्ट्रीय एकता केवल एक अमूर्त विचार रहेगी। 'जैसे राष्ट्रीयता

के बिना अंतर्राष्ट्रीयता का अस्तित्व संभव नहीं है, वैसे ही जातीयता के बिना राष्ट्रीयता का अस्तित्व संभव नहीं है। फिर राष्ट्र चाहे एकजातीय हो, चाहे बहुजातीय।'[2]

संविधान निर्माण के समय भारत एक नवगठित राष्ट्र था, जिसके सामने विभिन्न भाषाओं, धर्मों और क्षेत्रों को एक सूत्र में बाँधने की चुनौती थी। संविधान सभा ने संघीय व्यवस्था अपनाकर और भाषाई अल्पसंख्यकों को अधिकार प्रदान करके इस चुनौती का सामना किया। शर्मा जी का चिंतन संविधान के उस मूलभूत विचार को वैचारिक समर्थन देता है, जो विविधता को स्वीकार करते हुए भी एकता पर बल देता है।

प्राचीन भारत का नया मूल्यांकन और संविधान दर्शन :-

डॉ० रामविलास शर्मा ने भारतीय इतिहास के प्राचीन स्रोतों का गहन अध्ययन किया है और स्थापित करने का प्रयास किया कि भारत का अतीत केवल अंधकारमय या निष्क्रिय नहीं था, बल्कि इसमें जनवादी और भौतिकवादी विचारों की एक सशक्त परंपरा मौजूद थी।

उनकी पुस्तक 'भारत और यूरोपीय इतिहास की समस्या' में वे आर्यों को स्वदेशी मानते हुए उस उपनिवेशवादी सिद्धांत का खंडन करते हैं जो भारतीयों को विदेशी बताता था। यह चिंतन नवगठित राष्ट्र की आत्मनिर्भरता और गौरवशाली अतीत की चेतना को मजबूत करता है, जो संविधान निर्माताओं के लिए अत्यंत आवश्यक था।

भारतीय संविधान दर्शन, विशेषकर सामाजिक और आर्थिक न्याय और धर्मनिरपेक्षता, भारतीय संस्कृति के उस तत्व से मेल खाता है जिसमें विभिन्न विचारधाराओं के सह–अस्तित्व को स्थान दिया गया है। न्याय का जो आदर्श संविधान की उद्देशिका में दिया गया है, वह शर्मा जी के प्रगतिशील सांस्कृतिक दृष्टिकोण का ही प्रतिफलन है, जो शोषक वर्ग के विरुद्ध जन–सामान्य के हितों को प्राथमिकता देता है।

जिस प्रकार भारतीय संविधान ने हमारी जातीय जातीय समस्याओं को सुलझाया है वैसे ही यह काम अब हमारे साहित्य ने भी किया है। इस संदर्भ में शर्मा जी कहते हैं – 'हमारे साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है जातीय जीवन की समस्याओं को सुलझाना। जब तक हम जातीय जीवन की समस्याओं को नहीं सुलझाते, तब तक विश्व–जीवन की समस्याओं को भी नहीं सुलझा सकते।'[3]

निष्कर्ष : संस्कृति से संविधान तक की यात्रा :-

डॉ० रामविलास शर्मा का शोधात्मक कार्य भारतीय संस्कृति को एक जीवित, संघर्षरत और विकसित होती हुई शक्ति के रूप में स्थापित करता है। उनका इतिहास बोध, जातीय चेतना और प्रगतिशील दृष्टिकोण उस वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है, जिसमें भारतीय संविधान जैसी बहुलतावादी, लोकतांत्रिक और कल्याणकारी दस्तावेज का निर्माण संभव हो सका।

शर्मा जी का चिंतन हमें सिखाता है कि संविधान केवल कानूनी नियमों का संग्रह नहीं है, बल्कि वह सदियों से विकसित हो रही भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ मानवीय और जनवादी मूल्यों का आधुनिक दस्तावेज है।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा रामविलास : संस्कृति और साहित्य।
2. शर्मा रामविलास : भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद।
3. शर्मा रामविलास : भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 108-113

भारतीय संविधान और मूल अधिकार : वर्तमान में प्रासंगिकता

दिनेश सिंह
विद्यार्थी (M.Sc, Chemistry)
SPC GOVERNMENT COLLEGE. BHIM

सारांश :

भारतीय संविधान का भाग–III, जिसमें मूल अधिकारों का प्रावधान है, लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था की आधारशिला माना जाता है। स्वतंत्रता–आंदोलन की पृष्ठभूमि और औपनिवेशिक शासन के दमनकारी अनुभवों ने इस विचार को मजबूत किया कि स्वतंत्र भारत में नागरिक स्वतंत्रता, समानता, गरिमा और न्याय की संवैधानिक गारंटी अनिवार्य होगी। इसी उद्देश्य से संविधान सभा ने समानता, स्वतंत्रता, शोषण–निरोध, धार्मिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक अधिकारों और संवैधानिक उपचारों को न्यायिक रूप से लागू योग्य बनाया। समय के साथ इन अधिकारों का अर्थ और दायरा न्यायपालिका द्वारा महत्वपूर्ण निर्णयों के माध्यम से व्यापक हुआ। विशेष रूप से Article 21 की व्याख्या ने जीवन के अधिकार को एक समग्र मानवीय अधिकार में बदल दिया जिसमें गरिमा, निजता, पर्यावरण, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार समाहित है।

डिजिटल युग में K.S. Puttaswamy (2017) के ऐतिहासिक निर्णय ने निजता को स्वतंत्र मौलिक अधिकार घोषित कर तकनीकी शासन के लिए नए संवैधानिक मानदण्ड स्थापित किए। Navtej Singh Johar और Shayara Bano जैसे मामलों ने सामाजिक न्याय और अल्पसंख्यक अधिकारों की रक्षा को नई दिशा दी।

यद्यपि सकारात्मक प्रगति हुई, परन्तु कई गंभीर चुनौतियाँ बनी हुई हैं – जैसे डिजिटल निगरानी, Pegasus जैसे स्पाइवेयर का दुरुपयोग, UAPA जैसी कठोर विधियों द्वारा असहमति पर प्रतिबंध, प्रेस पर अप्रत्यक्ष दबाव, तथा सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के कारण अल्पसंख्यकों की संवैधानिक सुरक्षा पर प्रश्नचिन्ह। संस्थागत सीमाएँ और निगरानी–तंत्र की कमजोरी भी अधिकारों की प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं।

इन चुनौतियों से निपटने हेतु डेटा–सुरक्षा कानून, निगरानी–प्रणाली की न्यायिक समीक्षा, कठोर कानूनों का मानवीकरण, अभिव्यक्ति–स्वतंत्रता की सुरक्षा और स्वतंत्र संस्थाओं का सुदृढीकरण आवश्यक है। इस प्रकार, मूल अधिकार आज भी भारतीय लोकतंत्र के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं और उनकी रक्षा के लिए सतत सुधार, संवैधानिक सतर्कता तथा संस्थागत प्रतिबद्धता की आवश्यकता बनी हुई है।

प्रस्तावना :

भारतीय संविधान विश्व के सबसे विस्तृत और प्रगतिशील संविधानों में से एक माना जाता है। इसकी

संरचना न केवल एक राजनीतिक दस्तावेज की तरह कार्य करती है, बल्कि यह भारत की बहुलतापूर्ण, विविधतापूर्ण और लोकतांत्रिक आत्मा का प्रतिबिंब भी है। संविधान का भागकृप्प्, जिसे मूल अधिकारों का प्रभाग कहा जाता है, भारतीय लोकतंत्र का हृदय है। यह नागरिकों को उन अधिकारों की गारंटी देता है जो किसी भी आधुनिक, संवैधानिक और उदार लोकतंत्र की मूलभूत आवश्यकताएँ मानी जाती हैं – समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार तथा संवैधानिक उपचारों का अधिकार। ये अधिकार न केवल नागरिकों को राज्य के संभावित दमन से बचाते हैं, बल्कि सामाजिक–नैतिक व्यवस्था और विधिक न्याय–व्यवस्था को संतुलित रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मूल अधिकारों की मूल–परिकल्पना स्वतंत्रता–आंदोलन के दौरान निर्मित हुई, जब नागरिक स्वतंत्रता और मानव गरिमा के संरक्षण को स्वतंत्र भारत की आधारशिला माना गया। डॉ. भीमराव आंबेडकर, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और अन्य निर्माताओं की दृष्टि में यह स्पष्ट था कि राजनीतिक स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकती है जब आम नागरिक को धर्म, जाति, वर्ग, भाषा और लिंग के भेदभाव से परे सम्मान, समानता और आत्म–अभिव्यक्ति का अधिकार प्राप्त हो। यही कारण है कि संविधान ने मूल अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्रदान किया, और अनुच्छेद 32 के माध्यम से उन्हें "हक की आत्मा" और "संविधान की हृदय–धमनी" (Heart and Soul) कहा गया।

किन्तु 21वीं सदी के बदलते वैश्विक–सामाजिक परिदृश्य में यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या ये मूल अधिकार वर्तमान परिस्थितियों में भी उतने ही प्रभावी और प्रासंगिक हैं जितने वे संविधान–निर्माताओं के समय थे? प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास, डिजिटल निगरानी, डेटा–संग्रह और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे नए परिदृश्यों ने गोपनीयता, अभिव्यक्ति, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के स्वरूप को पुनर्परिभाषित कर दिया है। राष्ट्रीय सुरक्षा, आतंकवाद–विरोधी कानूनों (जैसे UAPA), भीड़–हिंसा, सामाजिक ध्रुवीकरण और ऑनलाइन दुष्प्रचार जैसी चुनौतियाँ मूल अधिकारों की रक्षा को और अधिक जटिल बनाती हैं। इसी प्रकार पर्यावरणीय अधिकार, लैंगिक पहचान, यौनिक अधिकार, अंतर–धार्मिक विवाह, सूचना का अधिकार और डिजिटल अभिव्यक्ति जैसी समकालीन बहसें भी मूल अधिकारों की परिधि को निरंतर विस्तारित कर रही हैं।

इसके बावजूद, न्यायपालिका – विशेषकर सर्वोच्च न्यायालय ने समय–समय पर मौलिक अधिकारों की जीवंतता को सुनिश्चित किया है। के. एस. पुट्टस्वामी निर्णय के माध्यम से निजता को एक स्वायत्त मूल अधिकार के रूप में मान्यता देना, नवतेज सिंह जोहर मामले में समानता और गरिमा के आधार पर LGBTQ+ समुदाय के अधिकारों को स्वीकार करना, और शायरा बानो में महिला सम्मान व धर्म–स्वतंत्रता की नई व्याख्या। ये सभी उदाहरण दर्शाते हैं कि मूल अधिकार स्थिर नहीं, बल्कि जीवंत और विकसित होने वाली अवधारणा हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में यह शोध–प्रबंध यह विश्लेषण करने का प्रयास करता है कि भारतीय संविधान के मूल अधिकार आज के सामाजिक, राजनीतिक, तकनीकी और वैश्विक संदर्भ में किस प्रकार प्रासंगिक बने हुए हैं। किन चुनौतियों का सामना कर रहे हैं और इनके संरक्षण हेतु कौन से सुधारात्मक उपाय आवश्यक हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य मूल अधिकारों की वर्तमान भूमिका, उनकी सीमाएँ तथा उनके भविष्य–नियोजन को समझना है, ताकि लोकतंत्र की सार्थकता और नागरिकों की गरिमा सदैव सुरक्षित रह सके।

मूल अधिकारों का ऐतिहासिक और वैधानिक आधार :

भारतीय संविधान के भाग–III में निहित मूल अधिकार भारतीय लोकतंत्र की दार्शनिक, ऐतिहासिक और संवैधानिक परंपरा का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। मूल अधिकारों का विचार अचानक निर्मित नहीं हुआ, बल्कि यह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की दीर्घ यात्रा, औपनिवेशिक शासन की दमनपूर्ण नीतियों तथा आधुनिक संवैधानिक सोच के क्रमिक विकास से उपजा। 19वीं–20वीं शताब्दी के दौरान भारतीय नेताओं और चिंतकों ने अनुभव किया कि राजनीतिक स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकती है जब नागरिकों को बुनियादी व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और गरिमा का संरक्षण विधिक रूप से सुनिश्चित हो। इसी क्रम में 1928 के नेहरू रिपोर्ट, 1931 के कराची प्रस्ताव, तथा कांग्रेस के अनेक संकल्पों ने "फंडामेंटल राइट्स" को स्वतंत्र भारत की बुनियादी आवश्यकताओं के रूप में परिभाषित किया। कराची प्रस्ताव ने पहली बार सामाजिक–आर्थिक अधिकारों को भी मौलिक अधिकारों के समान महत्व देने की घोषणा की थी।

संविधान सभा ने 1946–1949 के बीच गहन विचार–विमर्श के बाद मूल अधिकारों को ऐसे प्रावधानों के रूप में संरचित किया जो व्यक्ति को राज्य के दुरुपयोग से बचाएँ और लोकतांत्रिक व्यवस्था को मूलाधार प्रदान करें। डॉ. भीमराव आंबेडकर, के.एम. मुंशी, एच.वी. कामत, तथा अन्य सदस्यों ने यह स्पष्ट किया कि भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में केवल राजनीतिक अधिकार पर्याप्त नहीं हो सकते। नागरिकों की गरिमा, समानता और विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए विधिक संरक्षण आवश्यक है। इसी चिंतन का परिणाम संविधान का भाग–III बना जिसमें Articles 12 से 35 तक ऐसे अधिकार दिये गये जिन्हें "Justiciable" अर्थात् अदालत द्वारा लागू योग्य बनाया गया।

भाग–III का ढाँचा मुख्यतः पाँच श्रेणियों में विभाजित किया गया –

1. **समानता का अधिकार (Articles 14–18) :** जिसमें कानूनी समानता, अवसर की समानता, सार्वजनिक पदों में गैर भेदभाव, तथा अस्पृश्यता का उन्मूलन शामिल है।
2. **स्वतंत्रता का अधिकार (Article 19) :** जिसमें अभिव्यक्ति, सभा, संघ, गमन, व्यवसाय और निवास की स्वतंत्रता को विधिक संरक्षण दिया गया।
3. **जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता (Article 21) :** जो सबसे व्यापक अधिकार है और समय के साथ न्यायपालिका की व्याख्याओं द्वारा जीवन के हर महत्वपूर्ण पहलू गरिमा, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, निजता आदि को समाहित करने लगा।
4. **धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार (Articles 25–28) :** जो भारत की बहुलतावादी संस्कृति को संवैधानिक सुरक्षा प्रदान करते हैं।
5. **संस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (Articles 29–30) :** जिनका उद्देश्य अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति की रक्षा करना है।

मूल अधिकारों का वैधानिक आधार केवल संविधान तक सीमित नहीं है। उनकी वास्तविक शक्ति और प्रभाव न्यायपालिका द्वारा की गई व्याख्याओं से निर्मित हुए हैं। गोलकनाथ, केशवानंद भारती, मेनका गांधी, पुट्टस्वामी और नवतेज सिंह जोहर जैसे ऐतिहासिक निर्णयों ने मूल अधिकारों को निरंतर विकसित किया है। न्यायपालिका ने यह सिद्ध किया कि संविधान एक जीवंत दस्तावेज है, और मूल अधिकार स्थिर नहीं बल्कि

"Dynamic" हैं, जो समय, समाज और नैतिक परिस्थितियों के अनुसार अपने अर्थ में विस्तार ग्रहण करते हैं।

न्यायपालिका के माध्यम से मूल अधिकारों का विकास :

भारतीय न्यायपालिका ने मूल अधिकारों को एक जीवंत और विकसित होने वाली अवधारणा के रूप में रूपांतरित किया है। सबसे महत्वपूर्ण विस्तार Article 21 के अंतर्गत हुआ, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने "जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता" का अर्थ केवल शारीरिक अस्तित्व से आगे बढ़ाकर गरिमामय जीवन, स्वच्छ पर्यावरण, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा व्यक्तिगत विकल्पों तक विस्तृत किया। इससे मूल अधिकारों में व्यापक मानवीय आयाम जुड़ गए।

निजता का अधिकार, जिसे लंबे समय तक स्वतंत्र मूल अधिकार नहीं माना जाता था, K.S. Puttaswamy (2017) के नौ–जज निर्णय में एक स्वायत्त और संरक्षित अधिकार घोषित किया गया। इसने डिजिटल–युग में सरकारी डेटा–संग्रह, निगरानी और बायोमेट्रिक पहचान जैसे प्रश्नों पर संवैधानिक संतुलन स्थापित किया। इसके बाद Aadhaar से जुड़े मामलों में अदालत ने सीमित उपयोग को वैध माना, किन्तु असीमित और अनिवार्य उपयोग पर रोकें लगाकर निजता–सुरक्षा को प्राथमिकता दी।

Navtej Singh Johar (2018) ने समलैंगिक सम्बन्धों को अपराध–मुक्त कर समानता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और गरिमा के आयामों को सुदृढ़ किया। वहीं Shayara Bano (2017) में तिहरे तलाक को असंवैधानिक ठहराकर महिलाओं की समानता और सम्मान के अधिकार को नया बल दिया। ये सभी निर्णय दर्शाते हैं कि न्यायपालिका ने समय के साथ मौलिक अधिकारों को आधुनिक, समावेशी और मानवीय दृष्टि से पुनर्परिभाषित किया है।

वर्तमान चुनौतियाँ और खतरे : मूल अधिकारों का व्यावहारिक परीक्षण :

आज के डिजिटल और राजनीतिक रूप से जटिल परिवेश में भारतीय मूल अधिकार कई नई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। सबसे प्रमुख समस्या डिजिटल–निगरानी और निजता का संकट है, जहाँ Aadhaar, मोबाइल डेटा और Pegasus जैसे स्पाइवेयर मामलों ने नागरिकों की व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा तथा सरकारी पारदर्शिता पर गंभीर प्रश्न उठाए हैं। निजता, जो अब एक स्वीकृत मौलिक अधिकार है, तकनीकी हस्तक्षेप के कारण निरंतर खतरे में है।

कोविड–19 महामारी के दौरान लॉकडाउन, ट्रेसिंग ऐप्स और आपात नीतियों ने यह बहस पुनर्जीवित की कि सार्वजनिक स्वास्थ्य और व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाए। कई मामलों में प्रतिबंधों के लागू होने की प्रक्रिया ने न्यायिक समीक्षा, पारदर्शिता और न्यूनतम हस्तक्षेप के सिद्धांतों को चुनौती दी।

राष्ट्रीय सुरक्षा की आड़ में UAPA जैसे कड़े कानूनों का उपयोग बढ़ने से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जमानत के अधिकार और असहमति की वैधता पर प्रभाव पड़ा है। मानवाधिकार संगठनों ने सरकार पर इन कानूनों के दुरुपयोग के आरोप भी लगाए हैं।

प्रेस–स्वतंत्रता, मानहानि और निजता के बीच टकराव ने लोकतांत्रिक विमर्श को सीमित किया है, जबकि सामाजिक ध्रुवीकरण और सांप्रदायिक तनावों ने अल्पसंख्यकों की सुरक्षा व प्रशासनिक निष्पक्षता पर प्रश्न खड़े किए हैं।

इन सभी चुनौतियों से स्पष्ट है कि मूल अधिकारों की संस्थागत सुरक्षा आज पहले से कहीं अधिक

महत्वपूर्ण हो गई है।

मौलिक अधिकारों की वर्तमान प्रासंगिकता :

आज के सामाजिक–राजनीतिक और तकनीकी परिवेश में मौलिक अधिकार अपनी पूर्ण प्रासंगिकता बनाए हुए हैं, विशेषकर न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका के कारण। सर्वोच्च न्यायालय ने Article 21 को व्यापक और मानवीय स्वरूप देते हुए जीवन के अधिकार में गरिमा, पर्यावरण, स्वास्थ्य और निजी स्वतन्त्रता जैसे तत्वों को सम्मिलित किया है। समलैंगिक समुदाय के अधिकारों को Navtej Johar में मान्यता तथा महिलाओं की गरिमा की रक्षा हेतु Shayara Bano में Triple Talaq को असंवैधानिक ठहराना यह दर्शाता है कि संवैधानिक व्यवस्था सामाजिक न्याय की दिशा में लगातार विकसित हो रही है। डिजिटल निजता पर Puttaswamy निर्णय ने आधुनिक युग में नागरिक अधिकारों को नया संरक्षण प्रदान किया।

इसके विपरीत, कई कमजोरियाँ आज भी मौलिक अधिकारों की प्रभावशीलता को चुनौती देती हैं। UAPA जैसे कठोर कानूनों के उपयोग ने अभिव्यक्ति और असहमति पर दबाव बढ़ाया है, जिससे लोकतांत्रिक विमर्श प्रभावित हुआ। Pegasus जैसे डिजिटल स्पाइवेयर मामलों ने निजता के अधिकार को असुरक्षित कर तकनीकी दुरुपयोग की गंभीरता उजागर की। मीडिया–नैरेटिव, सोशल–मीडिया ट्रोलिंग और भीड़–राजनीति के कारण अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अप्रत्यक्ष दमन भी बढ़ा है। साथ ही, मानवाधिकार आयोगों, नियामक संस्थानों और न्यायिक तंत्र की संसाधन–सीमाएँ तथा निष्पक्षता पर प्रश्न यह दर्शाते हैं कि संस्थागत सुदृढ़ीकरण अभी भी आवश्यक है। इन सकारात्मक प्रयासों और चुनौतियों के बीच मौलिक अधिकारों की रक्षा निरंतर सुधार और सतर्कता पर निर्भर करती है।

नीतिगत और संवैधानिक सुझाव :

वर्तमान परिदृश्य में मौलिक अधिकारों की प्रभावी सुरक्षा हेतु व्यापक नीतिगत और संवैधानिक सुधार आवश्यक हैं। सबसे पहले, डिजिटल निजता और डेटा–सुरक्षा की चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए एक सशक्त एवं स्वतंत्र राष्ट्रीय डेटा संरक्षण कानून आवश्यक है, जिसमें डेटा–संग्रह, उपयोग, संग्रह–काल और तृतीय–पक्ष साझाकरण के लिए स्पष्ट एवं कठोर मानदण्ड निर्धारित हों। सरकारी निगरानी के लिए न्यायिक–अनुमति और पारदर्शिता अनिवार्य की जानी चाहिए।

दूसरे, Pegasus जैसी घटनाओं के मद्देनजर निगरानी–प्रौद्योगिकियों के उपयोग पर स्वतंत्र न्यायिक निगरानी तंत्र या संसदीय जांच–समिति का गठन किया जाए, ताकि दुरुपयोग रोका जा सके और जवाबदेही सुनिश्चित हो।

तीसरे, UAPA तथा अन्य विशेष सुरक्षा कानूनों की व्यापक समीक्षा आवश्यक है। हिरासत, जमानत और असहमति से संबंधित प्रावधानों को मानवाधिकार–अनुरूप बनाते हुए कानूनी सुरक्षा–उपायों को मजबूत किया जाना चाहिए।

चौथे, अभिव्यक्ति–स्वतंत्रता की रक्षा हेतु सोशल मीडिया और प्रेस के लिए पारदर्शी, अपील–आधारित और संतुलित नियामक ढाँचा विकसित किया जाए, जिससे अति–सेंसरशिप और राजनीतिक दबाव से बचा जा सके।

अन्ततः, NHRC, RTI आयोग, डेटा–सुरक्षा संस्थान तथा न्यायालयों की क्षमता–वृद्धि अत्यंत आवश्यक है। अधिक संसाधन, स्वतंत्रता, और संवैधानिक मामलों के लिए विशेष बेंच स्थापित कर संस्थागत दक्षता बढ़ाई

जा सकती है। ये सुधार भारतीय लोकतंत्र में मौलिक अधिकारों की सुनिश्चितता को और मजबूत करेंगे।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान के मूल अधिकार आज भी न केवल सैद्धान्तिक रूप से बल्कि व्यवहारिक स्तर पर अत्यन्त प्रासंगिक हैं। न्यायपालिका ने समय–समय पर उन्हें विस्तृत रूप देकर समाज की बदलती आवश्यकताओं से मेल खिलवाया है परन्तु समकालीन चुनौतियाँ, विशेषतः तकनीकी निगरानी, आतंक–विरोधी कानूनों का दुरुपयोग और सामाजिक–राजनीतिक दबाव, मौलिक अधिकारों की प्रभावशीलता पर वास्तविक संकट खड़े करते हैं। समाधान सिर्फ न्यायिक हस्तक्षेप नहीं बल्कि विवेकपूर्ण विधायी सुधार, स्वतंत्र निगरानी तंत्र, सार्वजनिक–विवेक और संस्थागत क्षमता–निर्माण से सम्भव है। यदि संविधान की मूल संहिताएँ और उनके रक्षक संस्थान सक्रिय, पारदर्शी तथा लोकतान्त्रिक सिद्धांतों के प्रति वफादार रहें, तो मौलिक अधिकार आने वाली पीढ़ियों के लिए भी उतने ही प्रासंगिक और सुरक्षित रहेंगे जितने उन्होंने बनते समय थे।

संदर्भ सूची :

1. Ambedkar, B. R. The Constitution of India : Its Philosophy and Working. भारत सरकार, 1950.
2. Amnesty International. Pegasus Project : वैश्विक स्पाइवेयर दुरुपयोग की जाँच रिपोर्ट. Amnesty International, 2021.
3. Austin, Granville. The Indian Constitution : Cornerstone of a Nation. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966.
4. Austin, Granville. Working a Democratic Constitution : The Indian Experience. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999.
5. Basu, D. D. Introduction to the Constitution of India. 24वाँ संस्करण, लेक्सिसनेक्सिस, 2019.
6. Constituent Assembly of India. संविधान सभा की कार्यवाही (Debates), खंड 1–12. भारत सरकार, 1946–49.
7. Government of India. The Constitution of India. विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, 1950.
8. Human Rights Watch. भारत : UAPA एवं आतंक–विरोधी कानूनों के दुरुपयोग पर रिपोर्ट. Human Rights Watch, 2022.
9. Jain, M. P. Indian Constitutional Law. 8वाँ संस्करण, लेक्सिसनेक्सिस, 2018.
10. K.S. Puttaswamy (Retd.) बनाम Union of India. सर्वोच्च न्यायालय, 2017. Supreme Court Reports.
11. Keshavananda Bharati बनाम State of Kerala. सर्वोच्च न्यायालय, 1973. Supreme Court Reports.
12. Menaka Gandhi बनाम Union of India. सर्वोच्च न्यायालय, 1978. Supreme Court Reports.
13. Navtej Singh Johar बनाम Union of India. सर्वोच्च न्यायालय, 2018. Supreme Court Reports.
14. Shayara Bano बनाम Union of India. सर्वोच्च न्यायालय, 2017. Supreme Court Reports.
15. Supreme Court Observer. "आधार निर्णय का सार." Supreme Court Observer, 2018.
16. UIDAI (विशिष्ट पहचान प्राधिकरण). आधार ढाँचा एवं डेटा संरक्षण दिशानिर्देश. UIDAI, भारत सरकार, 2020.

Mob – 8005633294, ईमेल premsingh1810@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 114–117

भारतीय संविधान में दिव्यांग जन के मौलिक अधिकार

शशिकांत चिन्नेश्वर सैबे, शोधार्थी
डॉ. रवींद्र लिंबाजी भोरे, शोध निर्देशक

शोध सारांश :

किसी भी देश को सुचारू रूप से चलाने के लिए उस देश की सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक इत्यादि तत्वों को समझना आवश्यक है। इन तत्वों के आधार पर ही उस देश में कुछ नियम और कानून की रचना की जाती है, जिसका पालन देश के प्रत्येक नागरिक को करना अनिवार्य होता है। जो लोग इन नियमों का पालन नहीं करते उन पर योग्य कार्यवाही करना आवश्यक होता है, ताकि देश की अस्मिता को बचाया जा सकें। जिन देशों में उस देश से संबंधित नियम और कानून का पालन नहीं होता, वे देश धीरे–धीरे पतन की ओर जाते हैं, जिसके अनेक उदाहरण हमारे समक्ष है।

भारत वर्ष की कार्यप्रणाली को सुचारू रूप से चलाने के लिए संविधान का निर्माण किया गया। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार थे, जिन्होंने सामाजिक न्याय और समानता को संविधान की मूल आत्मा माना और उसी आधार पर संविधान का निर्माण किया। उन्होंने कमजोर, वंचित और पिछड़े वर्गों के अधिकारों को मजबूत करने वाले प्रावधानों का निर्माण किया। संविधान सभा में उन्होंने तार्किक, वैज्ञानिक और आधुनिक दृष्टिकोण से हर अनुच्छेद का मार्गदर्शन किया। उनके नेतृत्व में तैयार हुआ भारतीय संविधान दुनिया का सबसे बड़ा और समावेशी लोकतांत्रिक दस्तावेज बना। इसी कारण उन्हें "भारतीय संविधान के वास्तुकार" के रूप में सम्मानित किया जाता है। 'भारतीय संविधान वह भवन है जो चार आधारभूत स्तंभों, अर्थात् न्याय, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर आधारित है। भारतीय संविधान की अंतरात्मा को प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में देखा जा सकता है। संविधान का अंतिम लक्ष्य 'सामाजिक न्याय' प्राप्त करना है।'[1]

संविधान की प्रस्तावना के आधार पर संविधान जनता की इच्छा से बना है, जिसमें भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र होने का स्पष्ट उल्लेख है। भारत पर केवल भारत के नागरिकों ही वर्चस्व होगा। भारत के सभी संसाधन भारतीय नागरिकों के कल्याण के लिए है। भारत के सभी नागरिकों को आर्थिक समानता का अधिकार है। जहाँ सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखा जाएगा। भारत का सर्वोच्च पद मतदान से चुना जाएगा।

राष्ट्र की योग्य प्रगति के उद्देश्य से महिला, पुरुष, बालक, वृद्ध, अल्पसंख्यक, आदिवासी, मजदूर, किसान, उपभोक्ता, गरीब, वंचित, तृतीय लिंग आदि के साथ–साथ भारतीय संविधान में दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों और उनके कल्याण से संबंधित मौलिक अधिकारों से संबंधित कई महत्वपूर्ण प्रावधान हैं। संविधान ने दिव्यांगों को

समानता, गरिमा और अवसरों का आश्वासन प्रदान किया है। 'संविधान के भाग III में मौलिक अधिकारों की घोषणा को लोकतांत्रिक राज्य की एक विशिष्ट विशेषता माना जाता है। इन मौलिक अधिकारों में समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार और संवैधानिक उपचारों का अधिकार सम्मिलित है। ये अधिकार राज्य की शक्तियों पर सीमाएँ लगाते हैं। राज्य संविधान द्वारा गारंटीकृत नागरिक के इन मौलिक अधिकारों को न तो छीन सकता है और न ही उनमें कमी कर सकता है। यदि वह ऐसा कोई कानून पारित करता है तो उसे न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है।'[2]

राज्य तथा राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति के लिए सभी व्यक्तियों को समानता का अधिकार दिया जाता है, जिसमें किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता। पुरुष हो या महिला, धनी हो या निर्धन, कुलीन हो या अकुलीन सभी को समानता का अधिकार प्राप्त है। अतः दिव्यांग व्यक्ति भी समान रूप से कानून की सुरक्षा और समान अवसर के अधिकारी हैं। इसे संविधान के अनुच्छेद 14 – समानता का अधिकार में स्पष्ट किया गया है। इसमें भारत के सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समान अधिकार प्राप्त है। राज्य सभी नागरिकों के लिए एक समान कानून का प्रावधान करेगा और उसी तरह उसे लागू करेगा। अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए जो–जो प्रावधान देश के अन्य घटकों के लिए लागू होते हैं वहीं सारे नियम दिव्यांग व्यक्ति के लिए भी लागू होंगे। इसी के आधार पर दिव्यांग व्यक्ति को शिक्षा, नौकरी, व्यवसाय, व्यापार आदि में समान अधिकार दिए जाते हैं।

अनुच्छेद 15 में किसी भी प्रकार के भेदभाव के निषेध का प्रावधान है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत धर्म, जाति, लिंग, आर्थिक स्तर, शैक्षिक स्तर, पदवी, प्रसिद्धि आदि के आधार पर भेदभाव निषिद्ध है। भारत के सभी नागरिकों को सार्वजनिक स्थानों का समान रूप से उपयोग करने का अधिकार प्राप्त है। कोई भी व्यक्ति किसी भी सार्वजनिक मार्ग, उद्यान, दुकान, होटल, धर्मशाला, परिवहन, तालाब, प्रसाधन गृह, शौचालय आदि स्थानों पर रोक नहीं लगा सकता। इस अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य दिव्यांग व्यक्ति के कल्याण के लिए विशेष प्रावधान बना सकता है। दिव्यांग व्यक्ति की सुविधा के लिए विशेष सुविधाओं का प्रबंध भी सार्वजनिक स्थानों पर कई बार किया जाते हैं। अनुच्छेद 15(3) और 15(4) में राज्य से संबंधित विशेष प्रावधान दिए गए हैं, जो उस राज्य से संबंधित कमजोर वर्गों के लिए विशेष प्रावधान बनाने की शक्ति देता है। इसी शक्ति से सरकार दिव्यांग व्यक्तियों के लिए छात्रवृत्ति, शैक्षणिक सहायता, विशेष शिक्षण संस्थानों में सीटें, सुविधा–संपन्न वातावरण उपलब्ध कराती है। अनुच्छेद 15 के कारण दिव्यांग व्यक्ति मौलिक अधिकारों से संबंधित भेदभाव रहित गरिमापूर्ण जीवन का लाभ प्राप्त कर रहा है।

अधिकतर लोगों का सपना होता है कि उन्हें सरकारी नौकरी प्राप्त हो। सरकारी नौकरी के लिए संबंधित नौकरी से जुड़े कुछ नियम होते हैं, जो शैक्षणिक और शारीरिक पात्रता को निर्धारित करते हैं। अनुच्छेद 16 के अंतर्गत भारत के सभी नागरिकों को राज्य के अधीन किसी भी पद पर नियुक्त होने के लिए उपलब्ध समान अवसर की प्राप्ति का अधिकारी होगा। परंतु कई बार दिव्यांग व्यक्ति अपनी दिव्यांग स्थिति के चलते शैक्षणिक या शारीरिक क्षेत्र में विशेष कार्य नहीं कर पाता, जिसके कारण वह नौकरी से वंचित रह जाता है। इस प्रकार की घटना न घटित हो, इसलिए अनुच्छेद 16 के अंतर्गत दिव्यांगों के लिए आरक्षण एवं विशेष सुविधाएँ प्रदान

की जाती है, ताकि उसके पुनर्वास की समस्या का समाधान प्राप्त हो। दिव्यांगों के लिए पहले 3% आरक्षण था, परंतु दिव्यांग अधिकार अधिनियम 2016 के अंतर्गत यह आरक्षण 4% कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त दिव्यांग व्यक्ति की शारीरिक परिस्थिति के आधार पर परीक्षा केंद्र पर बैठने की व्यवस्था, लेखक की व्यवस्था, अतिरिक्त समय, सुलभ परीक्षा केंद्र का भी प्रावधान है। इसके साथ ही पदोन्नति में भी दिव्यांग व्यक्ति को समान अधिकार दिए जाते हैं।

अनुच्छेद 19 (M.) में किसी भी प्रकार के व्यापार एवं आजीविका चलाने की स्वतंत्रता है। अतः पुनार्वास के दृष्टिकोण से भारत सरकार दिव्यांग व्यक्ति को योग्य दर पर आर्थिक सहायता करके उन्हें व्यापार और उद्योगों के लिए प्रोत्साहित करती है ताकि वे भी अपने पैरों पर खड़े हो सकें और देश की प्रगति में अपना भी योगदान दें।

अनुच्छेद 21 भारत के सभी नागरिकों को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता में यह बात विशेष ध्यान रखनी पड़ती है कि हमारे व्यवहार से किसी भी व्यक्ति को ठेस न पहुँचे। किसी भी व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक कष्ट न पहुँचे। दिव्यांग व्यक्ति को सुरक्षित वातावरण, सम्मानजनक व्यवहार, अपमान और हिंसा से सुरक्षा का अधिकार इस अनुच्छेद द्वारा प्राप्त होता है। सार्वजनिक स्थानों पर सुविधापूर्ण व्यवस्था निर्माण करना आवश्यक है। दिव्यांग व्यक्ति को गरिमापूर्ण जीवन, स्वास्थ्य सुविधाएँ, सुलभता, समावेशी शिक्षा, शोषण से सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा तथा स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार प्रदान करता है।

अनुच्छेद 23 में मानव के दुर्व्यवहार और बलपूर्वक श्रम कराने की मनाही है। अर्थात कोई भी व्यक्ति कमजोर दिव्यांग बालक या व्यक्ति को शक्ति के माध्यम से काम नहीं करवा सकता। भारतीय संविधान इस अनुच्छेद से दिव्यांगों के साथ–साथ वाल कामगारों को सुरक्षा प्रदान करती है। 14 वर्ष से कम के वालकों को शिक्षा का अधिकार देती है तथा बाल कामगारी को प्रोत्साहित करने वाले वर्ग को दंडित भी करती है। उसी प्रकार जीवन का अधिकार, शारीरिक उत्पीड़न न किए जाने का अधिकार तथा बलात श्रम के प्रतिरोध का अधिकार ये ऐसे अधिकार जिन्हें किसी भी परिस्थिति में निलंबीत नहीं किया जा सकता।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने अनुच्छेद 32 को संविधान की आत्मा कहा है। यह अनुच्छेद किसी भी नागरिक को अपने मौलिक अधिकारों का हनन होने पर सीधे सर्वोच्च न्यायालय जाने का अधिकार देता है। इस अनुच्छेद के बिना, संविधान के बाकी सभी प्रावधान अर्थहीन हो जाएँगे।

देश में रहने वाले युवाओं को अपने गुणों के आधार पर रोजगार उपलब्ध होना चाहिए, जिसकी नैतिक जिम्मेदारी राज्य तथा राष्ट्र की होती है। अनुच्छेद 41 – काम का अधिकार, शिक्षा का अधिकार और सार्वजनिक सहायता का अधिकार प्रदान करता है। इस नीति निर्देशक तत्व के कारण ही देश की योग्य प्रगति होती है। दिव्यांग व्यक्ति के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है। दिव्यांग व्यक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने का, शिक्षा क्षेत्र में विशेष एवं समावेशी शिक्षा, छात्रवृत्ति, संसाधन केंद्र, प्रशिक्षण शिविर उपलब्ध कराने का, सार्वजनिक सहायता में पेंशन, सहायता निधि, पुनर्वास सुविधा उपलब्ध कराने का प्रावधान है। उसी के साथ जन्मजात, दुर्घटनावश, वृद्धावस्था आदि स्थिति में दिव्यांगता आने पर राज्य सरकार विशेष आर्थिक मदद प्रदान करता है। 'मौलिक अधिकार सभ्य समाज में मानव की गरिमा के लिए महत्वपूर्ण हैं, जबकि राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत

सामाजिक और आर्थिक न्याय के माध्यम से गरीबी उन्मूलन के लिए प्रासंगिक और उपयोगी हैं।'[3]

अनुच्छेद 46 – सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से दुर्बल व्यक्ति की उन्नति पर केंद्रित है। इस अनुच्छेद का प्रावधान दिव्यांग वर्ग पर भी लागू होता है। ऐसे वर्ग की उन्नति समाज में तभी संभव है जब उन्हें उपर्युक्त लाभ प्राप्त होंगे। इनमें विशेष है– शैक्षणिक और आर्थिक हित की स्थिति उपलब्ध कराना, शोषण की परिस्थिति पर अंकुश लगाना, गुणों की अभिव्यक्ति हेतु विशेष अवसर प्रदान करना आदि।

हमारे संविधान के कारण ही दिव्यांग व्यक्ति को अनेक आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हुई है। किसी दिव्यांग को शारीरिक कष्ट न हो इसलिए अस्पताल, पाठशाला, सभागृह, सिनेमा हॉल, बस अड्डा, रेल्वे स्थानक आदि सार्वजनिक स्थानों पर रैम्प की व्यवस्था की गई है और चढ़ने और उतरने के समय सहारे के लिए हैंडलर लगाया जाता है। लिफ्ट में ब्रेल बटन की व्यवस्था की जाती है। व्हीलचेयर के लिए पर्याप्त मार्ग और स्थान की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। सुलभ शौचालय के निर्माण के समय दिव्यांग व्यक्ति को भी स्मरण में रखा जाने लगा है। सर्वसमावेशी शिक्षा की व्यवस्था की गई। निःशुल्क स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई। दिव्यांग व्यक्ति के पहचान के लिए तथा उनकी सुविधा के लिए पहचान पत्र तथा दिव्यांगता प्रमाणपत्र उपलब्ध कराए गए। भेदभाव रहित वातावरण निर्मित किया गया। आर्थिक सुरक्षा एवं आयकर छूट की व्यवस्था की गई। यातायात में रियायत के साथ–साथ परिवहन सुविधाएँ उपलब्ध कराए गए। सांकेतिक एवं ब्रेल साइन बोर्ड की सुविधा प्रदान की गई। अतः यह कहा जा सकता है कि संविधान के कारण ही दिव्यांग व्यक्ति को गरिमापूर्ण और सुरक्षित वातावरण का लाभ प्राप्त हुआ।

संदर्भ –

1. भारत की राजनीतिक अवधारणाओं और संविधान पर चयनित पठन सामग्री, डॉ. एमसीआर एचआरडी इंस्टीट्यूट ऑफ तेलंगाना, पृष्ठ क्र. 147
2. Indian Constitution of Law, M. P. Jain, तृतीय संस्करण 1978, पृष्ठ क्र. 35
3. भारत की राजनीतिक अवधारणाओं और संविधान पर चयनित पठन सामग्री, डॉ. एमसीआर एचआरडी इंस्टीट्यूट ऑफ तेलंगाना, पृष्ठ क्र. 148

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 118–122

महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता : भारतीय संविधान

सरिता
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी बंसी लाल विश्वविद्यालय (भिवानी)

सशक्त लोकतंत्र वही है जिसमें महिलाएँ सिर्फ मतदाता नहीं, बल्कि नीति–निर्माता के रूप में कार्य करें। भारतीय संविधान का मुख्य उद्देश्य भी "समान अधिकार, समान अवसर और समान प्रतिनिधित्व" रहा है। लेकिन भारतीय संविधान के 75 वर्षों के बाद, महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता निम्न बनी हुई है। इस शोध पत्र में भारतीय संविधान में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी से संबंधित प्रावधानों, पंचायती राज संस्थाओं में 73वें–74वें संशोधनों के प्रभाव, राष्ट्रीय एवं राज्य की राजनीति में महिलाओं की सहभागिता, न्यायिक व्याख्याओं, ऐतिहासिक प्रक्रिया और वर्तमान सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य के विश्लेषण के माध्यम से राजनीतिक प्रतिनिधित्व की चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं की विस्तृत विवेचन किया गया है। इस अध्ययन में पाया गया है कि राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर की राजनीति में महिलाओं को दिए गए एक–तिहाई आरक्षण से राजनीतिक सहभागिता बढ़ेगी। इस शोध अध्ययन के लिए इतिहासिक एवं विश्लेष्णात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है।

मुख्य शब्द : राजनीतिक सहभागिता, आरक्षण, संविधान, पंचायती राज संस्थाएं, राजनीतिक सशक्तिकरण, संसद।

किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी केवल प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं, बल्कि समानता, न्याय और सामाजिक परिवर्तन का मूल स्तंभ है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सरोजिनी नायडू, एनी बेसेंट, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली, उषा मेहता आदि महिलाओं ने सत्याग्रह, आंदोलन, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, जेल–यात्रा आदि में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस योगदान ने संविधान निर्माताओं को महिलाओं को समान राजनीतिक अधिकार देने के लिए प्रेरित किया। संविधान सभा में हंसा मेहता, दुर्गाबाई देशमुख, राजकुमारी अमृत कौर, रेनुका राय सरोजिनी नायडू (विशेष अतिथि) आदि महिला सदस्यों की भागीदारी रही, जिन्होंने महिलाओं की शिक्षा, समान अधिकार और राजनीतिक अवसरों पर व्यापक चर्चा की।

भारत जैसे विशाल देश में महिलाओं की जनसंख्या लगभग 50 प्रतिशत है, परंतु स्वतंत्रता के सात दशकों के बाद भी राजनीतिक प्रतिनिधित्व अपेक्षित स्तर पर नहीं पहुंचा है। भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए समान नागरिकता, समान राजनीतिक अधिकार और समान अवसर देने की अवधारणा को मूलभूत अधिकारों में शामिल किया गया। यह केवल संवैधानिक औपचारिकता नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन की दिशा में उठाया गया कदम था। भारतीय संविधान में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी से जुड़े मुख्य प्रावधान निम्नलिखित है – समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14) राज्य को किसी भी व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) के साथ समान व्यवहार करने

का दायित्व देता है। यह राजनीतिक अवसरों में समानता सुनिश्चित करने की संवैधानिक आधारशिला है। लिंग के आधार पर भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15) राज्य लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता है। अनुच्छेद 15(3) राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देता है। इसी प्रावधान के आधार पर राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। समान अवसर का अधिकार (अनुच्छेद 16) सरकारी सेवाओं और राजनीतिक पदों पर नियुक्ति में समान अवसर सुनिश्चित किए गए है। भारत में महिलाओं को प्रारंभ से ही समान मताधिकार (अनुच्छेद 325, 326) प्राप्त है, जबकि कई पश्चिमी देशों में उन्हें बहुत बाद में मिला। यह भारतीय लोकतंत्र की प्रगतिशीलता को दर्शाता है। परंतु स्थानीय संस्थाओं एवं संसद में महिलाओं के लिए विशेष आरक्षण की व्यवस्था संविधान में शामिल नहीं की गई।

शोध उद्देश्य :

भारतीय संविधान के प्रावधानों का महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण में भूमिका का अध्ययन करना।

महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता के लिए दिए गए आरक्षण का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता का विश्लेषण :

स्वतंत्रता के पश्चात्, भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं एवं पुरुषों को समान सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए। महिलाओं को वोट डालने का अधिकार, चुनावों में भाग लेने, आंदोलनों में भाग लेने आदि का समान अधिकार दिया गया। टूवार्ड्स इक्वलिटी रिपोर्ट (1974) में पाया गया कि सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रों विशेषकर राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं का सहभागिता स्तर निम्न है। 1980 के दशक में यह अनुभव किया जाने लगा कि महिलाओं की भागीदारी के बिना संपूर्ण ग्रामीण विकास संभव नहीं है। महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना (1988–2000) द्वारा स्थानीय संस्थाओं में महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की गई। एल.एम सिंघवी समिति की सिफारिश पर पंचायती राज सस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिलाने के लिए 64वां संविधान संशोधन विधेयक, 1989 में संसद में प्रस्तुत किया गया। इस विधयेक में पंचायती राज स्तर पर महिलाओं के लिए एक–तिहाई आरक्षण की व्यवस्था का सुझाव दिया गया, लेकिन यह विधेयक तत्कालीन लोकसभा के विघटन के कारण समाप्त हो गया।

73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया। इस अधिनियम के तहत पंचायती राज स्तर पर महिलाओं को एक–तिहाई आरक्षण दिया गया। आरक्षण के आधार पर पहली बार ग्रामीण राजनीति में महिला प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आई, विशेषज्ञों द्वारा इसे 'मौन क्रांति' का नाम दिया (मैथ्यू, 2018)। इस अधिनियम से पहले स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में महिलाओं की सीमित सहभागिता रही। वर्तमान में हरियाणा सहित 21 राज्यों में 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई है। यह महिलाओं की स्थानीय राजनीतिक सशक्तिकरण की सबसे बड़ी उपलब्धि है (पीआईबी, 2024)। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाएँ जल संरक्षण परियोजनाएँ, स्वच्छता अभियान, महिलाओं की सुरक्षा योजनाएँ, पोषण और स्वास्थ्य कार्यक्रम आदि में कई राज्यों में उत्कृष्ट नेतृत्व प्रदान कर रही है। हरियाणा, राजस्थान, केरल, बिहार, मध्यप्रदेश आदि में महिला सरपंचों के कार्यों ने ग्रामीण पंचायतों के स्वरूप को बदला है। इससे स्पष्ट होता है कि अवसर मिलने पर महिला नेतृत्व अत्यंत प्रभावी सिद्ध होता है।

स्वतंत्रता के पश्चात, प्रथम लोकसभा चुनाव में 4.40 प्रतिशत महिलाएँ लोकसभा सदस्य निर्वाचित हुई,

जबकि सत्रहवें लोकसभा चुनाव में 14.8 प्रतिशत महिलाएँ लोकसभा सदस्य के रूप में निर्वाचित हुई। राज्यसभा में वर्तमान में 24 (14.5 प्रतिशत) महिला सदस्य हैं (पीआरएस, 2024)। सभी राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों में केवल पश्चिम बंगाल राज्य की मुख्यमंत्री (ममता बनर्जी) एवं उत्तर प्रदेश की गवर्नर आनंदीबेन पटेल महिला राजनीतिक अभिजन है। वर्तमान में कैबिनेट में वित्त मंत्री (निर्मला सीतारमण) और महिला एवं बाल विकास मंत्री (स्मृति ईरानी) का चुना जाना और वर्तमान में देश के सर्वोच्च पद पर आदिवासी महिला द्रौपदी मुर्मू का द्वितीय महिला राष्ट्रपति के रूप में चुना जाना महिला राजनीतिक अभिजन की बढ़ती सहभागिता को प्रदर्शित कर रहा है। भारत में विदेश मंत्री, रक्षा मंत्री, वित्त मंत्री आदि महत्त्वपूर्ण पदों पर महिलाओं की नियुक्ति बढ़ती सहभागिता को प्रदर्शित कर रही है। संपूर्ण विश्लेषण से पता चलता है कि कुछ गिनी–चुनी महिलाएं ही राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय है। अतः राज्य स्तर पर महिलाओं की राजनीतिक क्षेत्र में सहभागिता की स्थिति संतोषजनक नहीं है।

ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट (2022) के अनुसार, वैश्विक स्तर पर वैश्विक लैंगिक अंतराल (68.1%), आर्थिक सहभागिता एवं अवसर (60.3%) और राजनीतिक सशक्तिकरण (22.00%) है। महिला राजनीतिक सशक्तिकरण में 146 देशों में भारत का स्थान 48वां है। वर्तमान प्रगति दर के अनुसार, अगले 155 वर्षों में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण में समानता होगी। अतः राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता में समानता अभी बहुत दूर है।

नारी शक्ति वंदन अधिनियम (2023) :

वर्ष 1996 में, महिलाओं को लोकसभा एवं विधानसभाओं में एक–तिहाई आरक्षण देने के लिए पहला विधेयक पेश किया गया। लेकिन राजनीतिक असहमतियों के कारण यह पारित नहीं हुआ। इसके बाद वर्ष 1998, 1999 और 2008 में भी कई प्रयास किए गए, परंतु पूर्ण सहमति नहीं बन सकी। वर्ष 2010 में महिला आरक्षण विधेयक राज्यसभा में पारित हुआ, लेकिन लोकसभा में पारित नहीं हुआ, अतः यह अधिनियम स्वतः समाप्त हो गया।

वर्ष 2015 के बाद, महिला संगठनों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और शिक्षाविदों ने महिला आरक्षण को राष्ट्रीय मुद्दा बनाया। भारत में महिलाओं की बढ़ती शैक्षिक सहभागिता, राजनीतिक जागरूकता और डिजिटल भागीदारी ने इस मुद्दे को मजबूत बनाया। सितंबर 2023 में केंद्र सरकार ने महिला आरक्षण विधेयक को "नारी शक्ति वंदन अधिनियम" नाम से लोकसभा में पेश किया गया। यह विधेयक 106वाँ संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में ऐतिहासिक समर्थन के साथ लोकसभा और राज्यसभा दोनों में पारित हुआ। नारी शक्ति वंदन अधिनियम (2023) द्वारा भारतीय संविधान में ऐतिहासिक संशोधन द्वारा लोकसभा, राज्य विधानसभा एवं केंद्र–शासित प्रदेश विधानसभाओं में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता के लिए एक–तिहाई आरक्षण की व्यवस्था की गई। यह अधनियम परंतु सीमाक्षेत्र निर्धारण (Delimitation) और जनगणना के बाद लागू होगा।

106वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2023 एक ऐतिहासिक और क्रांतिकारी कदम है, जो भारतीय राजनीति में महिलाओं के लिए वास्तविक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखता है। यह न केवल लैंगिक समानता की दिशा में महत्वपूर्ण है, बल्कि लोकतांत्रिक सशक्तिकरण का एक मजबूत प्रतीक भी है। हालांकि इसके सामने परिसीमन, समय–सीमा, और व्यवहार में लागू होने जैसे महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं, लेकिन यदि इसे प्रभावी रूप से लागू किया जाए, तो यह भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी और प्रतिनिधित्वकारी बना सकता है।

भविष्य में, इसके सफल कार्यान्वयन और निरंतर निगरानी से यह देखा जाना चाहिए कि यह महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए कितना प्रभावकारी रहा है।

महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण में बाधाएँ :

भारतीय संविधान ने समान अधिकार दिए, परंतु वास्तविक भागीदारी कई बाधाओं से प्रभावित है :
भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक मूल्यों में गिरावट।
महिलाओं का सार्वजनिक जीवन की अपेक्षा निजी जीवन तक सीमित रहना।

- **सामाजिक एवं सांस्कृतिक बाधाएँ** – पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था, महिलाओं पर घरेलू और पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ, राजनीति को 'पुरुष–प्रधान क्षेत्र' मानने की मानसिकता, सामाजिक रूढ़ियाँ आदि।
- **आर्थिक बाधाएँ** – महिलाओं की आर्थिक निर्भरता राजनीतिक स्वतंत्रता को सीमित करती है।
- **शिक्षा और नेतृत्व के अवसरों की कमी** – ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर महिलाओं की शिक्षा का स्तर अभी भी पुरुषों की तुलना में कम है, जिससे उनकी राजनीतिक क्षमता प्रभावित होती है।
- **राजनीतिक दलों का लैंगिक पक्षपात** – महिलाओं को टिकट देना, चुनाव प्रबंधन में भूमिका देना या नेतृत्व पदों पर नियुक्त करना अक्सर पक्षपातपूर्ण तरीके से किया जाता है।

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के सकारात्मक प्रभाव –

शासन में पारदर्शिता, सामाजिक नीतियों (शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, जल प्रबंधन, लैंगिक न्याय आदि) को महत्त्व, निर्णय प्रक्रिया में विविधता और संतुलन – महिलाओं की उपस्थिति नीति–निर्माण को संतुलित, मानवीय और समाजोन्मुख बनाती है, राजनीतिक संस्कृति में बदलाव – महिलाओं के नेतृत्व से राजनीति में संवाद की गुणवत्ता बेहतर होती है और संघर्ष कम होता है। महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए संवैधानिक सुधारों की भी आवश्यकता है। भारतीय संविधान ने कई अवसर प्रदान किए, परंतु कुछ और सुधार आवश्यक है रू राजनीतिक दलों के भीतर आरक्षण, चुनावी वित्तीय सहायता, नेतृत्व विकास कार्यक्रम – सरकारी एवं निजी संस्थानों द्वारा नेतृत्व प्रशिक्षण, प्रशासनिक क्षमता निर्माण, डिजिटल साक्षरता आदि।

भारतीय संविधान महिलाओं को राजनीतिक समानता प्रदान करता है और भारतीय लोकतंत्र में समय–समय पर महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण और नारी शक्ति वंदन अधिनियम जैसे कदम इतिहास–निर्माण करने वाले हैं। परंतु वास्तविक राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए केवल कानूनी प्रावधान पर्याप्त नहीं है बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव, शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, राजनीतिक दलों की मानसिकता में सुधार और महिलाओं के नेतृत्व को सक्रिय प्रोत्साहन देना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. टूवार्ड्स इक्वलिटी, रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन द स्टेटस ऑफ वीमेन इन इंडिया.(1974).गवर्नमेंट ऑफ इंडिया।
2. https://pldindia.org/wp&content/uploads/2013/04/Towards&Equality&1974&Part&1.pdf
3. नेशनल पर्सपेक्टिव प्लान फॉर वीमेन (1988–2000)।

4. मैथ्यू, जॉ.(जुलाई, 2018).पंचायती राज : उपलब्धियां और चुनौतियां, कुरुक्षेत्र, 9, 5–7।
5. पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च. (2024)।
6. https://prsindia.org/parliamenttrack/vital&stats/profile&of&the&18th&lok&sabha
7. ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट (2022)।
8. मिनिस्ट्री ऑफ पंचायती राज, पार्टिसिपेशन ऑफ वीमेन इन पंचायत, पीआईबी दिल्ली, 6.36, 6 फरवरी, 2024 ।
9. मिनिस्ट्री ऑफ इनफार्मेशन एंड ब्राडकास्टिंग. (6 मार्च, 2024). नारी शक्ति : महिला विकास से महिला नेतृत्त्व वाले विकास तक, पीआईबी।
10. https://www.pibgovin.translate.goog/PressNoteDetails.aspx\No teId/151861&ModuleId/3&_x_tr_sl/en&_x_tr_tl/hi&_x_tr_hl/hi&_x_tr_pto/tc

ईमेल : mannubarala97@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 123–124

वर्तमान परिदृश्य में मौलिक अधिकारों का बदलता स्वरूप और भारतीय संविधान : समस्या और समाधान

डॉ. दलपत सिंह
सहायक आचार्य, विधि संकाय, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

भारतीय संविधान के भाग III में निहित मौलिक अधिकार देश में राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्शों को बढ़ावा देने और नागरिकों की स्वतंत्रता व गरिमा की रक्षा करने के लिए एक आधारशिला प्रदान करते हैं। हालांकि समकालीन सामाजिक आर्थिक और तकनीकी परिवर्तनों के कारण इन अधिकारों का स्वरूप लगातार विकसित हो रहा है जिससे नई चुनौतियाँ और समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। यह अमूर्त वर्तमान परिदृश्य में मौलिक अधिकारों के बदलते आयामों का विश्लेषण करता है। प्रमुख समस्याओं की पहचान करता है और संभावित समाधान सुझाता है।

मुख्य समस्याएँ :

- **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश :** राष्ट्रीय सुरक्षा सार्वजनिक व्यवस्था और मानहानि के नाम पर कानूनों के दुरुपयोग के माध्यम से अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19 को अक्सर बाधित किया जाता है।
- **निजता का अधिकार और डिजिटल युग :** तकनीकी प्रगति ने डेटा सुरक्षा और डिजिटल निजता (अनुच्छेद 21 के तहत मान्यता प्राप्त) के संबंध में गंभीर प्रश्न खड़े किए हैं जहाँ व्यक्तिगत डेटा के दुरुपयोग का जोखिम बना रहता है।
- **सामाजिक–आर्थिक असमानताएँ :** गरीबी और शिक्षा की कमी जैसे सामाजिक–आर्थिक अवरोध कई व्यक्तियों, विशेषकर हाशिए पर रहने वाले समुदायों को उनके अधिकारों का प्रभावी ढंग से दावा करने से रोकते हैं।
- **न्यायिक पहुँच में विलंब :** महंगी और समय लेने वाली न्यायिक प्रक्रिया (न्याय में देरी) के कारण सभी नागरिकों के लिए समान रूप से न्याय सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती है।
- **राज्य की कार्रवाई बनाम व्यक्तिगत स्वतंत्रता :** राष्ट्रीय आपातकाल या मार्शल लॉ जैसी स्थितियों में राज्य की सुरक्षा और सार्वजनिक हित के नाम पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता (अनुच्छेद 20 और 21 को छोड़कर) को निलंबित किया जा सकता है।

सुझाए गए समाधान :

- **कानूनी सुधार :** व्यक्तिगत अधिकारों की बेहतर सुरक्षा के लिए पुराने और अस्पष्ट कानूनों को अद्यतन और संशोधित किया जाना चाहिए।
- **न्यायिक सक्रियता :** न्यायपालिका को अधिकारों की रक्षा में एक सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए विशेष रूप से सरकार के मनमाने कार्यों के विरुद्ध।
- **जन जागरूकता :** नागरिकों को उनके अधिकारों और उन्हें लागू करने के तरीकों के बारे में शिक्षित करने के लिए सार्वजनिक जागरूकता अभियान आवश्यक हैं।
- **तकनीकी सुरक्षा उपाय :** डिजिटल युग में निजता सुनिश्चित करने के लिए मजबूत तकनीकी और कानूनी सुरक्षा उपायों को लागू किया जाना चाहिए।
- **समान पहुँच सुनिश्चित करना :** कानूनी सहायता को सुलभ बनाकर और न्यायिक प्रक्रियाओं को सरल बनाकर न्यायपालिका तक सभी की पहुँच आसान बनाई जानी चाहिए।

निष्कर्ष :

मौलिक अधिकार गतिशील हैं और इन्हें बदलती सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार ढालना आवश्यक है। भारतीय संविधान इन अधिकारों का संरक्षक है और न्यायपालिका ने न्यायिक समीक्षा के माध्यम से इनके दायरे का विस्तार किया है जैसे कि अनुच्छेद 21 के तहत शिक्षा आजीविका और स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार को शामिल करना। व्यक्तिगत अधिकारों और सामाजिक हितों के बीच संतुलन बनाए रखना और चुनौतियों का समाधान करना एक न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक समाज के लिए महत्वपूर्ण है।

E-MAIL ID: dalpatsinghla@gmail.com
Mobile No. 8875963404

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 125–131

संविधान और महिला सशक्तिकरण

Dr. Anupama
Assistant Professor, Department of Hindi
Mount Carmel College, Autonomous, Bangalore-560032.

शोध सार :

भारत का संविधान सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों की रक्षा का सर्वोच्च दस्तावेज है। इसके प्रावधानों में महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ करने और उन्हें समान अधिकार प्रदान करने का स्पष्ट लक्ष्य निहित है। संविधान के माध्यम से महिलाओं को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक क्षेत्रों में समान अवसर प्रदान किए गए हैं। इस शोध का उद्देश्य भारतीय संविधान में निहित महिला सशक्तिकरण से संबंधित प्रावधानों, उनके कार्यालय की स्थिति और समकालीन सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह देखा गया है कि, संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 और 39 में निहित समानता और संरक्षण के अधिकार महिलाओं के लिए सशक्त आधार प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, 73वें और 74वें संशोधनों के माध्यम से महिलाओं को पंचायतों और नगरीय निकायों में राजनीतिक भागीदारी का अवसर मिला, जिसने सामाजिक नेतृत्व में उनकी भूमिका को मजबूत किया। संवैधानिक प्रावधानों ने महिलाओं को समान अधिकार दिए हैं, फिर भी सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर सामानता, भेदभाव और हिंसा जैसी समस्याएँ आज भी मौजूद है। अतः केवल कानूनी प्रावधान पर्याप्त नहीं है, इनके प्रभावी क्रियान्वयन और सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन आवश्यक है। अंततः भारतीय संविधान महिला सशक्तिकरण के आधारशिला है, परंतु सच्चे सशक्तिकरण के लिए शिक्षा, जागरूकता और सामाजिक समानता की दिशा में सतत प्रयास आवश्यक हैं। जब तक महिलाएँ निर्णय–प्रक्रिया में बराबर की भागीदारी नहीं प्राप्त करेंगी, तब तक संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ण प्राप्ति संभव नहीं हो सकेंगी।

प्रस्तावना :

भारतीय समाज परंपरागत रूप से पितृसत्तात्मक रहा है, जहाँ महिलाओं की भूमिका लंबे समय तक सीमित दायरे में रही। कभी उन्हें शक्ति, ज्ञान और करुणा की प्रतीक माना गया तो कभी सामाजिक बंधनों और परंपराओं ने उन्हें सीमाओं में बाँध दिया। मेरी वॉल स्टोन क्राफ्ट ने कहा है– "नारी भी मानव है उसे उस रूप में अधिकार मिलना चाहिए... एक विवेकशील ईश्वर आधी मानव जाति को बुद्धिहीन तो रखेगा नहीं।"(1) स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाओं ने राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भागीदारी निभाई, जिससे यह आवश्यक हुआ कि स्वतंत्र भारत में उन्हें समान अधिकार और अवसर दिए जाएँ। इसी उद्देश्य की पूर्ति भारतीय संविधान ने की– जो न केवल नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए भी एक सशक्त वैधानिक

आधार प्रदान करता है। महिला सशक्तिकरण का अर्थ है– महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक और कानूनी रूप से सशक्त बनाना, ताकि वे अपने निर्णय स्वयं ले सकें और समाज में समान भागीदारी निभा सकें। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्यसेन ने लिखा हैं कि, "महिला सशक्तिकरण से न केवल महिलाओं के जीवन में निश्चित रूप से सकारात्मक असर पड़ेगा, बल्कि पुरुषों और बच्चों को भी इससे लाभ होगा।"[(2)] भारतीय संविधान महिलाओं को समानता, गरिमा, स्वतंत्रता और न्याय के अधिकारों से सुसज्जित करता है, जिससे वह समाज के हर क्षेत्र में अपनी पहचान बना सकें। संविधान के अनुच्छेद 14,15 और 16 के माध्यम से महिलाओं को समानता और भेदभाव से मुक्ति का अधिकार दिया गया है, जबकि नीति–निर्देशक तत्वों में राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि, वह महिलाओं को उचित कार्य परिस्थितियाँ और मातृत्व सुरक्षा प्रदान करें। इसके अतिरिक्त, संविधान ने राजनीति और प्रशासन में महिलाओं की भागीदारी को भी प्रोत्साहन दिया है। इस भारतीय संविधान ने महिलाओं को न केवल अधिकार दिए हैं, बल्कि उन्हें अपने सपनों को साकार करने की शक्ति भी प्रदान की है। यह कहना उचित होगा कि, संविधान ही भारतीय महिला सशक्तिकरण की सबसे मजबूत नींव है, जिसने महिलाओं को 'समान नागरिक' के रूप में सम्मान और अस्तित्व दिलाया है। "संविधान ने स्त्रियों को केवल अधिकार ही नहीं दिए, बल्कि उन्हें समानता की गरिमा भी दी है।"[(3)])

भारतीय संविधान में महिलाओं की स्थिति अधिकार :

भारतीय संविधान महिला सशक्तिकरण की सुदृढ़ नींव है। इसने महिलाओं को समान अधिकार, स्वतंत्रता और न्याय प्रदान करने की दिशा में ऐतिहासिक कदम उठाया है। किंतु वास्तविक सशक्तिकरण तभी संभव है जब समाज की सोच, नीतियाँ और व्यवहार में समानता का भाव स्थापित हों। महिलाएँ जब शिक्षा, रोजगार, राजनीति और निर्माण प्रक्रिया में समान रूप से भाग लेगी, तभी संविधान की भावना– "समानता और न्याय पर आधारित समाज"– साकार हो सकेगीद्य इसलिए संविधान के आदर्शों को व्यवहार में लाना ही सच्चे अर्थों में महिला सशक्तिकरण की दिशा में सबसे बड़ा कदम है। संविधान में महिलाओं की स्थिति को तीन मुख्य पहलुओं में समझा जा सकता है– कानूनी समानता, सामाजिक सुरक्षा और राजनीतिक सहभागिता।

कानूनी समानता :

भारतीय संविधान ने महिलाओं को कई ऐसे मौलिक अधिकार दिए हैं, जो उनके सम्मान और समानता की रक्षा करते हैं :–

अनुच्छेद 14– सभी नागरिकों को समानता का अधिकार।

अनुच्छेद 15(1)– धर्म, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव निषिद्ध।

अनुच्छेद 15(3)– राज्य को महिलाओं के पक्ष में विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति।

अनुच्छेद 16– सरकारी नौकरियों में समान अवसर।

अनुच्छेद 21– जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार।

इन अनुच्छेदों में महिलाओं को शिक्षा, रोजगार और न्याय के क्षेत्र में समान अधिकार सुनिश्चित किए हैं। प्रसिद्ध न्यायमूर्ति वी.आर कृष्ण अय्यर ने लिखा हैं कि, "कानून तब तक जीवंत नहीं होता जब तक समाज में उसकी भावना न जागे।"[(4)]

सामाजिक सुरक्षा :

महिलाओं के स्वास्थ्य, मातृत्व और सम्मान की रक्षा के लिए संविधान में कई नीति निदेशक तत्व शामिल हैं–

अनुच्छेद 39(क)– पुरुषों और महिलाओं के लिए समान अधिकार।

अनुच्छेद 39(घ)– समान कार्य के लिए समान वेतन।

अनुच्छेद 42– मातृत्व लाभ और कार्यस्थल पर उचित परिस्थितियों का प्रावधान।

इन प्रावधानों के आधार पर सरकार ने कई कानून बनाए हैं– जैसे मातृत्व लाभ अधिनियम (1961), घरेलू हिंसा अधिनियम (2005), और कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न निवारण अधिनियम(2013)।

राजनीतिक सहभागिता :

संविधान ने महिलाओं को मतदान और चुनाव लड़ने का अधिकार देकर राजनीतिक समानता सुनिश्चित की। 73वाँ और 74वाँ संसाधन(1992) के अंतर्गत पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं को 33% आरक्षण दिया गया। इसमें ग्रामीण और शहरी दोनों स्तरों पर महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई और वह निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया पर हिस्सा बनीं। आज महिलाएँ हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है, परंतु कुछ सामाजिक और मानसिक बाधाएँ अब भी मौजूद है। ग्रामीण और गरीब वर्ग की महिलाओं को अब भी शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है। कार्यस्थलों पर लैंगिक भेदभाव और असमान वेतन की समस्या बनी हुई है। घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा और बाल विवाह जैसी कुप्रथाएँ अभी भी सामाजिक सोच पर प्रभाव डालती है। इसीलिए यह आवश्यक हैं कि, संविधान के आदर्शों को व्यवहार में उतारा जाए और महिलाओं को सच्चे अर्थों में सशक्त बनाया जाए।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में कानून और योजनाएँ :

महिला सशक्तिकरण किसी भी समाज के विकास का प्रमुख आधार है। जब तक महिलाएँ शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और निर्णय–निर्माण में समान रूप से भाग नहीं लेगीं, तब तक समाज में वास्तविक प्रगति संभव नहीं है। भारत में संविधान ने महिलाओं को समान अधिकार प्रदान किए हैं, परंतु इन अधिकारों को व्यवहार में लाने के लिए सरकार ने कई कानूनों और योजनाओं के माध्यम से ठोस कदम उठाए हैं। इन प्रयासों का उद्देश्य महिलाओं को निर्भरता से मुक्त कर उन्हें निर्णय लेने और नेतृत्व की क्षमता प्रदान करना है।

महिला सशक्तिकरण के लिए प्रमुख कानून निम्नलिखित हैं :

दहेज निषेध अधिनियम, 1961

इस कानून का मुख्य उद्देश्य दहेज प्रथा जैसी कुप्रथा को समाप्त करना है। कानून के अनुसार दहेज लेना या देना अब अपराध माना गया है। यह अधिनियम महिलाओं को विवाह के नाम पर होने वाले उत्पीड़न से बचाने का एक सशक्त माध्यम है। इस प्रथा ने अनेक परिवारों को आर्थिक, सामाजिक और मानसिक रूप से तोड़ दिया। इसी समस्या को समाप्त करने के लिए भारत सरकार ने 'दहेज निषेध अधिनियम,1961' (Dowry Prohibition Act, 1961) लागू किया, जिससे इस कुप्रथा पर कानूनी रोक लगाई जा सके।

गृह हिंसा से संरक्षण अधिनियम, 2005

यह अधिनियम महिलाओं को घर के भीतर होने वाली शारीरिक, मानसिक यौन और आर्थिक हिंसा से सुरक्षा प्रदान करना है। इसके अंतर्गत महिलाएँ पुलिस या न्यायालय के माध्यम से सुरक्षा आदेश प्राप्त कर सकती

हैं। भारत में लंबे समय से महिलाओं को घरेलू हिंसा का सामना करना पड़ रहा है– पति या ससुराल पक्ष द्वारा मारपीट, मानसिक प्रताड़ना, दहेज की माँग, संपत्ति से वंचित करना आदि इसके सामान्य रूप है। पहले यह अपराध केवल भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा 498–A तक सीमित था, जो मुख्यतः दहेज उत्पीड़न पर केंद्रित था। इसी समस्या को रोकने और महिलाओं को कानूनी संरक्षण देने के लिए भारत सरकार ने "घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम, 2005" (Protection of Women from Domestic Violence, 2005) लागू किया।

कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण) अधिनियम, 2013

आधुनिक भारत में महिलाएँ शिक्षा, रोजगार, राजनीति और सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा रही है। लेकिन कार्य स्थल पर सुरक्षा और सम्मान की भावना के बिना महिला सशक्तिकरण अधूरा है। कार्यस्थलों पर महिलाओं के साथ होने वाले यौन उत्पीड़न, लैंगिक भेदभाव उनके आत्मसम्मान, मानसिक स्वास्थ्य और कार्यक्षमता को गहराई से प्रभावित करते हैं। इसी गंभीर समस्या को रोकने के लिए भारत सरकार ने "कार्यस्थल पर महिलाओं के प्रति लैंगिक उत्पीड़न (निवारण) अधिनियम, 2013" (The Sexual Harassment of Women at Workplace-Prevention, Prohibition and Redressal Act, 2013) लागू किया। इस कानून की प्रेरणा 1997 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए प्रसिद्ध "विशाखा बनाम राजस्थान राज्य" मामले से मिली। उस समय सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थलों पर महिलाओं की सुरक्षा के लिए दिशानिर्देश जारी किए थे, जिन्हें "विशाखा दिशानिर्देश" कहा गया। इस दिशा निर्देशों को ही बाद में 2013 में एक व्यापक कानून का रूप दिया गया।

बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006

बाल विवाह भारत में एक पुरानी सामाजिक समस्या रही है। जब किसी लड़की की शादी 18 वर्ष से कम आयु में या किसी लड़के की शादी 21 वर्ष से कम आयु में कर दी जाती है, तो उसे बाल विवाह कहा जाता है। ये न केवल बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास में बाधा डालता है, बल्कि समाज की प्रगति में भी रुकावट पैदा करता है। इस बुराई को समाप्त करने के लिए भारत सरकार ने "बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006 (Prohibition of Child Marriage Act, 2006)" लागू किया। इस अधिनियम का उद्देश्य बाल विवाह को रोकना, पीड़ितों को सुरक्षा देना और दोषियों को दंड करना है। जहाँ बाल विवाह रुकेंगे, वहीं उज्जवल भविष्य की नींव रखी जाएगी।

महिला आरक्षण विधेयक, 2023 (नारी शक्ति वंदन अधिनियम)

यह विधेयक भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने की दिशा में ऐतिहासिक कदम है। इसके तहत संसद राज्य विधानसभाओं में महिलाओं को 33% आरक्षण प्रदान किया गया है। पुरुषों की तुलना में निर्णय–तंत्र, विधानसभाएँ और लोकसभा में उनकी उपस्थिति सीमित रहने से महिलाओं के हितों और दृष्टिकोण का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं हो पा रहा था। इस वास्तविकता को बदलने के लिए संसद ने लंबे समय से प्रतीक्षित प्रस्ताव पर काम किया और अंततः "नारी शक्ति बंधन अधिनियम, 2023" के रूप में यह कानून पारित हुआ। यह केवल आरक्षण का कानून नहीं, बल्कि समान भागीदारी, सशक्त नेतृत्व और समावेशी लोकतंत्र का प्रतीक है।

समान वेतन अधिनियम 1976

इस कानून के तहत पुरुष और महिला दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार दिया

गया है। संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 के अंतर्गत समानता का अधिकार प्रत्येक नागरिक को दिया गया है। फिर भी लंबे समय तक महिलाओं को पुरुषों की तुलना के समान कार्य के लिए कम वेतन दिया जाता रहा। इस असमानता को दूर करने के लिए भारत सरकार ने "समान वेतन अधिनियम, 1976 (Equal Remuneration Convention)" लागू किया। जिसका उद्देश्य महिलाओं और पुरुषों को समान कार्य के लिए समान वेतन सुनिश्चित करना था।

महिला सशक्तिकरण के लिए सरकारी योजनाएँ :

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना, 2015 : इस योजना का उद्देश्य बालिका भ्रुण हत्या को रोकना, बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देना और समाज में उनकी स्थिति सुधारना है।

प्रधानमंत्री उज्जवला योजना, 2016 : इसमें गरीब परिवारों की महिलाओं को मुफ्त गैस कनेक्शन प्रदान किया गया, जिससे उनका स्वास्थ्य और सम्मान दोनों सुरक्षित हुए।

महिला शक्ति केंद्र योजना, 2017 : इसका उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा, कौशल, विकास और स्व–रोजगार के अवसर प्रदान करना है।

वन स्टॉप सेंटर योजना (सखी केंद्र) : यह योजना हिंसा पीड़ित महिलाओं को चिकित्सा, कानूनी और परामर्श सेवाएँ एक ही स्थान पर प्रदान करती है।

प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना : गर्भवती और स्तनपान करने वाली माताओं को पोषण सहायता और आर्थिक लाभ देने की योजना।

स्टैंड अप इंडिया योजना, 2016 : इसमें महिलाओं को स्व–रोजगार और उद्योग लगाने के लिए बैंक ऋण में विशेष सहायता दी जाती है।

नारी शक्ति पुरस्कार : विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट योगदान देनेवाली महिलाओं को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित किया जाता है।

सरकार द्वारा बनाए गए यह कानून महिलाओं को समान अवसर, सुरक्षा और सम्मान देने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

संविधान और सामाजिक परिवर्तन का संबंध :

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में महिलाओं के अधिकारों और समानता की रक्षा के लिए संविधान और सामाजिक परिवर्तन दोनों ही महत्वपूर्ण स्तंभ है। भारतीय संविधान में महिलाओं को न केवल समान अधिकार दिए हैं, बल्कि उन्हें सशक्त और आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनेक प्रावधान किए हैं। वहीं, समाज में बदलते दृष्टिकोणों और आंदोलनों ने इस संवैधानिक भावना को व्यवहारिक रूप देने में भूमिका निभाई है। संविधान के बाद भारतीय समाज में कई महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हुए जिनसे महिलाओं की स्थिति में सुधार आया। शिक्षा का प्रसार ने महिलाओं में आत्मविश्वास, जागरूकता और स्वतंत्र सोच को बढ़ावा दिया। संविधान के सिद्धांतों के आधार पर दहेज निषेध अधिनियम (1961), घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम (2005), कार्यस्थल पर यौन उत्प्रेरण अधिनियम (2013) आदि ने महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित की। सामाजिक आंदोलन में नारी मुक्ति आंदोलन, "मी टू" अभियान तथा स्वावलंबन और शिक्षा पर केंद्रित कार्यक्रमों ने समाज में महिला सशक्तिकरण की सोच को सशक्त बनाया। संविधान ने महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए कानूनी आधार दिया और सामाजिक परिवर्तन ने उन

अधिकारों को व्यवहार में लाने का मार्ग प्रशस्त किया। दोनों के परस्पर सहयोग से आज महिलाएँ शिक्षा, राजनीति, सेना, विज्ञान, न्यायपालिका, उद्योग–हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है।

महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थिति और चुनौतियाँ :

आज भारत में महिलाएँ जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दे रही है। पिछले कुछ दशकों में महिलाओं की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है, परंतु अभी भी अनेक चुनौतियाँ उनके सशक्तिकरण के मार्ग में अवरोध बनी हुई है।

महिला सशक्तिकरण के वर्तमान स्थिति कुछ इस प्रकार हैं :

शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति हो रही है। आज महिलाओं की साक्षरता दर में निरंतर वृद्धि हो रही है। "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" जैसी सरकारी योजनाओं ने लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा दिया है। उच्च शिक्षा और तकनीकी क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बड़ी है। राजनीतिक भागीदारी में पंचायती राज संस्थाओं में 33% आरक्षण और "नारी शक्ति वंदन अधिनियम, 2023" के तहत संसद व विधानसभाओं में 33% आरक्षण, महिलाओं को निर्णय प्रक्रिया में समान अवसर प्रदान कर रहा है। आज महिलाएँ, नौकरियों, उद्यमिता और स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र बन रही है। "औरत जब अपने अधिकारों को पहचान लेती है, तब कोई समाज उसे रोक नहीं सकता।"[5] समाज में महिलाओं के अधिकारों को लेकर जागरूकता बढ़ी है और अब परिवारों में बेटियों को समान अवसर देने की सोच विकसित हो रही है।

इन सबके बावजूद भी यह सशक्तिकरण समान रूप से पूरे देश में नहीं फैला है। ग्रामीण क्षेत्रों में और पिछले समाजों में महिलाओं की स्थिति अभी कमजोर है। ग्रामीण और पिछले क्षेत्रों में आज भी कई लड़कियाँ शिक्षा से वंचित है। बाल विवाह और गरीबी इसके प्रमुख कारण हैं। बड़ी संख्या में महिलाएँ आज भी आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर है, जिससे निर्णय लेने में उनकी भागीदारी सीमित रह जाती है। पितृसत्तात्मक सोच आज भी महिलाओं को पुरुषों से नीचे मानती है। परिवार और समाज में निर्णय लेने के अधिकार अक्सर पुरुषों तक ही सीमित रहते हैं। घरेलू हिंसा, दहेज प्रथा, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न और बालिकाओं के विरुद्ध अपराध आज भी एक गंभीर समस्या है। यद्यपि पंचायत स्तर पर आरक्षण मिला है, परंतु संसद और विधानसभाओं में महिलाओं का प्रतिशत अभी भी बहुत कम है। ग्रामीण और गरीब वर्ग की महिलाएँ आज भी कुपोषण, मातृ मृत्यु और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी से जूझ रही है।

महिला सशक्तिकरण : समाधान और आगे की राह :

भारत में संविधान ने महिलाओं को समान अधिकार प्रदान किए हैं परंतु इन अधिकारों का वास्तविक लाभ तभी मिलेगा जब समाज में व्यावहारिक परिवर्तन लाया जाए।

महिला सशक्तिकरण के समाधान :

शिक्षा का प्रसार : महिला सशक्तिकरण की सबसे बड़ी कुंजी शिक्षा है। शिक्षित महिला अपने अधिकारों को जानती है और अपने जीवन के निर्णय स्वयं ले सकती है।

आर्थिक स्वावलंबन : महिला स्वयं सहायता समूह (SHG), मुद्रा योजना, स्टार्ट अप इंडिया जैसी पहलें महिलाओं को उद्यमिता की ओर प्रेषित कर रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल विकास कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं को रोजगार से जोड़ना आवश्यक है।

सुरक्षा और न्याय व्यवस्था : महिलाओं के खिलाफ बढ़ते अपराध सशक्तिकरण में बड़ी बाधा है। कानूनों का सख्त पालन, त्वरित न्याय और महिला हेल्पलाइन जैसी सुविधाओं को मजबूत बनाना जरूरी है।

सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन : महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए केवल कानून पर्याप्त नहीं है, बल्कि मानसिकता में बदलाव जरूरी है। परिवारों और स्कूलों में लैंगिक समानता की शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ी महिलाओं को बराबरी का दर्जा दे सके।

स्वास्थ्य और पोषण : महिलाओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना आवश्यक है।

महिला सशक्तिकरण के लिए सरकार, समाज और परिवार– तीनों की संयुक्त भूमिका आवश्यक है। राजनीति में प्रतिनिधित्व, शिक्षा में अवसर और रोजगार में समानता यह तीन स्तंभ महिलाओं के भविष्य को उज्ज्वल बना सकते हैं। मीडिया और शिक्षा संस्थानों को भी महिलाओं की सकारात्मक छवि प्रस्तुत करने में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। सशक्तिकरण का लक्ष्य तभी पूरा होगा जब महिलाएँ 'सहायता की पात्र' नहीं 'निर्णय की भागीदार' बनेंगी।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान में महिलाओं को समानता, स्वतंत्रता और गरिमा का अधिकार देकर उनके सशक्तीकरण की नींव रखी है। संविधान ने महिलाओं को केवल अधिकारों का संरक्षण ही नहीं दिया, बल्कि उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से आगे बढ़ने का अवसर भी प्रदान किया। आज महिलाएँ शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, कला और प्रशासन के हर क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही है, जो हमारे संविधान की सफलता का प्रमाण है। फिर भी, पूर्ण समानता की मंजिल अभी दूर है। इसके लिए आवश्यक हैं कि, हम संवैधानिक मूल्यों– समानता, न्याय और स्वतंत्रता को– अपने सामाजिक आचरण का हिस्सा बनाएँ। इस प्रकार महिला सशक्तिकरण केवल कानून या नीतियों से नहीं, बल्कि समाज की सोच और व्यवहार में बदलाव से ही पूर्ण होगा। जब संविधान की भावना और समाज की चेतना एक हो जाएगी, तभी सच्चे अर्थों में 'नारी सशक्त भारत' का स्वप्न साकार होगा।

संदर्भ सूची :-

1. आशा कौशिक, संपादित–नारी सशक्तिकरण –विचार–विमर्श, पृ. सं–267
2. प्रो. अमर्त्य सेन, India Economic Development and Social Opportunity.
3. डॉ. भीमराव अंबेडकर, संविधान सभा की बहसें, पृ. सं–979
4. वी.आर कृष्ण अय्यर (न्यायमूर्ति), Law and the Poor, पृ. सं–61
5. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ. सं–112

Phone Number 8105566341

Email-Id : pa.anupama09@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 132–136

संविधान और सामाजिक न्याय : शिक्षा और स्वास्थ्य के अधिकार के परिप्रेक्ष्य में

S. RAJALAKSHMI
Assistant Professor in Hindi
Agurchand Manmull Jain College, Chennai.

भारतीय संविधान केवल शासकीय व्यवस्था का दस्तावेज नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और मानव गरिमा का घोषणापत्र है। इसका उद्देश्य ऐसा समाज बनाना है जहाँ हर नागरिक को समान अवसर मिले, चाहे वह किसी भी वर्ग, जाति या आर्थिक स्थिति से संबंधित क्यों न हो। सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य को सबसे महत्वपूर्ण उपकरण माना गया है। यह शोधपत्र संविधानिक प्रावधानों, न्यायिक निर्णयों और नीतिगत पहलुओं के माध्यम से यह विश्लेषण करता है कि शिक्षा और स्वास्थ्य के अधिकार किस प्रकार सामाजिक न्याय के स्तंभ बनते हैं। साथ ही इसमें दिए गए प्रत्येक उद्धरण के साथ उसका संदर्भ और अर्थ भी विस्तृत रूप से समझाया गया है।

प्रस्तावना :

भारतीय संविधान के प्रांबिल (Preamble) में कहा गया है : "हम भारत के लोग भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व–संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने का निश्चय करते हैं, और उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करने का संकल्प लेते हैं।"[1] यह पंक्ति केवल संविधान की शुरुआत नहीं, बल्कि भारत के सामाजिक दर्शन की घोषणा है। "सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय" शब्द यह स्पष्ट करते हैं कि संविधान केवल विधिक शासन का ढांचा नहीं बनाता, बल्कि समाज के वंचित, पिछड़े और उपेक्षित वर्गों को बराबरी के अधिकार देने की आकांक्षा रखता है। यह उद्धरण इस विचार को पुष्ट करता है कि लोकतंत्र तभी सार्थक है जब समाज में अवसरों की समानता हो, चाहे वह शिक्षा का हो या स्वास्थ्य का।

संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा था :

"Political democracy cannot last unless there lies at the base of it social democracy."[2] अंबेडकर जी का यह कथन भारतीय लोकतंत्र की आत्मा को परिभाषित करता है। उनका अर्थ था कि यदि सामाजिक समानता और आर्थिक अवसरों की बराबरी नहीं होगी, तो केवल राजनीतिक अधिकार जैसे मतदान वास्तविक लोकतंत्र नहीं बना पाएँगे। "Social democracy" का अर्थ है, सभी नागरिकों के लिए जीवन के अवसर समान

होना। इसलिए शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे अधिकार सामाजिक लोकतंत्र की नींव हैं।

2. सामाजिक न्याय का संवैधानिक ढाँचा :-

भारतीय संविधान सामाजिक न्याय को मौलिक अधिकारों (Fundamental Rights) और नीति निर्देशक तत्वों (Directive Principles of State Policy) के माध्यम से साकार करता है।

(क) अनुच्छेद 21 - जीवन का अधिकार :-

"किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार वंचित नहीं किया जाएगा।"[3]

पहले इस अनुच्छेद की व्याख्या केवल जीवन के भौतिक संरक्षण तक सीमित थी, परंतु बाद में न्यायालयों ने इसकी परिधि का विस्तार किया।

सुप्रीम कोर्ट ने Francis Coralie Mullin v. Union Territory of Delhi (1981) में कहा, "The right to life includes the right to live with human dignity and all that goes along with it."[4] इसका अर्थ है कि "जीवन" केवल साँस लेने का नाम नहीं, बल्कि गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार है, जिसमें भोजन, आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूल आवश्यकताएँ शामिल हैं। इस निर्णय ने सामाजिक न्याय की संवैधानिक व्याख्या को व्यापक किया।

(ख) नीति निर्देशक तत्व :-

"राज्य, राष्ट्रीय जीवन की समस्त संस्थाओं में न्याय–सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक को प्रवर्तित करने का प्रयास करेगा।"[5] यह प्रावधान संविधान की सामाजिक दिशा तय करता है। यद्यपि नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा लागू नहीं किए जा सकते, फिर भी ये सरकार को सामाजिक कल्याणकारी नीतियों की दिशा दिखाते हैं।

अनुच्छेद 39(e), (f), 41 और 47 शिक्षा और स्वास्थ्य के अधिकारों से सीधे जुड़ते हैं। इन अनुच्छेदों का तात्पर्य यह है कि राज्य ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करे जिनमें प्रत्येक नागरिक को स्वास्थ्यवर्धक जीवन और शिक्षा का समान अवसर प्राप्त हो।

3. शिक्षा का अधिकार और सामाजिक न्याय :-

(क) शिक्षा का संवैधानिक रूपांतरण

भारत में 2002 में 86वाँ संविधान संशोधन लागू हुआ, जिसके तहत नया अनुच्छेद 21। जोड़ा गया : "राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि छह से चौदह वर्ष की आयु के प्रत्येक बालक को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार हो।" यह प्रावधान इस विचार को मजबूत करता है कि शिक्षा केवल व्यक्तिगत विकास का साधन नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक समाज का आधार है।

संविधान ने इसे "राज्य का दायित्व" बनाकर सामाजिक न्याय को कानूनी रूप में स्थापित किया। इस संशोधन ने Directive Principle को Fundamental Right में बदल दिया, जो भारत के सामाजिक लोकतंत्र की ऐतिहासिक उपलब्धि है।

इसके अनुपालन 2009 में Right of Children to Free and Compulsory Education Act (RTE Act, 2009) पारित किया गया, जिसमें कहा गया, "Every child of the age of six to fourteen years shall have a

right to free and compulsory education.''[6] यह सामाजिक न्याय की व्यावहारिक परिभाषा है। अब शिक्षा कोई 'सुविधा' नहीं बल्कि एक 'अधिकार' बन चुकी है, और राज्य इस अधिकार का वाहक है। इससे यह सुनिश्चित हुआ कि गरीब और वंचित वर्ग भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त कर सके।

(ख) न्यायिक दृष्टिकोण

Mohini Jain v. State of Karnataka (1992) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा, "The right to education flows directly from the right to life." यह निर्णय शिक्षा को जीवन के अधिकार से जोड़ने वाला पहला ऐतिहासिक कदम था। न्यायालय ने माना कि शिक्षा के बिना जीवन का सम्मान नहीं हो सकता, क्योंकि अज्ञानता स्वयं में असमानता की जड़ है।

Unni Krishnan v. State of Andhra Pradesh (1993) में अदालत ने स्पष्ट किया, "Every child/citizen has a right to free education until he completes the age of 14 years." इस निर्णय ने शिक्षा को बाल अधिकार के रूप में परिभाषित किया। यह न केवल संविधान की व्याख्या थी, बल्कि भारत में Human Development को न्यायिक मान्यता देने का प्रयास भी।

(ग) वैश्विक परिप्रेक्ष्य

Universal Declaration of Human Rights (UDHR, 1948) के अनुच्छेद 26 में कहा गया, "Everyone has the right to education." इस घोषणा ने शिक्षा को सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषित किया। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने इसी भावना को अपनाते हुए इसे अपने सामाजिक न्याय के सिद्धांत में समाहित किया। यह बताता है कि भारत का संवैधानिक ढांचा वैश्विक मानवीय मूल्यों से प्रेरित है।

4. स्वास्थ्य का अधिकार और सामाजिक न्याय :-

(क) नीति निर्देशक तत्व का उद्धरण

"राज्य अपने नागरिकों के पोषण स्तर और सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्तर को ऊँचा उठाने का दायित्व निभाएगा।"[7] यह अनुच्छेद राज्य को स्वास्थ्य नीतियों के लिए संवैधानिक रूप से बाध्य करता है। स्वास्थ्य केवल चिकित्सा सुविधा नहीं, बल्कि गरिमापूर्ण जीवन का आधार है। संविधान यह मानता है कि जब तक नागरिक स्वस्थ नहीं हैं, तब तक वे समान अवसरों का लाभ नहीं उठा सकते।

(ख) न्यायिक दृष्टिकोण

Consumer Education and Research Centre v. Union of India (1995) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा, "The right to health and medical care is a fundamental right under Article 21."[8] यह निर्णय ऐतिहासिक है क्योंकि इसने स्वास्थ्य को मौलिक अधिकार की मान्यता दी। न्यायालय ने कहा कि किसी भी नागरिक को उपचार, दवा और सुरक्षित कार्य–परिस्थिति से वंचित करना अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। इस निर्णय ने सामाजिक न्याय की अवधारणा को जीवन के व्यावहारिक पहलू से जोड़ा।

Parmanand Katara v. Union of India (1989) में कहा गया, "Every doctor, whether at a government hospital or otherwise, has a professional obligation to extend his services with due expertise for protecting life." यह राज्य और चिकित्सा समुदाय दोनों की नैतिक जिम्मेदारी को रेखांकित करता है। स्वास्थ्य का अधिकार केवल नीति का विषय नहीं, बल्कि मानवता की अनिवार्यता है। न्यायालय ने चिकित्सा पेशे को

केवल व्यवसाय नहीं, बल्कि सामाजिक सेवा बताया।

(ग) अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य –

Alma-Ata Declaration (1978) में कहा गया, "Health is a state of complete physical, mental and social well-being and not merely the absence of disease. यह बात स्वास्थ्य की समग्र दृष्टि प्रस्तुत करती है – जो केवल बीमारी के इलाज से आगे बढ़कर मानसिक, सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा तक जाती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 की विस्तृत व्याख्या इसी विचार से मेल खाती है।

5. शिक्षा और स्वास्थ्य की परस्पर निर्भरता –

अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Development as Freedom (1999) में लिखा है, "Illiteracy and ill health are among the biggest sources of capability deprivation."[9]

सेन का यह कथन विकास और स्वतंत्रता की आधुनिक अवधारणा को उजागर करता है। उनके अनुसार, यदि किसी व्यक्ति को शिक्षा या स्वास्थ्य का अवसर नहीं मिलता, तो उसकी 'क्षमता' (Capability) सीमित रह जाती है।

इस प्रकार, शिक्षा और स्वास्थ्य दोनों सामाजिक न्याय की व्यावहारिक आधारशिलाएँ हैं – बिना इनके न तो विकास संभव है और न समानता।

6. समकालीन साक्ष्य और चुनौतियाँ :

शिक्षा पर सरकारी व्यय GDP का लगभग 3.1% और स्वास्थ्य पर 2.1% (Economic Survey, 2024) है, जो OECD देशों से काफी कम है। UNESCO (2021) के अनुसार भारत में लगभग 60 लाख बच्चे अब भी विद्यालय से बाहर हैं। WHO (2022) की रिपोर्ट में कहा गया कि भारत में जीवन प्रत्याशा 70.8 वर्ष है, परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाओं की भारी कमी है। ये आँकड़े दर्शाते हैं कि संवैधानिक और नीतिगत ढाँचा मजबूत होने के बावजूद, सामाजिक न्याय की वास्तविकता तक पहुँचने में अब भी लंबा रास्ता तय करना बाकी है।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान का सामाजिक न्याय दर्शन शिक्षा और स्वास्थ्य दोनों को मानव जीवन के मूलाधिकारों के रूप में स्थापित करता है। प्रांबिल का "सामाजिक न्याय" शब्द, अनुच्छेद 21 की विस्तृत व्याख्या, अनुच्छेद 21। और नीति निर्देशक तत्वों सभी का अंतिम उद्देश्य यही है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति गरिमापूर्ण जीवन जी सके। जैसा कि डॉ. अंबेडकर ने कहा था, "A democratic form of government presupposes democratic form of society."

अर्थात् जब तक समाज में समान अवसर, शिक्षा और स्वास्थ्य की समान पहुँच नहीं होगी, तब तक लोकतंत्र अधूरा रहेगा। इसलिए सामाजिक न्याय को साकार करने के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य दोनों का सार्वभौमिक अधिकार बनाना केवल नीति नहीं, बल्कि संवैधानिक कर्तव्य है।

संदर्भ सूची :

1. Constitution of India. (1950). Government of India.
2. Constituent Assembly Debates, Vol. XI, 1949

3. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 21
4. Supreme Court Cases : Francis Coralie Mullin v- Union Territory of Delhi (1981)
5. अनुच्छेद 38, भारतीय संविधान
6. Right of Children to Free and Compulsory Education Act. (2009). Ministry of Law and Justice.
7. अनुच्छेद 47, भारतीय संविधान।
8. Consumer Education and Research Centre v. Union of India (1995)
9. Amartya Sen - Development as Freedom. Oxford University Press, 1999.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 137–142

संविधान की प्रमुख विशेषताएँ : एक विश्लेषणात्मक और विस्तृत अध्ययन

अभिमन्यु कुमार शर्मा
अगरचंद मनमुल्ल जैन कॉलेज।

सारांश :

भारतीय संविधान विश्व का सबसे विस्तृत और प्रगतिशील संविधान माना जाता है, जिसकी रचना एक लंबे ऐतिहासिक संघर्ष, विविध सामाजिक अनुभवों तथा लोकतांत्रिक आदर्शों की परिणति के रूप में हुई। यह शोध–पत्र संविधान की प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसमें संविधान के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, इसकी संरचना, प्रमुख घटकों, और इसकी व्यावहारिक प्रासंगिकता पर विस्तार से चर्चा की गई है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय संविधान केवल शासन का ढाँचा नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली माध्यम भी है, जिसने आधुनिक भारत के राजनीतिक तंत्र, सामाजिक ढांचे और नागरिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। इस शोध में यह भी विश्लेषित किया गया है कि संविधान किस प्रकार न्याय, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसे सिद्धांतों को मूर्त रूप देता है, और किस प्रकार यह एक समावेशी, बहुलवादी और उत्तरदायी राज्य व्यवस्था का निर्माण करने में सहायक है। इस अध्ययन का समग्र उद्देश्य संविधान की उन विशिष्टताओं को उद्‌भासित करना है जो इसे एक जीवंत, सशक्त और गतिशील दस्तावेज बनाती हैं, और भारत को एक स्थिर, लोकतांत्रिक तथा बहुआयामी राष्ट्र के रूप में स्थापित करती हैं।

प्रस्तावना :–

भारतीय संविधान आधुनिक भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन की आधारशिला है। इसका निर्माण मात्र एक विधिक दस्तावेज बनाने का प्रयास नहीं था, बल्कि यह एक ऐसे राष्ट्र का स्वप्न था जो उपनिवेशवाद की दमनकारी संरचनाओं से मुक्त होकर स्वतंत्रता, समानता और न्याय पर आधारित हो। संविधान सभा के सदस्यों ने लगभग तीन वर्ष तक विस्तृत विचार–विमर्श, बहस और अध्ययन के पश्चात इस दस्तावेज को तैयार किया। यह न केवल भारतीय समाज की जटिलताओं को संबोधित करता है, बल्कि यह एक ऐसे भविष्य की कल्पना भी करता है जिसमें हर नागरिक को समान अवसर और अधिकार प्राप्त हों।

भारतीय संविधान की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह विविधता के मध्य एकता को संरक्षित रखते हुए देश की सांस्कृतिक, भाषाई, धार्मिक और सामाजिक विविधताओं को सम्मान देता है। संविधान के माध्यम

से भारत के शासन को स्थिरता, समावेशिता और लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व के साथ संचालित करने की दृष्टि प्रदान की गई है। यह अध्ययन संविधान के इन विविध पहलुओं की विवेचना करता है ताकि यह समझा जा सके कि भारतीय संविधान आधुनिक शासन व्यवस्था में क्यों इतना प्रभावशाली और प्रासंगिक दस्तावेज है।

भारतीय संविधान का ऐतिहासिक संदर्भ :

भारतीय संविधान का निर्माण सीधे तौर पर भारत के स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ा हुआ है। लम्बे उपनिवेशवादी शासन के पश्चात संविधान निर्माताओं का प्रमुख उद्देश्य एक ऐसी व्यवस्था तैयार करना था जो न केवल ब्रिटिश शासन की कमियों को दूर करे, बल्कि भारतीय समाज की विशिष्ट आवश्यकताओं को भी संबोधित करे। संविधान सभा में विविध पृष्ठभूमियों के सदस्य थे जिनमें विधिवेत्ता, सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षाविद, प्रशासनिक अधिकारी तथा स्वतंत्रता सेनानी शामिल थे। यह विविधता संविधान में परिलक्षित होती है।

संविधान निर्माताओं ने विश्व के कई प्रमुख संविधानों जैसे ब्रिटेन, अमेरिका, आयरलैंड, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया का अध्ययन किया, किंतु इन मॉडलों को भारतीय परिस्थिति के अनुकूल ढालकर अपनाया। भारत जैसे व्यापक भूगोल, बहुसांस्कृतिक समाज और सामाजिक असमानताओं वाले राष्ट्र में प्रभावी शासन सुनिश्चित करने हेतु एक विशिष्ट संवैधानिक ढांचे की आवश्यकता थी। यही कारण है कि भारतीय संविधान को बहुलवादी, उदार, सामाजिक न्याय पर आधारित तथा संतुलित अधिकार कर्तव्य संरचना वाला दस्तावेज बनाया गया।

संविधान की संरचना :

भारतीय संविधान में 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ थीं, जो अब संशोधनों के बाद अधिक विस्तृत हो चुकी हैं। यह दुनिया का सबसे लंबा लिखित संविधान है। इसकी लंबाई इसकी जटिलता का प्रमाण नहीं, बल्कि भारतीय समाज की जटिलता और संवैधानिक सुरक्षा के प्रति सजगता का संकेत है। इसकी संरचना को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि संविधान निर्माताओं ने भारत के हर संभावित प्रश्न, चुनौती और सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इसकी रचना की।

संविधान की संरचना में प्रस्तावना, मूल अधिकार, राज्य के नीति निदेशक तत्व, मौलिक कर्तव्य, संघीय ढांचा, न्यायपालिका की संरचना, अध्यायवार प्रशासनिक प्रावधान, निर्वाचन प्रणाली, वित्त आयोग, आपात प्रावधान और स्थानीय शासन को सुदृढ़ करने वाले प्रावधान शामिल हैं। यह संरचनात्मक विविधता संविधान को न केवल विस्तृत बनाती है, बल्कि इसके व्यावहारिक महत्व को भी बढ़ाती है।

संविधान की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण :

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएँ उसकी वैचारिक, दार्शनिक और संस्थागत संरचना को समग्रता से प्रतिबिंबित करती हैं। यह केवल शासन का एक औपचारिक दस्तावेज नहीं है बल्कि स्वतंत्रता, समानता और न्याय पर आधारित उस सामाजिक अनुबंध का प्रतिनिधित्व करता है जिसे भारत के निर्माणकर्ताओं ने एक दीर्घकालीन और समावेशी राष्ट्रीय परियोजना के रूप में कल्पित किया था। संविधान की लोकतांत्रिक प्रकृति उसकी सबसे विशिष्ट विशेषता है क्योंकि यह नागरिकों को सत्ता का वास्तविक स्रोत मानता है और शासन को

उनकी सम्मति तथा सहभागिता पर आधारित बनाता है। प्रत्यक्ष और प्रतिनिधिक लोकतंत्र के मिश्रण के रूप में निर्मित भारतीय संरचना संसद, विधानसभाओं, स्थानीय निकायों और विभिन्न संवैधानिक संस्थाओं के माध्यम से नागरिकों की भूमिका को संस्थागत रूप देती है।

इस लोकतांत्रिक ढाँचे का मूल मार्गदर्शन प्रस्तावना में निहित है। प्रस्तावना में संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और गणराज्य मूल्यों का उल्लेख भारतीय राज्य के चरित्र को स्पष्ट करता है। यह प्रस्तावना न केवल संविधान के उद्देश्य को अभिव्यक्त करती है बल्कि समस्त संवैधानिक प्रावधानों को दिशा देने वाली दार्शनिक प्रस्तावना के रूप में कार्य करती है। प्रस्तावना में अंतर्निहित संप्रभुता राज्य की स्वतंत्र निर्णय क्षमता को सुनिश्चित करती है जबकि समाजवाद का सिद्धांत सामाजिक आर्थिक विषमताओं को कम करने और संसाधनों के न्यायसंगत वितरण के लिए प्रतिबद्धता प्रदान करता है। इसी प्रकार धर्मनिरपेक्षता का मूल्य यह सुनिश्चित करता है कि राज्य का कोई अपना धर्म नहीं होगा और सभी नागरिकों तथा सभी धार्मिक समुदायों के साथ समान व्यवहार किया जाएगा।

सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता भारतीय संविधान की एक केंद्रीय धुरी है। जाति, लिंग, भाषा, धर्म या क्षेत्र के आधार पर होने वाले ऐतिहासिक अन्यायों और असमानताओं को दूर करने के लिए संविधान ने अनेक सकारात्मक उपायों को सम्मिलित किया है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और शैक्षणिक तथा सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण जैसी व्यवस्थाएँ इस सामाजिक न्याय दर्शन को व्यावहारिक रूप प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों के माध्यम से नागरिकों के अधिकार और राज्य की जिम्मेदारियों के मध्य एक संतुलन स्थापित किया गया है जो लोकतांत्रिक शासन और कल्याणकारी राज्य दोनों की आकांक्षाओं को जोड़ता है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता भी संविधान की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है। यह स्वतंत्रता नागरिक स्वतंत्रताओं की रक्षा का केंद्रीय आधार है क्योंकि यदि न्यायपालिका कार्यपालिका और विधायिका के प्रभाव से मुक्त न हो तो मौलिक अधिकारों तथा संवैधानिक मूल्यों की सुरक्षा असंभव हो जाएगी। इस स्वतंत्रता के कारण सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य कर पाते हैं और न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से यह सुनिश्चित करते हैं कि सरकार की कोई भी कार्यवाही संविधान के अनुरूप हो।

इन सभी विशेषताओं का समग्र प्रभाव यह है कि भारतीय संविधान एक ऐसा सशक्त, जीवंत और अनुकूलनशील दस्तावेज बन गया है जो समाज की बदलती आवश्यकताओं, राजनीतिक गतिशीलता और सामाजिक विविधता को ध्यान में रखते हुए निरंतर विकसित होता रहता है। यही विकासशीलता और उदार–लोकतांत्रिक दर्शन इसे दुनिया के सबसे सफल संवैधानिक प्रयोगों में से एक बनाता है।

संविधान की प्रमुख विशेषताओं पर विस्तृत विश्लेषण :

भारतीय संविधान की सबसे विशिष्ट विशेषता यह है कि यह एक मिश्रित संविधान है जो संघीय तथा एकात्मक दोनों विशेषताओं को समाहित करता है। भारत में संघीय ढांचा होने के बावजूद सत्ता का अंतिम केंद्रीकरण केंद्र सरकार के पास है, जो राष्ट्र की एकता और अखंडता बनाए रखने में सहायक है। दूसरी ओर,

राज्यों को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की गई है जिससे वे अपनी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप शासन चला सकें।

संविधान की धर्मनिरपेक्षता भारतीय संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ यहाँ किसी धर्म का विरोध नहीं, बल्कि सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और समान अवसर उपलब्ध कराना है। यह दृष्टिकोण भारत के लंबे धार्मिक इतिहास और बहुसांस्कृतिक प्रकृति के अनुकूल है।

मूल अधिकारों की व्यवस्था संविधान की सबसे प्रगतिशील धारणाओं में से एक है। यह नागरिकों की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करती है और राज्य को उनके अधिकारों का संरक्षण करने की जिम्मेदारी देती है। इनमें समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक अधिकार और संवैधानिक उपचार का अधिकार शामिल हैं।

राज्य के नीति निदेशक तत्व संविधान का नैतिक आधार हैं। ये न्यायिक रूप से बाध्यकारी तो नहीं हैं, परंतु राज्य को कल्याणकारी राजनीति अपनाने की दिशा दिखाते हैं। इनका उद्देश्य एक ऐसा राष्ट्र बनाना है जहाँ आर्थिक और सामाजिक असमानताओं का न्यूनतम स्तर हो और हर नागरिक को सम्मानजनक जीवन मिल सके।

संविधान की प्रमुख विशेषताओं पर विस्तारित विश्लेषण

संविधान का सामाजिक न्याय मॉडल :

भारतीय संविधान सामाजिक न्याय को अपने सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्यों में शामिल करता है। सामाजिक न्याय की अवधारणा केवल आर्थिक या राजनीतिक न्याय तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचनाओं में व्याप्त असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास करती है। भारत में जाति–आधारित भेदभाव, आर्थिक विषमता, लैंगिक असमानता और क्षेत्रीय असमानताएँ सदियों से मौजूद रही हैं। संविधान ने इन सभी चुनौतियों को स्वीकार करते हुए एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण किया जो सामाजिक न्याय को प्राथमिकता देती है।

अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण नीति इसी सामाजिक न्याय की अवधारणा का हिस्सा है। यह नीति सामाजिक बहिष्कार के ऐतिहासिक तथ्यों को स्वीकार करती है और उन्हें सुधारने का प्रयास करती है। इसके अलावा महिलाओं के अधिकारों, दिव्यांगजनों के अधिकारों और बच्चों के संरक्षण से संबंधित विभिन्न प्रावधान भी इसी न्याय दृष्टि का हिस्सा हैं।

संविधान का राजनीतिक दर्शन : स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व :

भारतीय संविधान फ्रांसीसी क्रांति के मूल्यों स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को अपने भीतर समाहित करता है। ये तीनों मूल्य भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला हैं। स्वतंत्रता का अर्थ केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति, शिक्षा, आंदोलन, और विचार की स्वतंत्रता भी है। समानता का सिद्धांत जाति, धर्म, भाषा, लिंग और जन्म आधारित भेदभाव को अस्वीकार करता है।

बंधुत्व का सिद्धांत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भारतीय समाज में सामंजस्य, सहयोग और सामाजिक एकता को बढ़ावा देता है। संविधान निर्माताओं ने समझा कि केवल कानून और संस्थाएँ किसी राष्ट्र को स्थिर नहीं रख सकतीं, जब तक कि उसके नागरिकों में आपसी सम्मान और सद्भाव न हो।

संविधान की गतिशीलता और संशोधन प्रक्रिया :

भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता उसकी गतिशीलता है। संविधान को ऐसी संरचना दी गई है जो समयानुसार बदलती सामाजिक और राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुरूप संशोधन की अनुमति देती है। यह संशोधन प्रक्रिया न तो अत्यधिक कठोर है और न अत्यधिक सरल। संविधान संशोधनों के माध्यम से कई ऐतिहासिक परिवर्तन संभव हुए जैसे 73वाँ और 74वाँ संशोधन, शिक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार, और राष्ट्रीय न्यायालयिक सुधार।

संविधान की मूल संरचना की अवधारणा यह सुनिश्चित करती है कि कोई भी संशोधन संविधान के मूल सिद्धांतों जैसे न्यायपालिका की स्वतंत्रता, संघीय ढाँचा, धर्मनिरपेक्षता या लोकतांत्रिक चरित्र को न बदले। यह संतुलन संविधान को स्थिरता और लचीलापन दोनों प्रदान करता है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक सक्रियता :

भारत की न्यायपालिका संविधान की संरक्षक है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति यह सुनिश्चित करती है कि संसद द्वारा बनाए गए कानून संविधान के अनुरूप हों। न्यायपालिका कई बार न्यायिक सक्रियता के माध्यम से सामाजिक न्याय और नागरिक अधिकारों की रक्षा करती आई है। पर्यावरणीय अधिकारों, लैंगिक समानता, बच्चों के अधिकारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जुड़े कई ऐतिहासिक निर्णय न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका को दर्शाते हैं।

संविधान का लोकतांत्रिक चरित्र और चुनाव व्यवस्था :

भारतीय संविधान सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का प्रावधान करता है, जिससे हर नागरिक को चुनाव में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है। यह व्यवस्था भारत को एक सच्चा लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाती है। भारत का निर्वाचन आयोग एक स्वतंत्र संस्था है, जो चुनावों की निष्पक्षता और पारदर्शिता सुनिश्चित करता है।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान एक व्यापक, प्रगतिशील और जीवंत दस्तावेज है जिसने भारत को आधुनिक लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में स्थापित किया है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ जैसे सामाजिक न्याय, धर्मनिरपेक्षता, स्वतंत्र न्यायपालिका, संघीय ढांचा, अधिकारदृकर्तव्य संतुलन और गतिशीलता इसे विश्व के सबसे सशक्त संविधानों में स्थान दिलाते हैं। संविधान केवल शासन संचालन का साधन नहीं, बल्कि एक ऐसी सामाजिक दृष्टि है जो हर नागरिक को समान अवसर, संरक्षण और गरिमा प्रदान करती है। आधुनिक भारत की सफल लोकतांत्रिक यात्रा इसी संविधान की देन है।

संदर्भ सूची :

1. Ambedkar, B. R. (1994). द फ्रेमिंग ऑफ द इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन (खंड 1–4). नई दिल्ली : सरकार प्रकाशन विभाग. (मूल कृति प्रकाशित 1967)
2. Austin, G. (1999). भारतीय संविधान : राष्ट्र–निर्माण का एक प्रयास (अनुवाद). नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड

यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल अंग्रेजी कृति The Indian Constitution : Cornerstone of a Nation, 1966)
3. Basu, D. D. (2019). भारत का संविधान : सिद्धांत और व्यवहार. नई दिल्ली : लेक्सिसनेक्सिस।
4. Bhargava, R. (2011). धर्मनिरपेक्षता और भारतीय राजनीति. नई दिल्ली : पेंगुइन।
5. Constituent Assembly of India. (1950). भारत का संविधान. नई दिल्ली : भारत सरकार प्रकाशन विभाग।
6. Granville, A. (2003). भारतीय लोकतंत्र की विकास यात्रा (अनुवाद). नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. Government of India. (2023). भारत का संविधान (संशोधित संस्करण). नई दिल्ली : विधि मंत्रालय।
8. Kashyap, S. C. (2015). भारतीय संविधान का विकास इतिहास. नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट।
9. Ministry of Law and Justice. (1950). Constitution of India. नई दिल्ली : Government of India.
10. Sharma, P. (2018). भारतीय संघवाद और केंद्र : राज्य संबंध. नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशंस।
11. Singh, M. P; & Saxena, R. (2011). भारतीय शासन और राजनीति. नई दिल्ली : पियरसन।
12. Upendra, B. (1993). भारतीय न्यायपालिका और नागरिक अधिकार. दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 143–147

संविधान निर्माण में मध्य प्रदेश का योगदान

डॉ. रोशनी
अतिथि विद्वान–हिन्दी
शासकीय कला एवं वाणिज्य (नवीन), महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

संविधान निर्माण में मध्य प्रदेश का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुआयामी रहा है। प्रदेश की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक विरासत ने संविधान सभा में विचार–विमर्श की दिशा को प्रभावित किया। स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाने वाले मध्य प्रदेश के नेताओं ने संविधान निर्माण में भी अपनी भूमिका निभाई। ग्वालियर रियासत सहित विभिन्न क्षेत्रों से आए प्रतिनिधियों ने संविधान सभा में प्रदेश का प्रतिनिधित्व किया। इसके अतिरिक्त, संविधान के अलंकरण और चित्रांकन में भी मध्य प्रदेश का विशेष योगदान रहा, जिसमें जबलपुर के प्रसिद्ध चित्रकार ब्यौहार राममनोहर सिंहा की कला विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रकार, संविधान निर्माण की प्रक्रिया में मध्य प्रदेश ने अपनी सृजनात्मक और विचारशील भागीदारी से महत्वपूर्ण योगदान दिया। मध्य प्रदेश की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत ने संविधान सभा में विचारशीलता को प्रेरित किया। इसके अलावा, प्रदेश के नेताओं पर महात्मा गांधी और आचार्य विनोबा भावे के विचारों का गहरा प्रभाव था। ग्वालियर रियासत की ओर से लेफ्टीनेंट कर्नल बृजराज नारायण और हेमचंद्र जगोबाजी खांडेकर सक्रिय सदस्य थे। संविधान के कुल 22 चित्रों में से 12 चित्र जबलपुर के प्रसिद्ध चित्रकार ब्यौहार राममनोहर सिंहा ने बनाए थे। इसके अलावा, संविधान की प्रस्तावना का चित्रांकन भी उन्होंने ही किया था।

भारतीय संविधान के निर्माण में मध्यप्रदेश के विद्वानों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। संविधान सभा, जिसमें 299 सदस्य थे, उनमें से 19 सदस्य मध्यप्रदेश से थे। संविधान निर्माण समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर, जो इंदौर जिले के महू में जन्मे थे, ने इसके निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाई। डॉ. हरिसिंह गौर न केवल संविधान सभा के सदस्य थे, बल्कि उन्होंने संविधान का प्रारंभिक मसौदा भी तैयार किया था। उन्होंने हिंदू कानून की व्याख्या कर इसे संविधान में शामिल करने का सुझाव दिया। वहीं, अविभाजित मध्यप्रदेश के पहले मुख्यमंत्री पं. रविशंकर शुक्ल ने हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए संविधान सभा में जोरदार तर्क रखे, जिसके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 343 में हिंदी को राजभाषा और देवनागरी को इसकी लिपि के रूप में स्वीकार किया गया।

भारतीय संविधान को 26 नवंबर, 1949 को अपनाया गया था और 26 जनवरी, 1950 को आधिकारिक रूप से लागू किया गया। इसी कारण 26 नवंबर, को संविधान दिवस मनाया जाता है, जिसकी शुरुआत 2015 में डॉ. गौर की जयंती पर की गई थी। संविधान के अलंकरण में जबलपुर के प्रसिद्ध चित्रकार राममनोहर सिंह ब्योहार का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने संविधान के प्रस्तावना पृष्ठ सहित दस चित्रों का निर्माण किया,

जिनमें भारतीय संस्कृति, सभ्यता और इतिहास को दर्शाया गया। उनके चित्रों में सिंधु घाटी सभ्यता, कोणार्क सूर्य मंदिर, नटराज की मूर्ति, नालंदा विश्वविद्यालय की मुहर, गुप्तकालीन मुद्राएं और प्राकृतिक संपदा की झलक शामिल थी। उल्लेखनीय रूप से, उन्होंने इस कार्य के लिए कोई पारिश्रमिक स्वीकार नहीं किया और केवल ष्रामष् लिखकर हस्ताक्षर किए।

सागर की तीन विभूतियों ने भारतीय संविधान निर्माण में अहम भूमिका निभाई। डॉ. हरिसिंह गौर, जो हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय के संस्थापक और पहले कुलपति थे, ने संविधान को संवारने और हिंदू कानून की व्याख्या में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अविभाजित मध्यप्रदेश के पहले मुख्यमंत्री पंडित रविशंकर शुक्ल ने हिंदी को राजभाषा का दर्जा देने का सुझाव दिया। वहीं, मलैया परिवार के सदस्य और कोयलांचल के श्रमिक नेता रतनलाल मालवीय ने मजदूरों के अधिकारों की जोरदार वकालत की और 1954 व 1960 में राज्यसभा सदस्य बने। ग्वालियर रियासत से संविधान सभा में दो प्रतिनिधि थेकृ लेफ्टिनेंट कर्नल बृजराज नारायण और हेमचंद्र जगोबाजी खांडेकर। ग्वालियर, जो सिंधिया राजवंश के अधीन एक प्रमुख रियासत थी, ने भारत की संविधान सभा में अपने प्रतिनिधि भेजे थे। उस समय कई रियासतों के प्रतिनिधि संविधान निर्माण की प्रक्रिया में शामिल हुए थे, ताकि स्वतंत्र भारत के संविधान में सभी वर्गों और क्षेत्रों की भागीदारी सुनिश्चित हो सके।[1] 23 जुलाई, 1921 को थांदला, झाबुआ में जन्मे कुसुमकांत जैन मात्र 28 वर्ष की उम्र में झाबुआ–रतलाम रियासत की ओर से संविधान सभा के सबसे युवा सदस्य बने। 1936 में, जब वे स्कूल में थे, तब ब्रिटिश शासन के पॉलिटिकल एजेंट का विरोध करने के कारण उन्हें विद्यालय छोड़ना पड़ा।

सेठ गोविंद दास और मास्टर लालसिंह सिनसिनवार हिंदी के प्रबल समर्थक थे और संविधान में इसकी प्रमुखता चाहते थे। सेठ गोविंद दास, जिनका जन्म 1896 में जबलपुर में हुआ, संविधान सभा में हिंदी और भारतीय संस्कृति के सशक्त प्रवक्ता थे। वे चाहते थे कि संविधान पहले हिंदी में लिखा जाए। बाद में, मध्यप्रदेश और बरार क्षेत्र से ही एक अन्य सदस्य डॉ. रघुवीर ने संविधान का पहला खंड हिंदी में प्रस्तुत किया, लेकिन दक्षिण भारतीय प्रतिनिधियों ने इसे महत्व नहीं दिया। हिंदी के प्रश्न पर उन्होंने कांग्रेस की नीति से अलग हटकर संसद में मजबूती से हिंदी का समर्थन किया। मास्टर लालसिंह सिनसिनवार, जिनका जन्म 1889 में भोपाल में हुआ, क्रिश्चियन कॉलेज इंदौर से शिक्षा प्राप्त करने के बाद 1913 में जहांगिरिया स्कूल भोपाल में अध्यापन कार्य से जुड़े। उन्होंने भोपाल में कन्या शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए पहला कन्या विद्यालय स्थापित किया और 1924 में पहला अनाथालय शुरू कराया। 1935 में सरकारी नौकरी छोड़कर हिंदू महासभा, भोपाल की स्थापना की थी।

इसी भारतीय संविधान के निर्माता के तौर पर डॉ. भीमराव अंबेडकर मशहूर हैं। बाबा साहेब अंबेडकर की संविधान के निर्माण में भूमिका अतुल्य है। कई लोगों ने इस बाबत तमाम दलीलें दीं लेकिन डॉ. अंबेडकर के योगदान और भूमिका को भारतीय संविधान में नकारा नहीं जा सकता है। 14 अप्रैल, 1891 को बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर का जन्म हुआ था। भीमराव अंबेडकर को बचपन से भेदभाव का सामना करना पड़ा। हालांकि उन्होंने कठिनाइयों से हार नहीं मानी और 32 डिग्री हासिल की। एक कुशल अर्थशास्त्री रहे डॉ. बी. आर. अंबेडकर की जयंती के मौके पर जानें कि संविधान निर्माण में बाबा साहेब की क्या भूमिका है।[2]

बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पकार थे। आंबेडकर संविधान की ड्राफ्टिंग कमेटी के अध्यक्ष थे, जिसकी जिम्मेदारी संविधान का लिखित प्रारूप प्रस्तुत करना था। इस कमेटी में कुल 7

सदस्य थे। संविधान को अंतिम रूप देने में डॉ. आंबेडकर की भूमिका को रेखांकित करते हुए भारतीय संविधान की ड्राफ्टिंग कमेटी के एक सदस्य टी.टी. कृष्णमाचारी ने नवम्बर, 1948 में संविधान सभा के सामने कहा था। 'सम्भवतरू सदन इस बात से अवगत है कि आपने (ड्राफ्टिंग कमेटी में) में जिन सात सदस्यों को नामांकित किया है, उनमें एक ने सदन से इस्तीफा दे दिया है और उनकी जगह अन्य सदस्य आ चुके हैं। एक सदस्य की इसी बीच मृत्यु हो चुकी है और उनकी जगह कोई नए सदस्य नहीं आए हैं। एक सदस्य अमेरिका में थे और उनका स्थान भरा नहीं गया। एक अन्य व्यक्ति सरकारी मामलों में उलझे हुए थे और वह अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह नहीं कर रहे थे। एक–दो व्यक्ति दिल्ली से बहुत दूर थे और सम्भवतरू स्वास्थ्य की वजहों से कमेटी की कार्यवाहियों में हिस्सा नहीं ले पाए। सो कुल मिलाकर यही हुआ है कि इस संविधान को लिखने का भार डॉ. आंबेडकर के ऊपर ही आ पड़ा है। मुझे इस बात पर कोई संदेह नहीं है कि हम सब को उनका आभारी होना चाहिए कि उन्होंने इस जिम्मेदारी को इतने सराहनीय ढंग से अंजाम दिया है।"[3] उन्होंने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इसे सामाजिक न्याय, समानता और लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों पर आधारित किया।

संविधान सभा में मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में, अंबेडकर ने विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर गहन विचार–विमर्श किया और एक समावेशी संविधान तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने जाति आधारित भेदभाव को समाप्त करने, समानता के अधिकार को सुनिश्चित करने और दलितों व पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए विशेष प्रावधानों को शामिल करने पर जोर दिया। अनुच्छेद 14, 15, 17 और 21, जो समानता, छुआछूत उन्मूलन और जीवन के अधिकार को सुनिश्चित करते हैं, अंबेडकर के विचारों का ही परिणाम हैं। अंबेडकर ने आरक्षण नीति को संविधान में शामिल करने का समर्थन किया ताकि समाज के वंचित वर्गों को शिक्षा और रोजगार के अवसरों में समान भागीदारी मिल सके। साथ ही, उन्होंने नागरिक स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिए संवैधानिक प्रावधान बनाए। संविधान सभा में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि संविधान केवल एक कानूनी दस्तावेज नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति का साधन होना चाहिए। उन्होंने लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापित करने के लिए संविधान के तीन स्तंभों– विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच संतुलन बनाए रखने पर बल दिया। 26 नवंबर, 1949 को भारतीय संविधान को अंगीकार किया गया, और 26 जनवरी, 1950 को यह लागू हुआ। बाबा साहेब अंबेडकर ने इसे दुनिया का सबसे विस्तृत और न्यायसंगत संविधान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका योगदान केवल कानूनी ढांचे तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने भारत को एक समतामूलक समाज की ओर अग्रसर करने की नींव भी रखी।

बाबू राम सहाय विदिशा के प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी थे, जो जिले में आंदोलन की प्रमुख धुरी रहे। उनके घर में स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की गुप्त बैठकें होती थीं। 1942 के असहयोग आंदोलन और जेल भरो आंदोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वे संविधान सभा के सदस्य बने। भगवंतराव मंडलोई का जन्म 10 दिसंबर, 1892 को खंडवा में हुआ था। उन्होंने 1917 में वकालत शुरू की और 1957 के आम चुनाव में खंडवा विधानसभा क्षेत्र से विजयी होकर पंडित रविशंकर शुक्ल की कैबिनेट में मंत्री बने। विनायक सीताराम सरवटे का जन्म 1884 में इंदौर में हुआ था। वे मराठी स्वतंत्रता सेनानी, लेखक और राजनेता थे। संविधान सभा

के सदस्य के रूप में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1973 में इंदौर के मुख्य बस स्टैंड का नाम उनके सम्मान में विनायक सरवटे बस स्टैंड रखा गया। कैप्टन अवधेश प्रताप सिंह का जन्म 1888 में सतना जिले में हुआ था। उन्होंने 1921–1942 के बीच स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और लगभग चार वर्ष जेल में बिताए। उनके सम्मान में रीवा विश्वविद्यालय का नामकरण उनके नाम पर किया गया। राधावल्लभ विजयवर्गीय का जन्म 30 जनवरी, 1912 को राजगढ़ में हुआ था। स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी सक्रिय भूमिका के कारण अंग्रेजों ने उनके पिता को धमकियां दीं, जिससे उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी। स्वतंत्रता के बाद उन्हें संविधान सभा का सदस्य बनाया गया और 1957 में वे नरसिंहगढ़ से विधायक निर्वाचित हुए।

शंभूनाथ शुक्ल का महत्वपूर्ण योगदान था, जिनका जन्म 18 दिसंबर, 1903 को शहडोल में हुआ था। वे असहयोग आंदोलन में 1920 में सक्रिय रूप से शामिल हुए और बाद में 1952–1956 तक विंध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे। जब 1956 में विंध्य प्रदेश का विलय हुआ और नया मध्य प्रदेश बना, तो उन्होंने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। हरिविष्णु कामथ, जिनका जन्म 1907 में मंगलूर, कर्नाटक में हुआ था, ने 1933 में ICS परीक्षा पास की और नरसिंहपुर के कलेक्टर बने। वे सुभाषचंद्र बोस से त्रिपुरी कांग्रेस अधिवेशन के बाद मिले, जिसके कारण अंग्रेजों ने उन पर दबाव डाला और उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। बाद में वे संविधान सभा के सदस्य बने। फ्रेंक एंथोनी, जो एंग्लो–इंडियन समुदाय के प्रमुख नेता थे, 25 सितंबर, 1908 को जन्मे, जबलपुर से जुड़े थे और संविधान सभा के सदस्य बने। बृजराज नारायण, जो एक लेफ्टिनेंट कर्नल थे, ग्वालियर रियासत के प्रतिनिधि के रूप में संविधान सभा में शामिल हुए। सीताराम जाजू, जो 29 मई 1915 को नीमच जिले में जन्मे, स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े रहे और राम सहाय तिवारी छतरपुर रियासत के प्रतिनिधि के रूप में सभा में शामिल हुए। गोपीकृष्ण विजयवर्गीय, जो मध्य भारत के मुख्यमंत्री रहे और गुना से थे, संविधान सभा के सदस्य बने।

1948 की संवैधानिक प्रक्रिया में कई महत्वपूर्ण समयसीमाएँ थीं, जिन्होंने भारतीय संविधान के निर्माण में अहम भूमिका निभाई। 1946 में, ब्रिटेन ने भारत को स्वतंत्रता देने का निर्णय लिया और इसके साथ ही सत्ता हस्तांतरण की रूपरेखा पर चर्चा के लिए कैबिनेट मिशन को भारत भेजा। इसके बाद, 14 अगस्त, 1947 को समितियों के गठन का प्रस्ताव रखा गया, जो संविधान बनाने की प्रक्रिया का हिस्सा था। 29 अगस्त, 1947 को मसौदा समिति की स्थापना की गई, जिसका काम संविधान के प्रारूप को तैयार करना था। फिर, 6 दिसंबर, 1947 को संविधान सभा की बैठक बुलाई गई, और औपचारिक रूप से संविधान लिखने की प्रक्रिया शुरू की गई। 4 नवंबर, 1947 को ड्राफ्ट को अंतिम रूप देकर प्रस्तुत किया गया, और 1948–49 में संविधान सभा की बैठकें जनता के लिए खुली रखी गईं, जिससे आम लोगों को भी इस प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिला। भारतीय संविधान का निर्माण करने वाली संविधान सभा का गठन कैबिनेट मिशन द्वारा वर्ष 1946 को किया गया था। तथा संविधान सभा द्वारा इसे 26 नवंबर, 1949 को अंगीकार किया गया और 26 जनवरी, 1950 को पूरे भारत में इसे प्रभावी रूप से लागू किया गया। जब इसे लागू किया गया था, उस वक्ष्त इसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद, और 8 अनुसूचियां थी। जिसमें वर्तमान में 25 भाग, 448 अनुच्छेद, 12 अनुसूचियां हैं।4 26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा ने अंतिम मसौदा पारित किया, और यह आधिकारिक रूप से भारतीय संविधान का रूप लिया। इसके बाद, 26 जनवरी, 1950 को नया संविधान लागू हुआ, जो भारतीय लोकतंत्र की नींव बन गया।

भारत का संविधान, जो आज भी लागू है। इसे दुनिया के सबसे लंबे और सबसे विस्तृत संविधानों में से

एक माना जाता है। यह संविधान पश्चिमी कानूनी और संवैधानिक पद्धतियों पर आधारित है, और इसमें कई महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। इनमें से एक है केंद्रीय सरकार में अवशिष्ट शक्तियों के साथ एक संघीय प्रणाली, जो राज्यों और केंद्र सरकार के बीच शक्ति का वितरण करती है। संविधान में मौलिक अधिकारों की एक सूची भी है, जो नागरिकों को बुनियादी अधिकारों की सुरक्षा प्रदान करती है। इसके अलावा, संसदीय शासन प्रणाली है, जो ब्रिटिश प्रणाली से प्रभावित है, जिसमें संसद प्रमुख विधायी अंग होती है और प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख होता है।

संविधान के 75 वर्षों का जश्न मनाने के लिए मध्यप्रदेश सरकार 'हमारा संविधान–हमारा स्वाभिमान' अभियान चलाया गया। भोपाल में 'संविधान दिवस पद यात्रा' के साथ–साथ राज्यपाल की उपस्थिति में रवींद्र भवन में राज्य स्तरीय कार्यक्रम आयोजित किये गये। संविधान देश की एकता, न्याय और कर्तव्यों की भावना को मजबूत करता है, और इसे आमजन तक पहुंचाने के लिए यह पहल की जा रही है।

सन्दर्भ सूची :

1. 'पत्रिका', समाचार पत्र, 26 नवंबर, 2024, संविधान दिवस, संजना कुमार।
2. बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर यूनिवर्सिटी, हिंदी स्टडी मटेरिआ, पृ. सं.–1
3. संविधान सभा की बहस, खंड–7, पृ. सं.–231
4. www.bbau.ac.in
5. https://eparlib.nic.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 148–152

भारतीय संविधान–निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : उपनिवेशवाद, स्वाधीनता आंदोलन और लोकतांत्रिक विचारधारा का परिवर्तनीय संवाद

प्रो. जीवन कुमार साह
सहायक प्राध्यापक, इतिहास
डिग्री कॉलेज, जगन्नाथपुर (झारखंड)

सारांश :

भारतीय संविधान–निर्माण केवल एक राजनीतिक दस्तावेज की रचना नहीं थी, बल्कि यह भारत के औपनिवेशिक अनुभवों, स्वाधीनता संघर्ष की विचारधारा और लोकतांत्रिक चेतना के दीर्घ संवाद का परिणाम था। इस शोध का उद्देश्य उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का विश्लेषण करना है जिसके माध्यम से उपनिवेशवाद की दमनकारी शासन पद्धति ने भारतीय समाज में प्रतिवादी राजनीतिक चेतना को जन्म दिया, जिसने आगे चलकर लोकतंत्र, समानता और न्याय के सिद्धांतों को संविधान की बुनियाद बनाया। अध्ययन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के वैचारिक प्रवाह (1857 से 1947) में अंतर्निहित लोकतांत्रिक दृष्टियों – जैसे स्वराज, नागरिक अधिकार, सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व की संरचनात्मक भूमिका की पड़ताल करता है। साथ ही संविधान सभा की बहसों, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विधिक ढाँचों तथा भारतीय चिंतकों के योगदान के माध्यम से यह शोध यह स्पष्ट करता है कि भारतीय लोकतंत्र का स्वरूप यूरोपीय मॉडल से भिन्न अपनी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भूमि पर आधारित था।

बीज शब्द : भारतीय संविधान, उपनिवेशवाद, स्वाधीनता आंदोलन, लोकतंत्र, संविधान सभा, औपनिवेशिक विरासत, नागरिक अधिकार, सामाजिक न्याय, राष्ट्रनिर्माण।

प्रस्तावना :

भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया आधुनिक भारत के सबसे जटिल और ऐतिहासिक परिवर्तनों में से एक है। यह केवल स्वतंत्रता प्राप्त देश के प्रशासनिक ढाँचे की स्थापना का कार्य नहीं था, बल्कि यह उपनिवेशवाद के लंबे दमन से उभरते समाज की आत्म–अभिव्यक्ति थी। उपनिवेशकालीन शासन ने भारत में शासन, विधि, अधिकार और न्याय की अवधारणाओं को गहराई से प्रभावित किया परंतु उन्हीं अनुभवों से भारतीय जनता ने अपनी स्वतंत्र राजनीतिक पहचान गढ़ी। स्वाधीनता आंदोलन ने राष्ट्र को यह सिखाया कि राजनीतिक

स्वतंत्रता केवल औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति नहीं, बल्कि नागरिक अधिकारों, सामाजिक समरसता और लोकतांत्रिक सहभागिता की स्थापना है। 1946 से 1950 के बीच संविधान सभा ने इस ऐतिहासिक चेतना को संवैधानिक स्वरूप दिया। डॉ. भीमराव आंबेडकर, जवाहरलाल नेहरू और कन्हैयालाल मुंशी जैसे संविधान निर्माताओं ने परंपरा और आधुनिकता के संतुलन से ऐसा ढाँचा तैयार किया जो भारत की विविधता, सामाजिक असमानताओं और सांस्कृतिक गहराइयों को समाहित करता है। इस प्रकार भारतीय संविधान एक 'परिवर्तनीय संवाद' का प्रतीक है जिसमें उपनिवेशवाद द्वारा थोपे गए शासन तंत्र को चुनौती देते हुए स्वराज, लोकतंत्र और न्याय की भारतीय अवधारणा ने नया रूप ग्रहण किया। यह शोध उस ऐतिहासिक संवाद का विमर्शात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है जो औपनिवेशिक अनुभवों, राष्ट्रीय चेतना और लोकतांत्रिक मूल्यबोध के बीच निरंतर चलती प्रक्रिया के रूप में भारतीय संविधान के स्वरूप को निर्धारित करता है।

विश्लेषण :

इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य भारतीय संविधान–निर्माण की ऐतिहासिक प्रक्रिया को एक वैचारिक परिवर्तन और संवाद के रूप में समझना है, जहाँ उपनिवेशवाद, स्वाधीनता आंदोलन और लोकतांत्रिक विचारधाराएँ परस्पर अंतःक्रिया करती हुई दिखती हैं। संविधान निर्माण की इस प्रक्रिया का उद्देश्य था – उपनिवेशकालीन शासन के विधिक, प्रशासनिक और राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण करना, भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में विकसित लोकतांत्रिक विचारों जैसे स्वराज, समानता, अधिकार और सामाजिक–न्याय की भूमिका को संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि से जोड़ना। संविधान सभा की बहसों तथा विचारधाराओं के माध्यम से आधुनिक भारतीय राज्य के मूल्यों के स्वरूप को समझना। यह निर्धारित करना कि भारतीय संविधान का लोकतांत्रिक चरित्र पश्चिमी मॉडल से किस प्रकार भिन्न और भारतीय संदर्भों से किस प्रकार जुड़ा हुआ था। संविधान को एक 'परिवर्तनीय संवाद' के रूप में देखना, जिसमें ऐतिहासिक अनुभव, राजनीतिक संघर्ष और सामाजिक दृष्टि समाहित हैं।

ब्रिटिश शासन ने भारत में एक केंद्रीकृत प्रशासनिक ढाँचा स्थापित किया।[1] जो मूलतः उपनिवेश की आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा करता था। इस व्यवस्था में भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप का पूर्ण अनादर था। भारत सरकार अधिनियम 1935 ने प्रांतीय स्वशासन की प्रारंभिक रूपरेखा दी, लेकिन केंद्रीय सत्ता ब्रिटिश के पास ही बनी रही। इस प्रणाली ने "देशवासियों में स्वशासन की तीव्र माँग को जन्म दिया और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष को तेज किया।"[2] इस समय विश्व के राजनीतिक विचारों में लोकतंत्र, मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय का उदय हो रहा था, जिसने भारतीय नेताओं को प्रभावित किया। दरअसल 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद से ही भारतीय जनता में राजनीतिक जागरूकता बढ़ी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों ने स्वतंत्रता आंदोलन को नैतिक और व्यापक जनसमर्थन दिया। नेहरू, अंबेडकर, सुभाषचंद्र बोस जैसे नेताओं ने विभिन्न विचारधाराओं के साथ आजादी की लड़ाई को आगे बढ़ाया। स्वतंत्रता "भारतीयों को लोकतांत्रिक प्रशासन और न्यायिक स्वायत्तता की समझ दी। इस आंदोलन की प्रासंगिकता संविधान निर्माण में मौलिक अधिकारों, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक समरसता जैसे सिद्धांतों के समावेश के रूप में स्पष्ट होती है।"[3]

भारतीय संविधान की प्रस्तावना और उसकी संरचना में वैश्विक राजनीतिक विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है। जॉन लॉक के प्राकृतिक अधिकार, रूसो का जनसामान्य की संप्रभुता, तथा कार्ल मार्क्स के सामाजिक

समानता के सिद्धांत भारतीय संविधान निर्माताओं के लिए प्रेरणा स्रोत बने। ब्रिटिश लोकतंत्र से प्रेरित 'संविधान सभा' ने स्वतंत्रता के बाद विविध जातीय और सामाजिक समूहों के हितों का संतुलन करते हुए एक समावेशी और कठोर संवैधानिक व्यवस्था बनाई। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा की प्रारूप समिति की अध्यक्षता करते हुए "सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को संविधान में स्थापित किया।"[4] संविधान सभा के गठन में विभिन्न क्षेत्रों, समुदायों और विचारधाराओं के प्रतिनिधिमंडल ने मिलकर लगभग तीन वर्षों में भारतीय संविधान का मसौदा तैयार किया। कई बार बहसें, सुझाव और कई संशोधनों के बाद 26 नवंबर 1949 को संविधान अपनाया गया। इसमें 395 अनुच्छेद, 8 अनुसूचियाँ तथा प्रस्तावना शामिल थीं। 26 जनवरी 1950 को संविधान को लागू किया गया तथा – "भारत को एक संप्रभु, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया। इस प्रक्रिया में उपनिवेशवाद से आजादी, सामाजिक समावेशन, मौलिक अधिकार, एवं नीति निर्देशक सिद्धांतों का सम्मिलित समायोजन था।"[5]

उपनिवेशवाद, स्वाधीनता आंदोलन और लोकतांत्रिक विचारधारा का संवाद :

भारतीय संविधान इन तीन तत्वों के निरंतर संवाद का फल है। भारत में उपनिवेशवाद का आरंभ औद्योगिक क्रांति के दौर में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक वर्चस्व से हुआ, जिसने धीरे–धीरे राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था और संस्कृति में गहरा प्रवेश किया। ब्रिटिश शासन ने "भारतीय कृषि को नकदी फसलों की ओर मोड़ा जिससे ग्राम्य आत्मनिर्भरता का ह्रास हुआ। हस्तशिल्प उद्योगों के नष्ट होने से भारतीय उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और धन का 'ड्रेन ऑफ वेल्थ' यानी अपवहन हुआ।"[6] अब इस आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण के साथ–साथ अंग्रेजों ने प्रशासनिक ढांचे में पश्चिमी शिक्षा, विधि शासन और नौकरशाही व्यवस्था का समावेश किया। परिणामस्वरूप, भारतीय समाज में औपनिवेशिक आधुनिकता के प्रति एक द्वंद्वात्मक चेतना उत्पन्न हुई। एक ओर दमन का अनुभव था, दूसरी ओर नई शिक्षा ने स्वतंत्रता और अधिकारों की अवधारणा को जन्म दिया। इस दमन के विरुद्ध भारत में असहयोग तथा सत्याग्रह के रूप में महात्मा गांधी के नेतृत्व में जन–आंदोलन खड़े हुए। जलियाँवाला बाग हत्याकांड और नमक सत्याग्रह जैसे प्रसंगों ने साम्राज्यवाद के नैतिक औचित्य को चुनौती दी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान नेहरू, गांधी, बोस और पटेल जैसे नेताओं ने लोकतांत्रिक मूल्यों समानता, स्वराज, और नागरिक अधिकारों को भारतीय संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया। इन आंदोलनों ने भारतीय समाज में राजनीतिक भागीदारी की भावना को जगाया और यह स्वाधीनता संघर्ष लोकतंत्र के बीज बोने वाला चरण सिद्ध हुआ। इसके बाद ही भारतीय संविधान लागू हुआ, जिसे स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान विकसित लोकतांत्रिक आदर्शों का संस्थागत रूप कहा जा सकता है। संविधान में सार्वभौमिक मताधिकार, मौलिक अधिकार, न्यायतंत्र की स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा स्पष्ट रूप से परिलक्षित हैं। कहना न होगा कि यह संविधान उपनिवेशवाद–विरोध का घोषणापत्र भी था जिसने औपनिवेशिक शासन के दमनकारी ढाँचे को पूरी तरह अस्वीकार करके नागरिक केंद्रित शासन व्यवस्था अपनाई। इस संवाद ने लोकतंत्र को केवल शासन पद्धति नहीं बल्कि सामाजिक न्याय और समानता की जीवन–दृष्टि के रूप में परिभाषित किया।

उपनिवेशवादी अनुभवों ने संविधान निर्माताओं को सशक्त और स्वायत्त शासन की आवश्यकताओं से अवगत कराया – "स्वाधीनता आंदोलन ने जनसमूह के अधिकारों और राष्ट्रवाद की भावना को बुलंद किया। इसके साथ ही, लोकतांत्रिक और समाजवादी विचारधाराओं ने संविधान के माध्यम से सामाजिक अन्याय, जातिवाद, आरक्षण, और समान नागरिक अधिकारों के पक्ष में कदम उठाए।"[7] यह संवाद आज भी जीवंत है तथा

संविधान संशोधनों के माध्यम से नए सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तनों को अंगीकार करता है। जहाँ तक 'परिवर्तनशील संवाद' और उसके ऐतिहासिक, सामाजिक–सांस्कृतिक सम्बन्धों की बात है तो विशेष रूप से यह ज्ञात होना चाहिए कि "इस मोड़ पर उपनिवेशवाद ने दमन–शोषण–नियंत्रण के खिलाफ राष्ट्रीय चेतना जगाई, जिसके विलय से स्वाधीनता आंदोलन ने जन्म लिया और उसने लोकतांत्रिक व्यवस्था की मांग को जन–संग्रहीत बनाया।"[8] इसका प्रतिफल हुआ कि संविधान–निर्माण के 'संवाद' में परंपरा बनाम आधुनिकता, स्वदेशी मूल्यों और औपनिवेशिक विरासत के संतुलन, अल्पसंख्यक अधिकार और सामाजिक न्याय–कल्याण जैसे सूक्ष्म प्रश्न भी शामिल रहे। संविधान का परिवर्तनीय संवाद आज भी नए संशोधनों, न्यायिक और राजनीतिक–सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से गतिशील है।

संविधान निर्माण और उसका अनुपालन :

कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय संविधान–निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि गहरी जटिलताओं और बहुआयामी संवाद से निर्मित हुई जिसमें उपनिवेशवाद, स्वाधीनता आंदोलन और लोकतांत्रिक विचारधारा का अंतःसंबंध अत्यंत परिवर्तनीय था। ब्रिटिश उपनिवेशवादी राज्य का प्रशासनिक ढाँचा, कानूनी परंपरा और शासकीय तंत्र ने आधुनिक भारत में विधि–निर्माण के औपचारिक स्वरूप को परिचित कराया, किंतु यह औपनिवेशिक संरचना भारतीय जनाकांक्षाओं और स्वतंत्र राष्ट्रीय जीवन के आदर्शों के अनुरूप नहीं थी। यही विरोधाभास एक ओर ब्रिटिश संस्थागत ढाँचे की तकनीकी दक्षता और दूसरी ओर उसकी दमनकारी नीतियों के बीच, स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं को प्रेरित करता रहा कि वे एक ऐसी संवैधानिक संरचना गढ़ें जो औपनिवेशिक अवशेषों से मुक्त हो, परन्तु वह आधुनिक शासन के स्थायित्व, विधिक सुसंगति और प्रशासनिक क्षमता से संपन्न भी हो।

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान संविधान–निर्माण के बीज विचारात्मक रूप से अंकुरित होने लगे। गाँधी, नेहरू, पटेल, सुभाष चंद्र बोस और अन्य नेताओं ने स्वतन्त्र भारत की राज्य–व्यवस्था के स्वरूप पर विमर्श किया। गाँधी का ग्राम–स्वराज, नेहरू का समाजवादी दृष्टिकोण, बोस का प्रगतिशील राष्ट्रवाद– ये सभी विचार संविधान की बुनियादी दिशा पर गहरा प्रभाव डालते थे। कांग्रेस के अधिवेशनों, नेहरू रिपोर्ट (1928), अगस्त प्रस्ताव (1940) और कैबिनेट मिशन योजना (1946) जैसे औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रयास इस बात के उदाहरण हैं कि स्वाधीनता आंदोलन के राजनीतिक संघर्ष और संविधान–निर्माण के वैचारिक प्रारूप कैसे समानांतर विकसित हुए। लोकतांत्रिक विचारधारा भारत में प्रत्यक्ष रूप से आधुनिक पश्चिमी प्रभाव और अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय वैदिक–उपनिषदिक परंपराओं, बौद्ध–संगठनों और मध्यकालीन भक्ति–मत की समानतावादी भावना से पोषित हुई। औपनिवेशिक शिक्षा नीतियों के माध्यम से उद्‌भूत राजनीतिक चेतना ने नागरिक अधिकारों और भागीदारी के महत्व को स्पष्ट किया। परन्तु भारतीय लोकतंत्र की मान्यता केवल संस्थागत संरचना में सीमित नहीं रहीय यह विविधता में एकता, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक बहुलता को मूल सिद्धांत के रूप में ग्रहण करती रही।

संविधान सभा, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गठित हुई, इस ऐतिहासिक संवाद का परिणाम थी। इसमें विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं, प्रादेशिक आकांक्षाओं, जातीय एवं भाषायी विविधताओं का प्रतिनिधित्व था। डॉ. भीमराव आंबेडकर की अध्यक्षता वाली प्रारूप समिति ने एक पक्ष में ब्रिटिश संसदीय प्रणाली, अमेरिकी संघवाद, आयरिश निदेशक सिद्धांतों और फ्रांसीसी गणतंत्रवाद जैसे अंतरराष्ट्रीय प्रेरणास्रोतों को सम्मिलित किया, वहीं दूसरी ओर भारत की ऐतिहासिक अनुभव–सम्पदा को आधार बनाया।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान–निर्माण एक सतत् परिवर्तित होने वाले त्रि–स्तरीय संवाद का परिणाम था। उपनिवेशवाद का संस्थागत प्रभाव, स्वाधीनता आंदोलन की बहुस्तरीय वैचारिक चेतना, और लोकतांत्रिक विचारधारा का भारतीय समाज में अंतःस्थापन। यह संवाद स्थिर नहीं था, समय, राजनीतिक परिस्थितियों और सामाजिक दबावों के साथ इसके बिंदु बदलते रहे। संविधान ने उपनिवेशवादी औपचारिकता को आधुनिक स्वतंत्र राष्ट्र के आदर्शों में रूपांतरित किया, स्वाधीनता आंदोलन के सामाजिक–राजनीतिक संकल्पों को विधिक रूप दिया और लोकतांत्रिक विचारों को एक संस्थागत एवं नैतिक आधार प्रदान किया। इस प्रकार, भारतीय संविधान केवल एक विधिक दस्तावेज नहीं बल्कि एक ऐतिहासिक संलिप्तता और वैचारिक संश्लेषण का अद्वितीय उदाहरण है जिसने भारत की बहुलतावादी लोकतंत्र को स्थायित्व और दिशा प्रदान की।

संदर्भ ग्रन्थ सूची व टिप्पणी :

1. 1773 के विनियमन अधिनियम (रेगुलेटिंग एक्ट) से आरंभ माना गया है। रेगुलेटिंग एक्ट 1773, ब्रिटिश संसद द्वारा पारित एक महत्वपूर्ण कानून था जिसका उद्देश्य भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के सामने आने वाले प्रशासनिक मुद्दों और वित्तीय संकट का समाधान करना था। 1773 का रेगुलेटिंग एक्ट कंपनी के मामलों पर ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण की दिशा में पहला कदम था जिसने भारत में केंद्रीकृत प्रशासन की नींव रखी। यह अधिनियम कंपनी के कुप्रबंधन और वित्तीय संकट के समाधान हेतु, शासन और जवाबदेही सुधारों को लागू करने के लिए पारित किया गया था। 1773 के रेगुलेटिंग एक्ट ने कंपनी के प्रशासन की संरचना में परिवर्तन किए और भारत में औपचारिक ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की शुरुआत की।
2. सचिन कुमार जैन, भारतीय संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : विकास और प्रमुख तथ्य, टेक्स्टबुक पब्लिकेशन, 2023, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृ. सं. 42
3. राकेश कुमार जायसवाल, भारतीय संविधान की प्रस्तावना में निहित भारतीय मूल्य और दर्शन का विश्लेषणात्मक अध्ययन, 2022, ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts; January-June 2022 3(1) Page No: 886
4. Social Democracy As Conceived by Dr. B.R. Ambedkar under Indian Constitution https://www.ijfmr.com/papers/2024/4/26128.pdf
5. संविधान निर्माण की पृष्ठभूमि https://www.sanskritiias.com/hindi/current&affairs/background&of&constitution&making
6. उपनिवेशवाद का आर्थिक प्रभाव, "World Development" – University of Zürich Press.
7. Social Democracy As Conceived by Dr. B.R. Ambedkar under Indian Constitution https://www.ijfmr.com/papers/2024/4/26128.pdf
8. राजेश कुमार जायसवाल, पूर्वोद्धृत, पृ. सं. 889

संपर्क पता :

प्रो. जीवन कुमार साह

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, डिग्री कॉलेज, जगन्नाथपुर (झारखंड) 833203

मोबाइल नंबर : 62991 06499

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 153–161

संविधान में वाक अभिव्यक्ति के संदर्भ मे बॉलीवुड हिंदी सिनेमा का राजनैतिक परिपेक्ष्य : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. शिव कुमार, सहायक प्राध्यापक
मीडिया एवं संचार अध्ययन विभाग, बंसीलाल विश्वविद्यालय भिवानी।
रेणु, सहायक प्राध्यापक,
दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज्म,दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

सारांश :

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 19 (1) (क) के अंतर्गत सभी नागरिकों को वाक एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लेख किया गया है। वंही अनुच्छेद 19(1) (ख) राज्यों को कुछ विशेष अधिकारों पर युक्तियुक्त प्रतिबंध प्रदान किया गया है। संविधान की अभिक्ति की स्वतंत्रता में भारतीय प्रेस और सिनेमा की अभिव्यक्ति निहित है। भारत में फिल्मों की शुरुआत 1913 में दादा साहेब फाल्के दवारा निर्मित पहली मूक फिल्म राजा हरिश्चन्द्र से मानी जाती है। हिंदी सिनेमा की आरंभ 1931 में 'आलम आरा' आर्देशियन ईरानी द्वारा निर्देशित पहली संवाद फिल्म से हुआ है। फिल्मों के जन्मदाता धुंडीराज गोविंद फाल्के ने भारत में फिल्म जगत का बीज बोया। इस बीच को अंकुरित करने का कार्य आर्देशियन ईरानी की फिल्म आलम आरा ने किया। सिनेमा को हम समाज का दर्पण कहते हैं लेकिन समय और परिस्थितियों में साथ–साथ यह दर्पण अपना प्रतिरूप विशेष संदर्भ में बदलता रहता है। अपने जन्म के दौर में यह धार्मिक प्रवृत्तियों के इर्द–गिर्द केंद्रित होता था। इसी क्रम में बॉलीवुड सिनेमा भी मनोरंजन के साथ–साथ व्यवसायिक रूप में विकासशील दौर में प्रवेश करता है। इससे पश्चात सिनेमा ने ग्लैमर की दुनिया में प्रवेश किया। वर्तमान में सिनेमा का स्वरूप राजनीतिक परिपेक्ष्य से ओत–पोत नजर आने लगा है। इस शोध का स्वरूप मात्रात्मक है। इसके आंकड़े व परिणाम संख्या आधारित है।

भारत में बॉलीवुड फिल्मों का प्रयोग राजनीतिक विचारधारा का समाज में प्रसार के लिए बेहतरीन औजार के रूप में किया जाता है। इस अध्ययन में 'कल्टीवेशन सिद्धांत' (उत्पादन व विकास सिद्धांत) का प्रयोग समाज में सूचनाओं का संप्रेषण करने के लिए किया जाता है। इस शोध अध्ययन में 2023 में प्रदर्शित फिल्मों का राजनीतिक संदर्भ में हम गूगल प्रश्नावली के माध्यम से डेटा संकलन करते हुए बॉलीवुड फिल्मों का राजनैतिक संदर्भ में अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन में हरियाणा राज्य को शोध क्षेत्र के रूप में चयनित किया

गया है। इनमें हरियाणा के 18 से 30 आयु–वर्ग के युवाओं को सैंपलिंग के रूप में चयनित किया गया है। इस अध्ययन में उत्तरदाताओं की संख्या 100 निर्धारित की गई है, जिसमें छात्र छात्राओं का अनुपात समानुपातिक रूप से निर्धारित किया गया है। इस अध्ययन में हमने शोध की 'सर्वेक्षण विधि' के द्वारा डाटा संकलित करने के लिए सिंपल 'रैंडम सैंपलिंग' का प्रयोग किया गया है।

मूल शब्द – बॉलीवुड सिनेमा, राजनीतिक संचार, हिंदी सिनेमा, राजनीतिक एजेंडा।

भूमिका –

हिंदी सिनेमा आधुनिक समय का सबसे महत्वपूर्ण और शक्तिशाली संचार का माध्यम है। अपने अस्तित्व को सो वर्षो में सिनेमा ने मानव जीवन के सभी पहलुओं को जैसे कि प्रेम, अपराध, सामाजिक–राजनीतिक, राष्ट्रभक्ति, अच्छाई–बुराई तथा मानव की भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

वर्तमान में सिनेमा ने संचार माध्यम के रूप में 'वसुदेव कुटुम्बकम्' और विल्बर श्राम की ग्लोबल विलेज की अवधारणा को चिरतार्थ किया है। सिनेमा का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक प्रभाव सार्वभौमिक हो गया। पहले सिनेमा देखने के हकदार कुछ ऊंचे तथा आधिपत्य वर्ग के लोग ही थे। लेकिन समय के साथ–साथ तकनीकी क्रांति तथा विभिन्न कारकों के कारण आम आदमी को भी समय निकालकर सिनेमा देखने का अवसर प्राप्त हुआ।

सिनेमा एक लोकप्रिय माध्यम के रूप व मनोरंजन के साधन के रूप में अपना अस्तित्व स्थापित करने में सफल रहा। इसकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी रहा कि समाज के अशिक्षित वर्ग की मुद्रण माध्यमों तक पहुँच सुनिश्चित न होना। सिनेमा गरीब व मध्यम वर्ग को प्रतिदिन की जिंदगी से कुछ समय के लिए ख्याली दुनिया में ले जाकर राहत प्रदान करने लगा है।

सिनेमा घरों से वीडियो केसेट के आगमन से घर में ही सिनेमा देखना आसान हो गया। दर्शक वर्ग अपनी निजी परेशानियों को भूलकर नायक व नायिका के रूप में स्वयं को देखते हुए एक आभासी दुनिया में पहुँच जाते थे।

सिनेमा आम आदमी के मनोरंजन के एकमात्र साधन के रूप में टेलीविजन के छोटे पर्दे व सिनेमा के बड़े पर्दे पर लोकप्रियता प्राप्त करता रहा है। सिनेमा ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने या मनोरंजन के उद्देश्य से बनाया गया। जिसके कारण सिनेमा में हिंसा, अश्लीलता, नग्गता खुलापन आदि सामग्री को संप्रेषित किया जाने लगा। दूसरा पक्ष इसका यह रहा कि सिनेमा से लोगों पर नकारात्मक प्रभाव डाले गए। जिसके कारण लोग पलायन वादी हो रहे हैं। लोग सच्चाई का सामना करने से कतराते हैं।

सिनेमा के कारण भारत का युवा–वर्ग दिग्भर्मित हो रहा है। इसके दूसरे पक्ष के रूप में सिनेमा को नैतिकता और सामाजिक व्यवस्था की अच्छाईयों को नापने के रूप में देखा जाता है। सिनेमा के दूरगामी प्रभावों को नकारा नहीं जा सकता। इसके लिए सेंसरशिप और रेटिंग की व्यवस्था शुरू हुई है। सिनेमा के इन दूरगामी प्रभावों को आंकड़ों के लिए जितना गहन अध्ययन होना चाहिए। उतना आज तक नहीं हुआ है यदि सिनेमा और भारतीय समाज के संबंधों के बारे में जानना हो तो भारतीय सिनेमा को गहराई से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

सिनेमा के लगभग 100 वर्ष पूरे होने के अवसर पर यह देखा जा सकता है कि सिनेमा अपने अस्तित्व

अर्थात जन्म के समय कंहा था और किस तरह की सामग्री समाज को संप्रेषित कर रहा था और वर्तमान में यह कहाँ खड़ा है और विषयवस्तु के मामले में किस और जा रहा है। भारतीय सिनेमा के संदर्भ में यह अध्ययन किया जा सकता है कि फिल्म निर्माता आम जनता की पसंद को बिगाड़ रहे हैं। क्या सिनेमा मैं फिल्मों के दर्शकों की सोच, उनके विचार और उनकी समझ को प्रभावित कर रहा है।

सिनेमा की भूमिका मनोरंजन के माध्यम के रूप में ही विद्यमान हैं या फिल्म की कहानी और घटनाओं के माध्यम से किसी एजेंट के तहत विभिन्न विचारधाराओं, संदेशों और विचारों को भी सिनेमा के रूप में संप्रेषित किया जा रहा है। 1895 में सिनेमा का आरंभ होने के साथ ही संचार माध्यम एक सामाजिक संगठन के रूप में स्थापित हो गया था। सिनेमा कला का अर्थ और समाज की कुल शक्ति का मिला–जुला प्रदर्शन होने के कारण एक महत्वपूर्ण सामाजिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आया है।

शोध के उदेश्य :

- बॉलीवुड सिनेमा की राजनीतिक स्वरूप का विश्लेषण करना।
- वर्ष 2023 की चयनित फिल्मों में निर्देशित संदेश और विचारधाराओं को परिभाषित करना।
- बॉलीवुड सिनेमा का युवाओं के मतदान व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन करना। वर्ष 223 की हिंदी फिल्मों को राजनीतिक दृष्टिकोण को संदर्भित करने वाले कारकों का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना –

- वर्ष 2023 की फिल्मों को राजनीतिक केंद्र निर्मित किया जाता है।
- वर्तमान हिंदी सिनेमा समाज के मूल उद्देश्य व संरचना को आईना दिखाने का काम करता है।

शोध की सीमाएं –

- राजनीति केंद्रित फिल्मों के साथ–साथ सिनेमा द्वारा संचालित संदेशों का अध्ययन करना शामिल है।
- इस अध्ययन में हरियाणा राज्य ये 100 युवाओं को उत्तरदाता के रूप में चयनित किया गया है।
- इस अध्ययन में शोध क्षेत्र के रूप में केवल हरियाणा राज्य को चयनित किया गया है।
- इस अध्ययन में से युवाओं में से 50 लड़के और 50 लड़कियों को समानुपातिक रूप से शामिल किया गया है।

शोध विधि –

प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि के माध्यम से प्रश्नावली के द्वारा उत्तर डाटा संग्रहण किया गया है। इस अध्ययन में ऑनलाइन गूगल प्रश्नावली के माध्यम से उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया को जानने का प्रयास किया गया है। इस शोध विधि के द्वारा आंकड़ों को प्राथमिक रूप संग्रहित किया गया है।

सेम्पलिंग चयन – इस शोध अध्ययन में सिम्पल रेंडम सैंपलिंग के माध्यम से सैंपलिंग चुनाव किया गया है। इसके अतिरिक्त नॉन रेंडम सैंपलिंग के सुविधा अनुसार सैंपलिंग तकनीक का भी नमूना चयन के लिए प्रयोग किया गया है।

सैद्धांतिक ढांचा – इस शोध अध्ययन में हम जॉर्ज गवर्नर द्वारा 1976 में टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव के लिए किए गए शोध कार्य में प्रयोग कल्टिवेशन सिद्धांत (उत्पादन व छवि निर्माण) का प्रयोग किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार दर्शकों पर दीर्घकालीन प्रभाव की बात की जाती है। मनुष्य जनसंचार के संदेशों के

अनुरूप अपने परिवेश को देखने व समझने लगता है। वैसे तो मनुष्य अपने अनुभव तथा आसपास के पर्यावरण के अनुरूप सीखता है।

इस सिद्धांत के अनुसार जनसंचार अपनी प्रभावी भूमिका निभाते हुए मनुष्य के अनुभवों पर हावी हो जाता है। सिनेमा संचारकर्ता द्वारा निर्मित काल्पनिक जगत् होता है। दर्शक उसके आधार पर ही वास्तविक जगत की तस्वीर बना लेते हैं।

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य भी दर्शकों के विचार, मतदान व्यापार पर फिल्मों के प्रभाव का आकलन करना है। कल्टीवेशन सिद्धांत में कृषि पैदावार की भाँति सूचनाओं का प्रसार जनसंचार माध्यमों के द्वारा इस प्रकार किया जाता है जैसे खेतों में बीजों का बिखराव करके अच्छी पैदावार प्राप्त की जाती है। इसी प्रकार वर्तमान फिल्मों में निर्धारित और निश्चित सामग्री का प्रसार करके मतदान में मतदाता से वोट प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

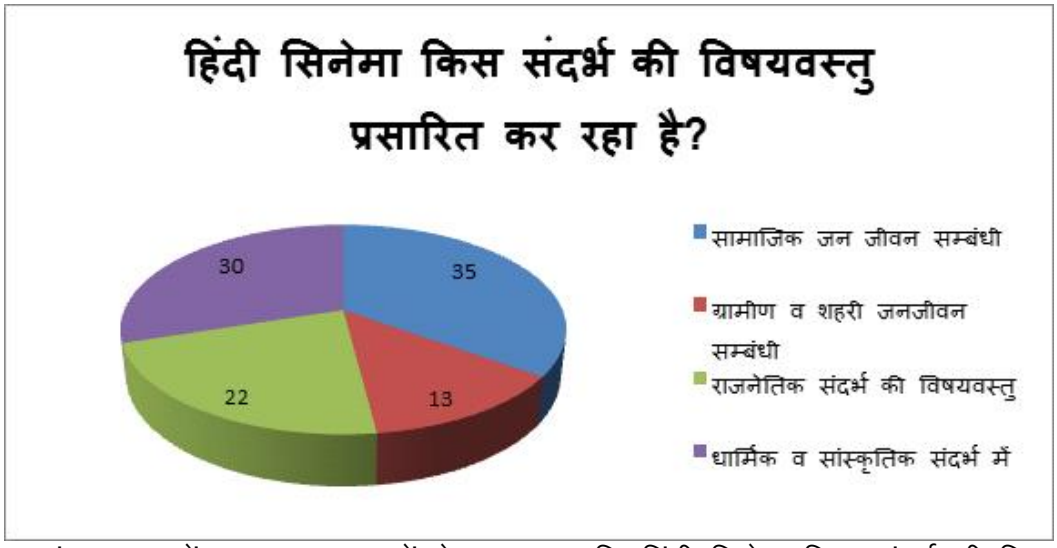

प्रश्न संख्या एक में जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि हिंदी सिनेमा किस संदर्भ की विषयवस्तु प्रसारित कर रहा है। तो 35 उत्तरदाताओं का जवाब था सामाजिक जीवन से संबंधित इसके अतिरिक्त 13 उतरदाताओं का जवाब रहा ग्रामीण व शहरी जनजीवन के संदर्भित विषय वस्तु, इसके पश्चात 22 उत्तरदाताओं का जवाब राजनीतिक संदर्भ की विषय वस्तु पर आधारित कर रहा है तथा 29 का जवाब धार्मिक व सांस्कृतिक संदर्भ की विषय वस्तु रहा।

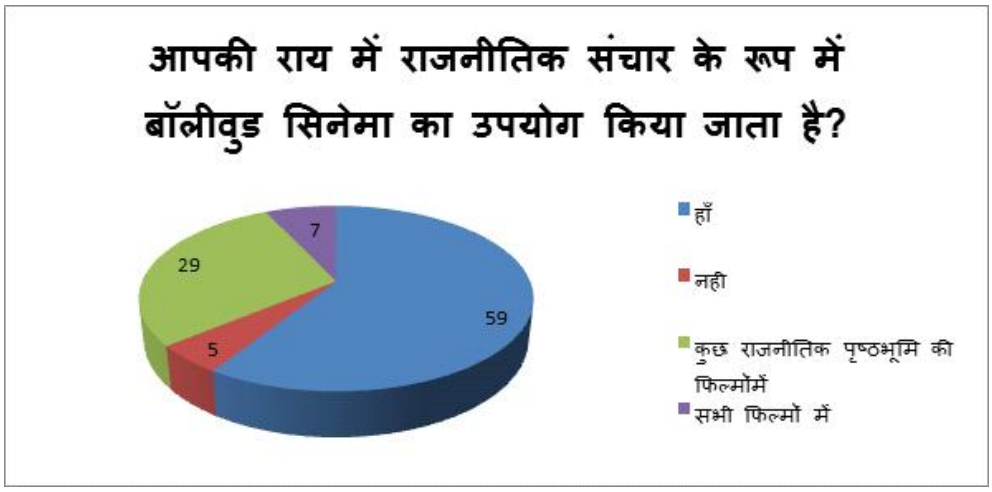

प्रश्न संख्या दो के संदर्भ जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि आपकी राय में राजनीतिक संचार के रूप में बॉलीवुड सिनेमा का उपयोग किया जाता है। तो इस प्रश्न के उत्तर में 59 व्यक्तियों के जवाब हाँ में रहा। जबकि 05 व्यक्तियों का जवाब नहीं रहा। 29 उत्तरदाताओं का जवाब कुछ राजनीतिक पृष्ठभूमि की फिल्मों में रहा। इसके अतिरिक्त सात व्यक्तियों का जवाब सभी बॉलीवुड फिल्मों में रहा।

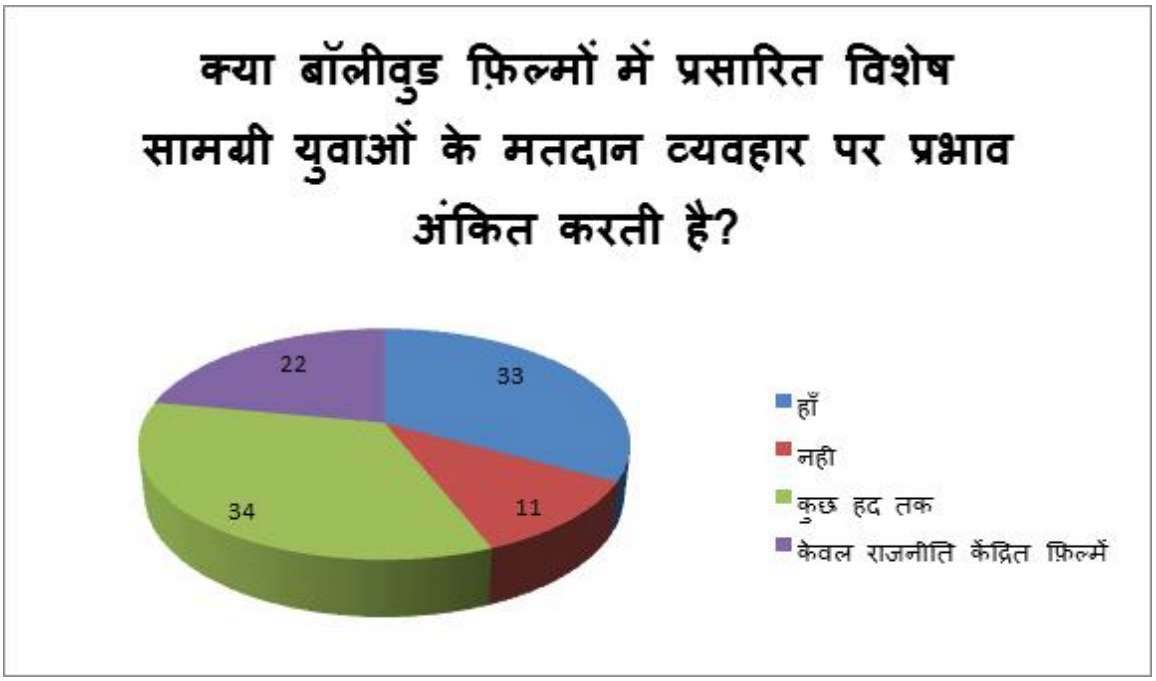

प्रश्न संख्या तीन के संदर्भ में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि क्या बॉलीवुड फिल्मों में प्रसारित विशेष सामग्री की युवाओं के मतदान व्यवहार पर प्रभाव अंकित करता है तो 33 व्यक्तियों का जवाब हाँ के रूप में रहा तथा 11 व्यक्तियों का जवाब नहीं के रूप में रहा तथा 34 व्यक्तियों का जवाब कुछ हद तक रहा तथा 22 व्यक्तियों के जवाब केवल राजनीतिक केंद्रित फिल्मों के संदर्भ में रहा।

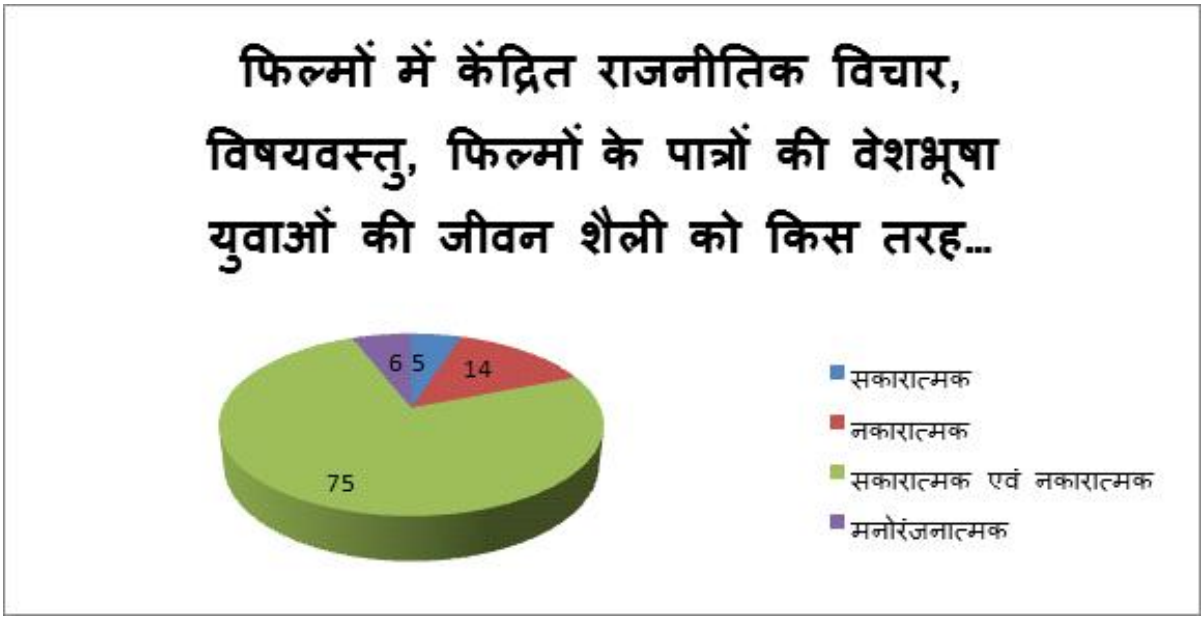

प्रश्न संख्या चार के संदर्भ में जब उत्तरदाताओं से प्रश्न पूछा गया कि फिल्मों में केंद्रित राजनीतिक विचार विषयवस्तु फिल्मों के पात्रों की वेशभूषा युवाओं की जीवन शैली को किस तरह प्रभावित करती है तो पांच व्यक्तियों का जवाब सकारात्मक रूप से, 14 व्यक्तियों का जवाब रहा नकारात्मक रूप से, 75 व्यक्तियों का जवाब सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों में रहा। इसके अतिरिक्त केवल छह व्यक्तियों का जवाब मनोरंजनात्मक रूप से रहा।

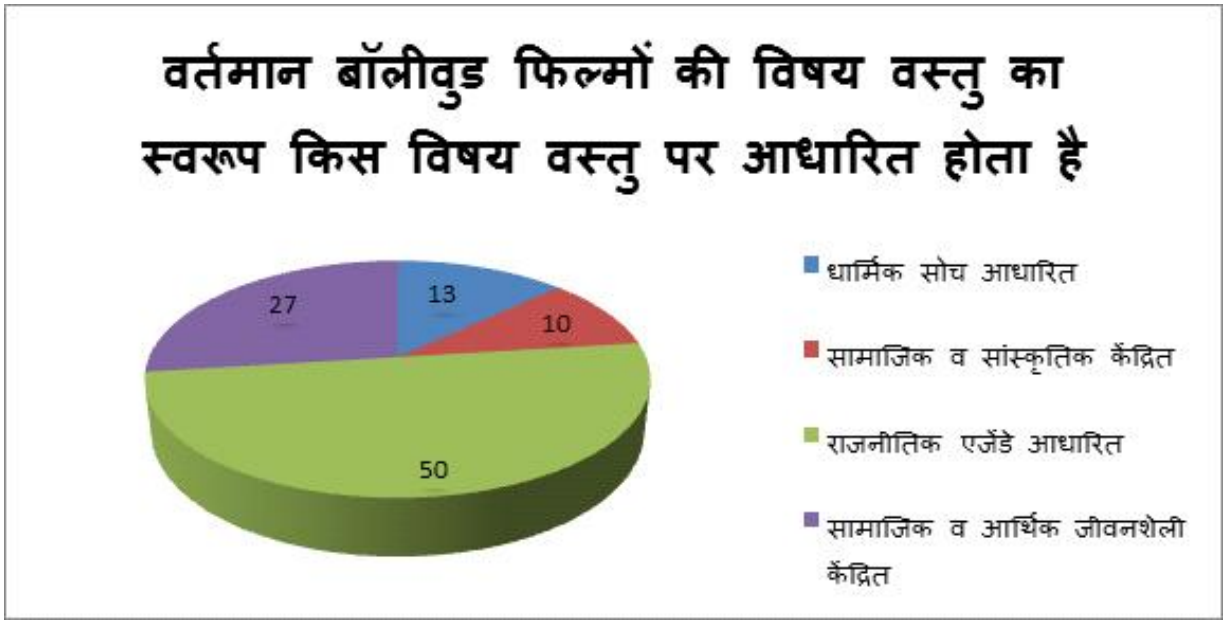

प्रश्न संख्या पाँच के संदर्भ में जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि वर्तमान बॉलीवुड फिल्मों की विषय वस्तु का स्वरूप किस विषय वस्तु पर आधारित होता है तो 13 व्यक्तियों का जवाब धार्मिक सोच आधारित,10 व्यक्तियों का जवाब रहा सामाजिक व सांस्कृतिक केंद्रित, 50 व्यक्तियों का जवाब रहा राजनीतिक एजेंडे पर आधारित तथा 27 व्यक्तियों का जवाब रहा सामाजिक व आर्थिक जीवनशैली केंद्रित।

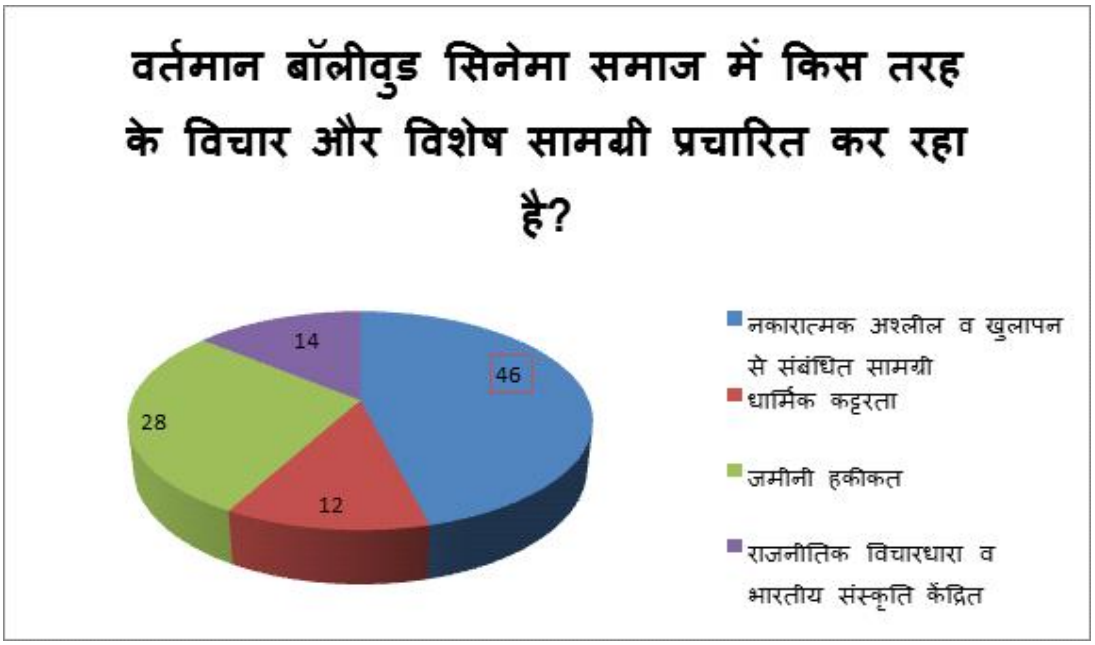

प्रश्न संख्या छह में जब उत्तरदाताओं से प्रश्न किया गया कि वर्तमान बॉलीवुड सिनेमा समाज में किस तरह के विचार और विशेष सामग्री प्रचारित कर रहा है तो 46 व्यक्तियों का जवाब नकारात्मक अश्लील व खुलापन से संबंधित सामग्री रहा। 12 व्यक्तियों का जवाब धार्मिक कट्टरता रहा तथा 28 व्यक्तियों का जवाब जमीनी हकीकत रहा। इसके अतिरिक्त केवल 14 व्यक्तियों के जवाब राजनीतिक विचारधारा व भारतीय संस्कृति केंद्रित रहा।

प्रश्न संख्या सात के संदर्भ में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि वर्तमान बॉलीवुड हिंदी सिनेमा में प्रचारित विषयवस्तु के लिए किस तरह के कारक उत्तरदायी है तो 73 व्यक्तियों का जवाब था दर्शकों की सोच व मांग पर आधारित विषयवस्तु प्रसारित की जाती है। इसके अतिरिक्त 27 व्यक्तियों पर जवाब रहा दर्शकों को केवल एक मतदाता के रूप में देखकर फिल्मों की विषय सामग्री का चयन किया जाता है।

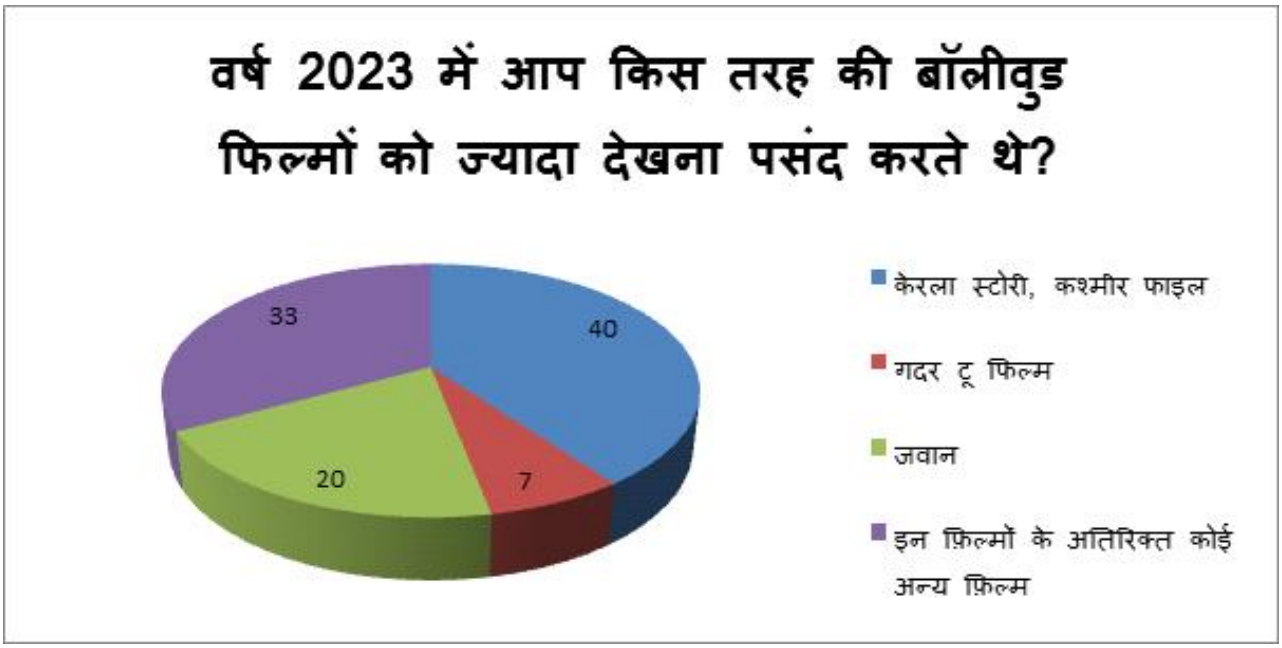

प्रश्न संख्या आठ के संदर्भ में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि वर्ष 2023 में आप किस तरह की बॉलीवुड फिल्मों को ज्यादा देखना पसंद करते है तो 40 व्यक्तियों का जवाब रहा केरला स्टोरी, कश्मीर फाइल जैसी फिल्में देखना पसंद करेंगे। इसके अतिरिक्त सात व्यक्तियों का जवाब रहा गदर टू फिल्म तथा 20 व्यक्तियों का जवाब था जवान फिल्म इसके अतिरिक्त 33 व्यक्तियों का जवाब इन फिल्मों के अतिरिक्त कोई अन्य फिल्म देखना अधिक पसंद करेंगे रहा।

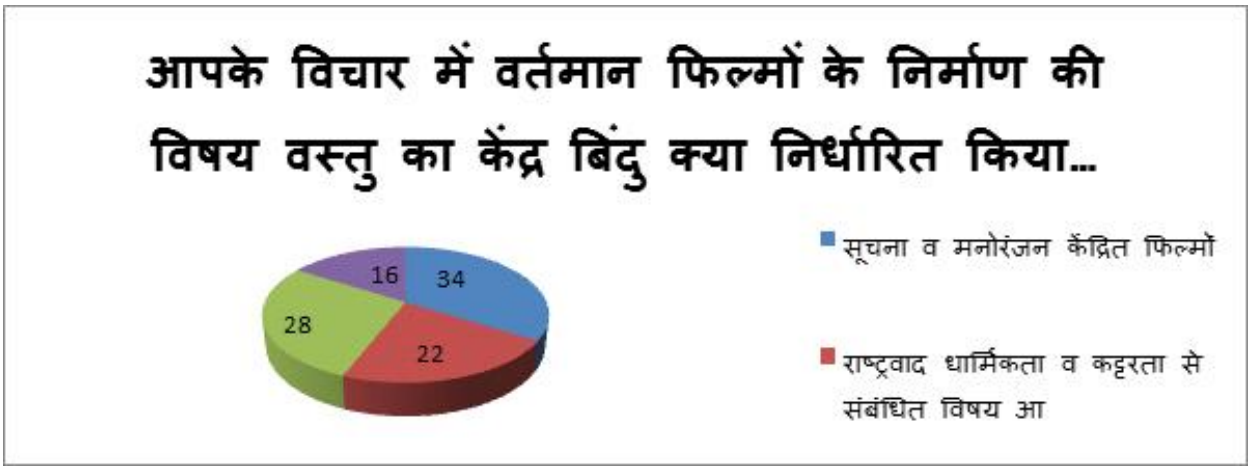

प्रश्न संख्या नौ के संदर्भ में जब उतरदाताओं से पूछा गया कि आपके विचार में वर्तमान फिल्मों के निर्माण की विषय वस्तु का केंद्र बिंदु क्या निर्धारित किया जाता है तो 34 व्यक्तियों का जवाब रहा सूचना व मनोरंजन केंद्रित फिल्मों का निर्माण किया जाता है। इसके अतिरिक्त 22 व्यक्तियों का जवाब रहा राष्ट्रवाद धार्मिकता व कट्टरता से संबंधित विषय आधारित फिल्में बनाई जाती है। इसके साथ ही 28 व्यक्तियों का जवाब रहा सामाजिक ताना–बाना व भारतीय संस्कृति से संबंधित विषयवस्तु को केंद्र में रखकर फिल्मों का निर्माण किया जाता है। इसके अलावा 16 व्यक्तियों का जवाब था कोई अन्य विषय केंद्र में रखकर वर्तमान फिल्मों का निर्माण किया जाता है।

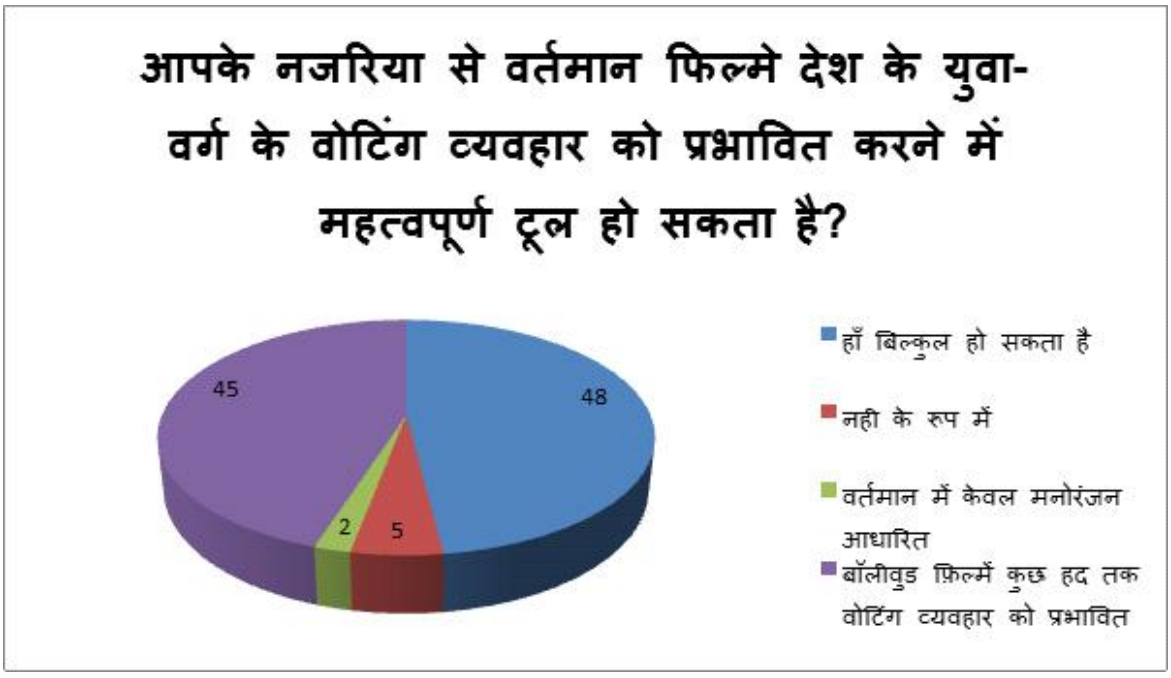

प्रश्न संख्या 10 के संदर्भ में जब उत्तरदाताओं से यह प्रश्न पूछा गया कि आपके नजरिया से वर्तमान फिल्मे देश के युवा–वर्ग के वोटिंग व्यवहार को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण टूल हो सकता है तो 48 व्यक्तियों पर जवाब हाँ बिलकुल हो सकता है रहा जबकि पांच व्यक्तियों का जवाब नहीं के रूप में रहा तथा दो व्यक्तियों का जवाब रहा कि वर्तमान में केवल मनोरंजन आधारित फिल्मे होती है तथा 45 व्यक्तियों को मानना था कि बॉलीवुड फिल्में कुछ हद तक वोटिंग व्यवहार को प्रभावित करती है।

परिचर्चा –

अधिकतर बॉलीवुड फिल्में सामाजिक जनजीवन से सम्बंधित विषयवस्तु समाज में सम्प्रेषित करते है। अधि ाकतरहिंदी फिल्में राजनीतिक संचार के रूप में उपयोग की जाती है। आधुनिक समाज में फिल्में युवाओं के मतदान व्यवहार पर कुछ हद तक प्रभाव अंकित करती है। फिल्मो में दिखाए गए दृश्य समाज के युवा वर्ग पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव डालते है।

आधुनिक फिल्मों की विषयवस्तु राजनेतिक एजेंडे को केंद्र में रखकर निर्मित की जाती है। बॉलीवुड सिनेमा वर्तमान समाज में विषय सामग्री और विचार नकारात्मक अश्लीलपूर्ण व खुलेपन से सम्बंधित होती है। वर्तमान बॉलीवुड फिल्मों की विषयवस्तु में महत्वपूर्ण दर्शक ज्यादातर राजनेतिक एजेंडे से सम्बंधित फिल्में देखना पसंद करते है। बॉलीवुड की ज्यादातर फिल्में सामाजिक ताना–बाने और भारतीय संस्कृति से सम्बंधित होती है।

सुझाव –

- इस विषय में गुणात्मक शोध पद्धति के अंतर्गत साक्षात्कार का आयोजन करके बेहतरीन परिणाम प्राप्त किए जा सकते थे।
- प्रतिवर्ष भारत में 1000 से अधिक बॉलीवुड फिल्में निर्मित की जाती है। इस अध्ययन के अनुसार केवल चार फिल्मों चुना गया है। फिल्म की संख्या बढ़ाकर इसके बेहतरीन परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।
- इस अध्ययन में संख्यात्मक रूप से आंकड़ों का संग्रहण किया गया है। भविष्य में गुणात्मक शोध आयोजित करके बेहतरीन परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।
- शोध क्षेत्र को विस्तृत करके हरियाणा राज्य के अलावा अन्य राज्यों को भी अंदर में शामिल करके बेहतरीन शोध परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. मृतुंजय, हिंदी सिनेमा का सच, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
2. कुमार हरीश, सिनेमा और साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. विनोद भारद्वाज, सिनेमा कल आज और कल, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
4. अजय ब्रह्मात्मज, सिनेमा समकालीन सिनेमा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. सविता भाखरी, हिंदी सिनेमा और दिल्ली, प्रवीण प्रकाशन नई दिल्ली।
6. मृतुंजय, हिंदी सिनेमा का सच, समकालीन सर्जन, कोलकाता।
7. सिनेमा वक्त के आईने में, डॉ राजेंद्र सहगल, संजय प्रकाशन नई दिल्ली।
8. बिजेश्वर मतदान, नया सिनेमा, आयन प्रकाशन नई दिल्ली।
9. मिश्रा, भारतीय मीडिया और जनसंचार प्रकाशन नई दिल्ली।

ईमेल– shivkumar8536@gmail.com, ईमेल–Renuranga77@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 162–167

भारतीय संविधान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और वर्तमान परिदृश्य

शैलेन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी,
राजकीय महिला महाविद्यालय बांगर, कन्नौज।

सारांश :-

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19(1)(a) हर नागरिक को अपनी राय और विचारों को बिना किसी डर के व्यक्त करने की आजादी प्रदान करता है, जो हमारे देश के लोकतांत्रिक मूल्यों की नींव है। यह अधिकार न केवल बोलने या लिखने तक सीमित है, बल्कि प्रेस, डिजिटल प्लेटफॉर्म और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति तक फैला हुआ है। हालांकि, अनुच्छेद 19(2) राज्य को राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और अन्य आधारों पर उचित प्रतिबंध लगाने की अनुमति देता है। इस शोध पत्र में हम इस अधिकार के संवैधानिक आधार, ऐतिहासिक विकास, प्रमुख न्यायिक फैसलों और वर्तमान चुनौतियों का गहन विश्लेषण करेंगे। विशेष रूप से, 2023 से 2025 तक की घटनाओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए, जैसे राजद्रोह कानून के नए रूप, इंटरनेट शटडाउन, पत्रकारों पर हमले और सरकारी सेंसरशिप, हम देखेंगे कि कैसे ये अभिव्यक्ति को प्रभावित कर रही हैं। सरकार की भूमिका में डिजिटल नियमों के माध्यम से नियंत्रण और कानूनी दुरुपयोग प्रमुख हैं। अंत में, हम न्यायपालिका की सक्रियता, नीतिगत सुधार और अंतरराष्ट्रीय मानकों के पालन जैसे सुझावों पर विचार करेंगे, ताकि यह अधिकार मजबूत बना रहे। यह विश्लेषण दिखाता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता न केवल व्यक्तिगत अधिकार है, बल्कि सामाजिक न्याय और प्रगति का आधार भी है।

परिचय :

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता किसी भी सभ्य समाज का मूलभूत तत्व है, जो व्यक्तियों को अपनी सोच, भावनाओं और विश्वासों को स्वतंत्र रूप से साझा करने की शक्ति देता है। यह अधिकार लोकतंत्र को जीवंत बनाता है, क्योंकि इससे आलोचना, बहस और नवाचार संभव होते हैं। भारतीय संविधान, जो 26 नवंबर 1949 को अपनाया गया और 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ, ने इस अधिकार को अनुच्छेद 19(1)(a) में स्पष्ट रूप से जगह दी : 'सभी नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होगा।'[1] यह प्रावधान अमेरिकी संविधान के पहले संशोधन से प्रेरित है, लेकिन भारतीय संदर्भ में यह सामाजिक समानता, अहिंसा और बहुलवाद से जुड़ा हुआ है। संविधान सभा की बहसों में डॉ. बी.आर. आंबेडकर ने जोर दिया कि यह अधिकार प्रेस की

स्वतंत्रता, साहित्यिक रचनाओं, राजनीतिक विमर्श और यहां तक कि विरोध प्रदर्शनों को भी कवर करता है, ताकि सरकार की मनमानी रोकी जा सके।

हालांकि, यह अधिकार निरपेक्ष नहीं है। अनुच्छेद 19(2) राज्य को 'उचित प्रतिबंध' लगाने की अनुमति देता है, जो भारत की संप्रभुता, सुरक्षा, विदेशी संबंधों, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता, नैतिकता, न्यायालय की अवमानना, मानहानि या अपराध को उकसाने के हित में हो सकते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने इन प्रतिबंधों की व्याख्या में 'उचितता' को परिभाषित किया है, जिसमें समानुपातिकता (Proportionality), आवश्यकता (Necessity) और न्यूनतम हस्तक्षेप (Minimal Interference) के सिद्धांत शामिल हैं। यदि कोई प्रतिबंध इन मानकों पर खरा नहीं उतरता, तो वह असंवैधानिक माना जाता है।

वर्तमान डिजिटल युग में, जहां सोशल मीडिया, एआई–आधारित प्लेटफॉर्म और वैश्विक संचार माध्यम प्रमुख हैं, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ने नए आयाम प्राप्त किए हैं। लोग अब ट्विटर (अब एक्स), फेसबुक और इंस्टाग्राम जैसे माध्यमों से अपनी राय साझा करते हैं, जो राजनीतिक आंदोलनों को गति देता है। लेकिन यही माध्यम चुनौतियां भी लाते हैं, जैसे फेक न्यूज, घृणा भाषण और साइबर उत्पीड़न। 2023 से 2025 तक भारत में अभिव्यक्ति पर बढ़ते दबाव दिखाई देते हैं। अंतरराष्ट्रीय संगठनों की रिपोर्ट्स, जैसे फ्रीडम हाउस और रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स, में भारत की प्रेस फ्रीडम इंडेक्स में गिरावट दर्ज की गई है, जो 2025 में 151वें स्थान पर पहुंच गई।[3] सरकारी नीतियां, जैसे आईटी नियम 2021 के संशोधन और इंटरनेट शटडाउन, ने अभिव्यक्ति को सीमित किया है। उदाहरणस्वरूप, 2024 में मणिपुर और जम्मू–कश्मीर में लंबे शटडाउन ने सूचना के प्रवाह को रोका।[4] सरकार का तर्क राष्ट्रीय सुरक्षा का होता है, लेकिन आलोचक इसे असहमति दबाने का माध्यम मानते हैं।

यहाँ हम इन पहलुओं का विस्तृत विश्लेषण करेंगे, जिसमें संवैधानिक प्रावधानों से लेकर वर्तमान घटनाओं तक सब शामिल होगा। हम देखेंगे कि कैसे न्यायपालिका ने इस अधिकार की रक्षा की है, लेकिन सरकारी हस्तक्षेप ने इसे कमजोर किया है। इस बात पर भी चर्चा करेंगे कि कैसे हम इस अधिकार को मजबूत कर सकते हैं, ताकि भारत एक सच्चा लोकतंत्र बना रहे।

संवैधानिक प्रावधान :

भारतीय संविधान के भाग III में मौलिक अधिकारों का वर्णन है, जो अनुच्छेद 12 से 35 तक फैला है। इनमें अनुच्छेद 19 विशेष महत्व रखता है, क्योंकि यह नागरिकों को छह प्रकार की स्वतंत्रताएं प्रदान करता है, जिनमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सबसे प्रमुख है। अनुच्छेद 19(1)(a) स्पष्ट रूप से कहता है कि सभी नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होगी। यह अधिकार केवल भारतीय नागरिकों तक सीमित है, विदेशियों को नहीं। इसकी व्याख्या में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि यह न केवल मौखिक या लिखित अभिव्यक्ति तक है, बल्कि प्रतीकात्मक रूपों, जैसे झंडा फहराना, साइलेंट प्रोटेस्ट या कलात्मक अभिव्यक्ति को भी शामिल करता है। उदाहरणस्वरूप, 1965 के राज्य बनाम राजा राम मोहन राय मामले में कोर्ट ने प्रेस की स्वतंत्रता को अनुच्छेद 19(1)(a) का अभिन्न हिस्सा माना, क्योंकि प्रेस लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है।[5]

अनुच्छेद 19(2) इस अधिकार पर ब्रेक लगाता है, जहां राज्य को आठ आधारों पर उचित प्रतिबंध लगाने की शक्ति दी गई है : भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण संबंध, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता, न्यायालय की अवमानना, मानहानि या अपराध के प्रति उकसावा।

ये आधार 1951 और 1963 के संशोधनों से जोड़े गए, ताकि अधिकार संतुलित रहे। लेकिन 'उचित' शब्द महत्वपूर्ण है। सुप्रीम कोर्ट ने 2004 के चिनम्मा बनाम स्टेट ऑफ आंध्र प्रदेश मामले में कहा कि प्रतिबंध न्यायोचित, आवश्यक और सीमित रूप से तैयार किए जाने चाहिए। यदि वे मनमाने या अत्यधिक हैं, तो अनुच्छेद 13 के तहत वे शून्य हो जाते हैं, जो कहता है कि कोई कानून मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकता।

डिजिटल संदर्भ में, अनुच्छेद 19(1)(a) इंटरनेट और सोशल मीडिया को भी कवर करता है। 2020 के अनुराधा भसीन बनाम भारत संघ मामले में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि इंटरनेट अभिव्यक्ति का माध्यम है, और इसका शटडाउन केवल असाधारण परिस्थितियों में जायज है।[6]

यहां सरकार की दोहरी भूमिका है : एक तरफ, वह इस अधिकार की रक्षा करने के लिए बाध्य है, लेकिन दूसरी तरफ, आईपीसी की धारा 124। (राजद्रोह) जैसे कानूनों का दुरुपयोग कर अभिव्यक्ति को दबाती है।[7] ये प्रावधान दिखाते हैं कि संविधान ने स्वतंत्रता और सुरक्षा के बीच संतुलन बनाने की कोशिश की है, लेकिन व्याख्या और क्रियान्वयन में चुनौतियां बनी हुई हैं।

ऐतिहासिक विकास और प्रमुख न्यायिक फैसले :

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का इतिहास भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक काल से जुड़ा है, जहां 1835 के प्रेस एक्ट और 1878 के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट ने प्रेस को दबाया था। स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी के 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' जैसे प्रकाशनों ने अभिव्यक्ति को राष्ट्रीय जागरण का हथियार बनाया। संविधान निर्माण के दौरान, संविधान सभा ने अमेरिकी, आयरिश और फ्रांसीसी मॉडलों से प्रेरणा ली, लेकिन भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप इसे ढाला। डॉ. आंबेडकर ने बहसों में कहा कि यह अधिकार सामाजिक परिवर्तन के लिए जरूरी है, खासकर दलितों और पिछड़ों की आवाज उठाने के लिए।

स्वतंत्रता के बाद, प्रारंभिक न्यायिक फैसलों ने इस अधिकार को मजबूत किया। 1950 के रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य मामले में सुप्रीम कोर्ट ने प्रेस सेंसरशिप को असंवैधानिक घोषित किया, क्योंकि यह लोकतंत्र के लिए आवश्यक अभिव्यक्ति को दबाती है।[8] 1950 के दशक में बैनाम बनाम स्टेट ऑफ मध्य प्रदेश ने जोर दिया कि अभिव्यक्ति सार्वजनिक बहस का आधार है। 1975–77 की इमरजेंसी में यह अधिकार बुरी तरह दबा, लेकिन 1978 के इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण मामले ने इसे पुनर्स्थापित किया।

आधुनिक दौर में, 2015 के श्रेया सिंघल बनाम भारत संघ फैसले ने आईटी एक्ट की धारा 66A को रद्द किया, जो ऑनलाइन अभिव्यक्ति पर अस्पष्ट प्रतिबंध लगाती थी।[7] यह फैसला डिजिटल युग में अभिव्यक्ति की रक्षा का मील का पत्थर है। 2023 के कौशल किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले में कोर्ट ने सार्वजनिक अधिकारियों की अभिव्यक्ति पर प्रतिबंधों की सीमाएं तय कीं, कहते हुए कि मंत्री भी अपनी राय रख सकते हैं, लेकिन नफरती भाषण नहीं।

2025 में वजाहत खान बनाम भारत संघ जैसे मामलों में डिजिटल प्लेटफॉर्मों पर अभिव्यक्ति को संरक्षित किया गया, जहां फैक्ट–चेकिंग यूनिट को चिलिंग इफेक्ट पैदा करने वाला माना गया। कुणाल कामरा मामले में बॉम्बे हाईकोर्ट ने आईटी नियमों के संशोधनों को रद्द किया। ये फैसले दिखाते हैं कि न्यायपालिका अभिव्यक्ति को व्यापक व्याख्या देती है, लेकिन सरकारी दुरुपयोग के खिलाफ सतर्क रहती है। फिर भी, कई मामलों में देरी और असंगतियां बनी हुई हैं, जो इस अधिकार की प्रभावशीलता पर सवाल उठाती हैं।

वर्तमान परिदृश्य :

2023 से 2025 तक भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अभूतपूर्व दबाव देखा गया है, जो डिजिटल क्रांति और राजनीतिक ध्रुवीकरण से जुड़ा है। अंतरराष्ट्रीय प्रेस फ्रीडम इंडेक्स में भारत 2025 में 151वें स्थान पर है, जो मीडिया पर बढ़ते नियंत्रण को दर्शाता है। फ्रीडम हाउस की रिपोर्ट्स बताती हैं कि इंटरनेट शटडाउन, ऑनलाइन उत्पीड़न और कानूनी दुरुपयोग से अभिव्यक्ति दब रही है। उदाहरणस्वरूप, 2023–2024 में 116 से अधिक इंटरनेट शटडाउन हुए, ज्यादातर उत्तर प्रदेश, मणिपुर और जम्मू–कश्मीर में, जहां चुनावों या विरोध प्रदर्शनों के दौरान संचार ठप कर दिया गया। 2025 में लद्दाख में सोनम वांगचुक के आंदोलन के दौरान इंटरनेट बंदी ने सूचना के प्रवाह को रोका, जिससे अंतरराष्ट्रीय ध्यान आकर्षित हुआ। ये शटडाउन अनुच्छेद 19(1)(a) का सीधा उल्लंघन हैं, क्योंकि वे नागरिकों को अपनी राय साझा करने से रोकते हैं।

राजद्रोह कानून (आईपीसी धारा 124A) को 2022 में सुप्रीम कोर्ट ने निलंबित किया, लेकिन 2023 के भारतीय न्याय संहिता (बीएनएस) की धारा 152 ने इसे नए रूप में ला दिया, जहां 'देश की एकता को खतरे में डालने' जैसे अस्पष्ट शब्द शामिल हैं।[8] 2025 में सुप्रीम कोर्ट ने इसकी वैधता पर नोटिस जारी किया, लेकिन तब तक कई FIR दर्ज हो चुकी थीं, जैसे किसान आंदोलन या सीएए विरोध में। आईटी नियम 2021 के 2023 के संशोधनों ने सोशल मीडिया कंपनियों को सामग्री हटाने के लिए बाध्य किया, जिसमें फैक्ट–चेकिंग यूनिट शामिल थी, जिसे 2025 में बॉम्बे हाईकोर्ट ने रद्द कर दिया। एलन मस्क की एक्स प्लेटफॉर्म ने सरकारी टेकडाउन आदेशों को चुनौती दी, लेकिन कई मामलों में हार गई, जिससे घृणा भाषण और फेक न्यूज के नाम पर सेंसरशिप बढ़ी।पत्रकारिता पर दबाव चरम पर है। 2025 के पहले चार महीनों में 329 से अधिक उल्लंघन दर्ज हुए, जिसमें गिरफ्तारियां, हत्याएं और फिल्म बैन शामिल हैं।[4]

यूएपीए के तहत 16 पत्रकारों पर मुकदमे चले, जैसे न्यूजक्लिक के प्रबीर पुरकायस्थ की गिरफ्तारी, जिसे 2024 में सुप्रीम कोर्ट ने रद्द किया।[5] कश्मीरी पत्रकार आसिफ सुल्तान को 2024 में दोबारा गिरफ्तार किया गया। साउथ एशिया प्रेस फ्रीडम रिपोर्ट 2024–25 में मीडिया पर ट्रस्ट डेफिसिट और डिसइनफॉर्मेशन का जिक्र है। वक्फ संशोधन बिल 2024 के विरोध में 2025 में हिंसा हुई, जहां इंटरनेट बंदी और विरोधियों पर मुकद्दमें लगाए गए।[6] अकादमिक स्वतंत्रता भी प्रभावित हुई, जैसे विश्वविद्यालयों में सेमिनार रद्द करना। ये घटनाएं दिखाती हैं कि वर्तमान में अभिव्यक्ति राजनीतिक नियंत्रण का शिकार हो रही है, जो लोकतंत्र को कमजोर कर रही है।

सरकार की भूमिका का विश्लेषण :

केंद्र सरकार, विशेष रूप से भाजपा के नेतृत्व में, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को नियंत्रित करने में सक्रिय भूमिका निभा रही है। आईटी नियमों के माध्यम से मेटा, गूगल और एक्स जैसे प्लेटफॉर्मों को ग्रिवांस ऑफिसर नियुक्त करने और सामग्री मॉडरेशन करने का आदेश दिया गया है। 2024 में प्रस्तावित ब्रॉडकास्टिंग सर्विसेज रेगुलेशन बिल को आलोचना के बाद वापस लिया गया, लेकिन यह प्रेस पर नियंत्रण का स्पष्ट प्रयास था।[7] इंटरनेट शटडाउन में सरकार की प्रत्यक्ष भूमिका है, जो कानून व्यवस्था के नाम पर लगाए जाते हैं, लेकिन अध्ययनों से पता चलता है कि वे हिंसा को नहीं रोकते, बल्कि आर्थिक नुकसान पहुंचाते हैं। 2025 में जिला स्तर के अधिकारियों को सामग्री हटाने का अधिकार दिया गया, जो मनमानी को बढ़ावा देता है।

राजद्रोह और यूएपीए जैसे कानूनों का दुरुपयोग असहमति दबाने के लिए किया जाता है। 2025 में कई

एक्टिविस्टों, जैसे उमर खालिद, को लंबे समय तक जेल में रखा गया, जहां बोलने पर प्रतिबंध लगाए गए। राज्य सरकारें, जैसे उत्तर प्रदेश में, निगरानी बढ़ा रही हैं, जहां सोशल मीडिया पोस्ट पर FIR आम हैं।[8] सरकार का तर्क राष्ट्रीय सुरक्षा और फेक न्यूज रोकना है, लेकिन मानवाधिकार संगठन इसे सत्ताधारी विचारधारा को मजबूत करने का माध्यम बताते हैं। अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से मुसलमानों, पर भेदभावपूर्ण नीतियां, जैसे वक्फ बिल, ने अभिव्यक्ति को और सीमित किया। सुप्रीम कोर्ट ने 2023 में सार्वजनिक अधिकारियों की अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध सीमित किए, लेकिन सरकारी नीतियां अभी भी अभिव्यक्ति को खतरे में डाल रही हैं। कुल मिलाकर, सरकार की भूमिका संरक्षक से दमनकारी बन गई है, जो संवैधानिक मूल्यों से विपरीत है।

निष्कर्ष :

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भारतीय संविधान का हृदय है, जो लोकतंत्र को जीवंत रखती है। लेकिन 2023–2025 की घटनाओं से साफ है कि सरकारी हस्तक्षेप और कानूनी दुरुपयोग से यह कमजोर हो रही है। सुप्रीम कोर्ट को प्रतिबंधों की सख्त समीक्षा करनी चाहिए, जबकि सरकार को आईटी नियमों में पारदर्शिता लानी चाहिए। अंतरराष्ट्रीय मानक, जैसे संयुक्त राष्ट्र के दिशानिर्देश, अपनाकर सुधार संभव है। नागरिक समाज, मीडिया और एक्टिविस्ट को एकजुट होकर इस अधिकार की रक्षा करनी होगी, ताकि भारत विविधता और आलोचना का सम्मान करने वाला देश बने।

संदर्भ सूची :

1. लक्ष्मीकांत, एम. भारतीय राजव्यवस्था। मैकग्रा हिल, 2020। पृष्ठ 182।
2. आंबेडकर, बी.आर. संविधान सभा की बहसें। भारत सरकार, 1949। वॉल्यूम IX, पृष्ठ 1204
3. 'प्रेस फ्रीडम इंडेक्स 2025 में भारत।' हिंदुस्तान, 20 दिसंबर 2019 (2025 अद्यतन), www.hindustantimes.com/bollywood/sushant&singh&on&bollywood&not&expressing&opinion&on&caa&revolution&is&brought&by&youth&not&celebrities/story&3QvaBN7ERbAQpBq6pJBmsK.html. पृष्ठ 1
4. 'इंटरनेट शटडाउन का विश्लेषण।' प्रतियोगिता दर्पण, जनवरी 2025 अंक। पृष्ठ 52
5. बसु, डी.डी. भारत का संविधान : एक परिचय। लेक्सिसनेक्सिस, 2018। पृष्ठ 269
6. 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सुप्रीम कोर्ट।'दृष्टि आईएएस, 7 अगस्त 2025, www.dristiias.com,पृष्ठ 2
7. 'राजद्रोह कानून के नए रूप।' द हिंदू, 11 जुलाई 2025, www.thehindu.com। पृष्ठ 3।
8. बसु, डी.डी. भारत का संविधान : एक परिचय। लेक्सिसनेक्सिस, 2018। पृष्ठ 269।
9. 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सुप्रीम कोर्ट।'दृष्टि आईएएस, 7 अगस्त 2025, www.dristiias.com, पृष्ठ 2
10. 'संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन।' क्रॉनिकल मैगजीन, मार्च 2024 अंक। पृष्ठ 38।
11. 'आईटी नियम और डिजिटल सेंसरशिप।' इंडिया टुडे, 2 जुलाई 2021 (2025 अद्यतन), m.thewire.in/article/video/watch&i&new&it&rules&how&the&modi&is&government&working&to&censor&digital&media. पृष्ठ 4
12. 'लद्दाख में इंटरनेट बंदी और असर।' न्यूज लॉन्ड्री, 21 अक्टूबर 2025,

hindi.newslaundry.com/2025/10/21/nl&documentaries&media&is&behaving&like&bjp&pupet&inside&ladakh&mistrust&and&demand&for&dignity. पृष्ठ 2

13. 'राजद्रोह कानून के नए रूप।' द हिंदू, 11 जुलाई 2025, www.thehindu.com. पृष्ठ 3
14. 'पत्रकारों पर हमले : 2025 रिपोर्ट।' न्यूज क्लिक, 23 अगस्त 2023 (2025 संस्करण), thewire.in/media/army&dainik&jagran&pib&surgical&strike\mid_related_new. पृष्ठ 2
15. वहीं।
16. 'वक्फ संशोधन और अभिव्यक्ति पर प्रभाव।' द वायर, 16 अप्रैल 2025, m.hindi.thewire-in/article/video/as&israel&buries&gaza&how&should&the&world&and&india&respond&urdu&hai&jiska&naam. पृष्ठ 3
17. 'डिजिटल अधिकार और सरकार।' न्यूज लॉन्ड्री, 9 अगस्त 2025, hindi.newslaundry.com/2025/08/09/four&days&after&the&disaster&locals&still&stranded&in&dharali&authorities&accused&of&prioritising&tourists&in&rescue&efforts. पृष्ठ 3
18. "वक्फ एक्ट और विरोध प्रदर्शन।' अमर उजाला, 12 अप्रैल 2025, www.amarujala.com/india&news/west&bengal&murshidabad&violence&waqf&amendment&act&2025&malda&muslim&organisations&nh&12&mamata&banerjee&govt&2025&04&12. पृष्ठ 2।

मोबाइल नंबर 8318562930
व्हाट्सएप 7398356812
मेल shailendr.1985@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 168–172

भारतीय संविधान के 75 वर्ष : एक सिंहावलोकन

सर्वेश जैमन
सहायक आचार्य–राजनीति विज्ञान
हाडारानी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सलूम्बर।

सारांश (Abstract)

भारत का संविधान, जो 26 नवंबर 1949 को अंगीकृत, अधिनियमित हुआ तथा 26 जनवरी 1950 से लागू हुआ, 2025 में अपनी 75 वर्ष पूर्ण होने का उत्सव मना रहा है। यह संसार का सबसे बड़ा लिखित संविधान है, जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के मूल सिद्धांत निहित हैं। डॉ. भीमराव अंबेडकर की अध्यक्षता वाली प्रारूप समिति द्वारा तैयार इस संविधान ने भारत को एक संप्रभु, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य की पहचान दी। 75 वर्षों की इस यात्रा में 106 संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से यह दस्तावेज जीवंत और अनुकूलनीय सिद्ध हुआ है, जिसने सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों, संघीय संतुलन और न्यायिक सक्रियता को प्रोत्साहित किया है।

यह शोध आलेख संविधान के निर्माण के प्रमुख मील के पत्थरों, उपलब्धियों, चुनौतियों तथा भविष्य की दिशा का प्रामाणिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह सरकारी दस्तावेजों, न्यायिक निर्णयों और विद्वानों के कार्यों के विश्लेषण पर आधारित है।

परिचय –

'भारतीय संविधान' न केवल एक कानूनी दस्तावेज है, अपितु राष्ट्र की आत्मा और विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का आधारभूत स्तंभ है। 26 जनवरी 1950 को लागू होने के साथ ही भारत ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के कानूनों से मुक्ति प्राप्त करते हुए एक स्वतंत्र गणराज्य की स्थापना की। 2025 में इसकी 75वीं वर्षगांठ को 'हमारा संविधान, हमारा स्वाभिमान' के नारे के साथ वर्ष भर मनाया जा रहा है, जिसमें भारतीय राष्ट्रपति श्रीमती द्रौपदी मुर्मू और प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में देशव्यापी कार्यक्रम आयोजित हो रहे हैं। राष्ट्रपति महोदया ने इसे 'देश का सबसे पवित्र ग्रंथ' कहा है।

यह संविधान की स्थायित्व, लचीलापन और परिवर्तनकारी भूमिका का सिंहावलोकन करने का उचित अवसर है। संविधान सभा ने 2 वर्ष, 11 महीने और 18 दिनों में 395 अनुच्छेदों वाला यह दस्तावेज तैयार किया, जिसमें अब तक 106 संशोधनों हो चुके है।

संविधान सभा की 166 बैठकों में 114 दिनों तक चर्चा हुई, जिसमें 7,635 संशोधन प्रस्तावित हुए, जिनमें से 2,473 पर बहस हुई। यह पेपर संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, निर्माण प्रक्रिया, प्रमुख विशेषताओं, 75 वर्षों की यात्रा, उपलब्धियों, चुनौतियों और निष्कर्ष पर केंद्रित है।

संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और निर्माण :–

भारतीय संविधान की जड़ें ब्रिटिश कालीन अधिनियमों में निहित हैं। रेगुलेटिंग एक्ट 1773 से प्रारंभ होकर पिट्स इंडिया एक्ट 1784, चार्टर एक्ट 1833, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1858, इंडियन काउंसिल एक्ट 1892 और 1909, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1919 तथा 1935 ने भारतीय संविधान के ढांचे की आधारशिला रखी। 1935 का भारत शासन अधिनियम विशेष रूप से महत्वपूर्ण था, जिसमें प्रांतीय स्वायत्तता और संघीय संरचना का प्रावधान था, जो बाद में भारतीय संविधान में अपनाया गया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान नेहरू रिपोर्ट (1928) और कराची प्रस्ताव (1931) ने मौलिक अधिकारों तथा सामाजिक–आर्थिक न्याय की मांग की। कैबिनेट मिशन योजना (1946) के अंतर्गत संविधान सभा का गठन हुआ, जिसमें प्रारंभ में 389 सदस्य थे, (जिनमें से 292 सदस्य प्रांतीय विधानसभाओं से, 93 सदस्य रियासतों से तथा 4 सदस्य चीफ कमिश्नरी क्षेत्रों से) और माउंटबेटन योजना 3 जून 1947 के अनुसार हुए विभाजन के पश्चात 299 सदस्य रह गए। सभा की पहली बैठक 9 दिसंबर 1946 को हुई, जिसमें डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा को अस्थाई अध्यक्ष चुना गया। इसके बाद संविधान सभा का स्थाई अध्यक्ष डॉ राजेन्द्र प्रसाद को बनाया गया। प्रारूप समिति (29 अगस्त 1947 को गठित) के अध्यक्ष डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान को अंतिम रूप दिया। उन्होंने अमेरिकी, ब्रिटिश, आयरिश, कनाडाई और अन्य संविधानों से प्रेरणा ली, और इन्हें भारतीय संदर्भ में अनुकूलित किया।

26 नवंबर 1949 को संविधान अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया गया और 26 जनवरी 1950 से लागू किया गया, क्योंकि इसी दिन 26 जनवरी 1930 को पूर्ण स्वराज की घोषणा हुई थी। अंबेडकर की भूमिका अप्रतिम रहीय वे सामाजिक न्याय, आरक्षण और संघीय संतुलन के प्रबल समर्थक थे। उनकी दूरदर्शिता ने संविधान को 'जीवंत दस्तावेज' बनाया, जो समय के साथ विकसित होता रहा।

संविधान सभा में महिलाओं की भागीदारी भी उल्लेखनीय थी, जिसमें 15 महिलाएं शामिल थीं जिनमें प्रमुखतरू जी. दुर्गाबाई, अम्मू स्वामीनाथन, बेगम ऐजाज रसूल, सुचेता कृपलानी, सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर और दक्षयानी वेलायुदन शामिल थीं। मूल संविधान की प्रति प्रेम बिहारी नारायण रायजादा द्वारा हस्तलिखित थी और शांतिनिकेतन के कलाकारों जैसे बेहोर राममनोहर सिन्हा और नंदलाल बोस के द्वारा सजाई गई थी।

संविधान की प्रमुख विशेषताएँ :–

भारतीय संविधान विश्व का सबसे लंबा लिखित संविधान है, जिसमें मूल रूप से 395 अनुच्छेद, 22 भाग और 8 अनुसूचियां थीं। जिसने भारत में लोकतांत्रिक गणराज्य को आकार दिया। प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

संप्रभु एवं गणतंत्र :–

संविधान की प्रस्तावना में भारत को 'संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और लोकतंत्रात्मक गणराज्य' घोषित किया गया है। इसमें संप्रभुता 'हम भारत के लोग' अर्थात भारतीय जनता में निहित है।

संघीय ढांचा :–

एकात्मक की ओर झुकाव वाली संघीय प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें केंद्र मजबूत है –– एकल नागरिकता, एकीकृत न्यायपालिका और आपातकालीन प्रावधान इसके एकात्मक की ओर इशारा करते हैं। अर्थात

भारतीय संविधान साधारण परिस्थितियों में संघीय प्रणाली है तथा आपात स्थिति में यह एकात्मक स्वरूप धारण कर लेता है।

संसदीय प्रणाली :–

ब्रिटिश मॉडल पर आधारित है, जहां कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी है। इसमें नाममात्र और वास्तविक कार्यपालिका में भेद देखा जा सकता है।

मौलिक अधिकार और नीति निदेशक तत्व :–

भाग 3 में मौलिक अधिकार (अमेरिका से प्रेरित) और भाग 4 में नीति निदेशक तत्व (आयरलैंड से)। जहां मौलिक अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्त्व भारत में राजनीतिक के साथ–साथ आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र भी विकसित करते हैं।

स्वतंत्र न्यायपालिका :–

न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्राप्त है। संविधान की व्याख्या करती है।

वयस्क मताधिकार :–

सभी वयस्क नागरिकों को,जिनकी आयु 18 वर्ष है, मताधिकार प्रदान किया गया है । यह लोकतंत्र का आधार है तथा इसे विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बनाने में सहायक है।

एकल संविधान :–

केंद्र और राज्यों के लिए एक ही संविधान, जो विविधता में एकता सुनिश्चित करता है।

ये विशेषताएँ भारत की सांस्कृतिक विविधता को समाहित करती हैं। 2025 में, सुप्रीम कोर्ट ने इन विशेषताओं को 'ट्रांसफॉर्मेटिव कांस्टीट्यूशनलिज्म' के रूप में वर्णित किया, जो सामाजिक परिवर्तन का माध्यम है। संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों का उल्लेख है, जो नेहरू के उद्देश्य प्रस्ताव से प्रेरित है।

75 वर्षों की यात्रा में प्रमुख मील के पत्थर और संविधान संशोधन :–

संविधान की जीवंतता उसके 106 संशोधनों में झलकती है (2025 तक)।

प्रमुख संशोधन :

- प्रथम संशोधन (1951) : अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध, नौवीं अनुसूची की शुरुआत (जमींदारी उन्मूलन हेतु)।
- सातवाँ संशोधन (1956) : राज्यों का भाषाई पुनर्गठन।
- 42वाँ संशोधन (1976) : 'मिनी संविधान' के रूप में जाना जाता, मौलिक कर्तव्य जोड़े गए।
- 44वाँ संशोधन (1978) : आपातकालीन दुरुपयोग पर सुधार, संपत्ति का अधिकार हटाया।
- 73वाँ और 74वाँ संशोधन (1992) : पंचायती राज और नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा।
- 86वाँ संशोधन (2002) : शिक्षा का मौलिक अधिकार।
- 101वाँ संशोधन (2016) : जीएसटी की शुरुआत।
- 106वाँ संशोधन (2023) : महिलाओं के लिए विधायिकाओं में 33% आरक्षण (नारी शक्ति वंदन अधिनियम)।

2025 में, कुछ प्रस्तावित संशोधन जैसे चुनाव सुधार और डिजिटल अधिकारों पर चर्चा हो रही है।

न्यायिक मील के पत्थर :

- केशवानंद भारती केस (1973) : मूल संरचना सिद्धांत की स्थापना, जिसमें संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है किंतु संविधान की मूल संरचना में संशोधन नहीं कर सकती है।
- मिनर्वा मिल्स केस (1980) : मौलिक अधिकार और नीति निदेशक तत्वों में संतुलन स्थापित किया तथा उन्हें एक दूसरे के पूरक बताया।
- एस.आर. बोम्मई केस (1994) : राष्ट्रपति शासन के दुरुपयोग पर अंकुश।

ये संशोधन और निर्णय संविधान को समयानुकूल और जीवंत बनाये रखते हैं।

उपलब्धियाँ :

75 वर्षों में संविधान ने भारत को विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बनाया।

प्रमुख उपलब्धियाँ :

लोकतंत्र का सुदृढ़ीकरण :

अब तक हुए 18 लोकसभा आम चुनावों में शांतिपूर्ण तरीके से सत्ता का हस्तांतरण हुआ है। 18वीं लोकसभा 2024 के चुनाव में 642139275 मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया।

सामाजिक न्याय :

SC/ST/OBC आरक्षण से करोड़ों का उत्थान।

आर्थिक परिवर्तन :

जीएसटी जैसे सुधारों से अर्थव्यवस्था मजबूत हुई।

संघवाद का विकास :

73वें/74वें संशोधनों से स्थानीय संशोधनों से स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक दर्जा दिया गया। सहकारी संघवाद की अवधारणा।

न्यायिक सक्रियता : PIL से पर्यावरण, मानवाधिकार संरक्षण को बढ़ावा मिला।

महिला सशक्तिकरण : प्रारंभ से मताधिकार, लैंगिक आधार पर भेदभाव का निषेध, और अब विधायिकाओं में 33% आरक्षण महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक बड़ा कदम है।

विविधता में एकता : 22 भाषाओं और विविध धर्मों के बावजूद राष्ट्रीय एकता।

75 वर्षों में भारत उपनिवेश से विश्व की प्रमुख बड़ी अर्थव्यवस्था बना। संविधान ने उपनिवेशवादी, सामंती, जातिवादी समाज को अधिकार–आधारित, समतापूर्ण समाज वाले लोकतंत्र में बदल दिया।

चुनौतियाँ और आलोचनाएँ :–

सफलताओं के बावजूद चुनौतियाँ बनी हुई हैं :–

- राजनीतिक दलों के आचरण, दल–बदल और धनबल के प्रयोग ने लोकतंत्र की साख को नुकसान पहुंचाया है।
- संवैधानिक संस्थाओं की भ्रष्टाचार के कारण पारदर्शिता प्रभावित हुई है।
- केंद्र–राज्य वित्तीय विभाजन एक तनाव का विषय रहा है तथा राज्यपाल का पद भी केन्द्र–राज्य संबंधों में टकराव का कारण रहा है।

- न्यायपालिका में लंबित वादों की संख्या एवं उनके निपटान का समय चिंतन योग्य है।
- अथक प्रयासों के बावजूद समाज में जातिगत, लैंगिक और आर्थिक विषमता समाप्त नहीं हो पाई है।

ये चुनौतियाँ संविधान की परीक्षा हैं, किंतु इसके लचीलेपन और अनुकूलनशीलता से निश्चित ही हम इन चुनौतियों से पार पा सकेंगे।

डॉ. भीमराव अंबेडकर की विरासत :-

डॉ. अंबेडकर को 'संविधान का पिता' कहा जाता है। प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने समानता, आरक्षण और सामाजिक न्याय पर बल दिया। उनकी चेतावनी – 'राजनीतिक लोकतंत्र, सामाजिक लोकतंत्र के बिना असफल ही सिद्ध होगा'। – आज भी प्रासंगिक है। 75 वर्ष बाद उनकी विरासत दलित उत्थान, महिला अधिकार और पंथनिरपेक्षता में जीवित है। अंबेडकर ने 'संवैधानिक नैतिकता' की आवश्यकता बताई, जो राजनीतिक दलों द्वारा वर्तमान संदर्भों में भी अनुकरणीय है।

निष्कर्ष -

भारतीय संविधान के 75 वर्ष एक गौरवपूर्ण, गरिमामय यात्रा के प्रतीक हैं। यह कानूनी ढांचे से अधिक, सामाजिक परिवर्तन का साधन है। चुनौतियों के बावजूद इसने भारत को एकजुट और प्रगतिशील बनाये रखा है। भविष्य में डिजिटल युग, जलवायु परिवर्तन और वैश्वीकरण के लिए नए संशोधन आवश्यक होंगे, किंतु मूल संरचना अटल रहेगी। जैसा डॉ अंबेडकर ने कहा था, 'कोई भी संविधान अच्छा या बुरा नहीं होता, उसे लागू करने वाले लोग महत्वपूर्ण हैं।'

आइए संवैधानिक मूल्यों को जीवंत रखें।

संदर्भ सूची :-

1. Austin, Granville. The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford University Press,1966.
2. Austin, Granville. Working a Democratic Constitution: The Indian Experience. Oxford University Press, 1999.
3. Government of India. Constitution of India. Ministry of Law and Justice, Government of India, 1950.
4. Constituent Assembly Debates. Lok Sabha Secretariat, 1946–1949.
5. Press Information Bureau. Press Information Bureau Research unit e book 75 facts 75 years Government of India, 2024.
6. Supreme Court of India. Judgments Database. Supreme Court of India, 2024.
7. Kesavananda Bharati v. State of Kerala. (1973) 4 SCC 225.
8. S. R. Bommai v. Union of India. (1994) 3 SCC 1.
9. https://presidentofindia.nic.in/
10. https://eci.gov.in/
11. https://www.sci.gov.in/

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 173–179

ਭਾਰਤੀ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀਆਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾਵਾਂ

Balbir Kaur
Asst. Prof. Political Science
Sikh National College Qadian, Gurdaspur, Punjab.

* **ਜਾਣ ਪਛਾਣ:** ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੁਨੀਆਂ ਦਾ ਸਭ ਤੋਂ ਲੰਬਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਹੈ। ਸ਼ੁਰੂ ਚ ਇਸ ਦੀਆਂ 345 ਧਾਰਾਵਾਂ, 22 ਭਾਗ ਅਤੇ 8 ਅਨੁਸੂਚੀਆਂ ਸਨ। ਇਸ ਵਿਚ ਲਗਭਗ 1,45,000 ਹਨ ਜੋ ਕਿ ਦੁਨੀਆਂ ਦਾ ਦੂਸਰਾ ਸਭ ਤੋ ਵੱਡਾ ਗਤੀਸ਼ੀਲ ਸੰਵਿਧਾਨ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਇਸ ਵਿਚ ਇਕ ਪ੍ਰਸਤਾਵਨਾ, 448 ਧਾਰਾਵਾਂ, 25 ਭਾਗ, 12 ਸੰਵਿਧਾਨ ਅਨੁਸੂਚੀਆਂ ਅਤੇ 101 ਸੋਧਾਂ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹਨ। ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ 'ਕੈਬਨਿਟ ਮਿਸ਼ਨ ਯੋਜਨਾ' ਦੀ ਸਿਫ਼ਾਰਿਸ਼ਾਂ ਅਨੁਸਾਰ ਕਾਇਮ ਕੀਤੀ ਗਈ ਸੰਵਿਧਾਨ ਸਭਾ ਦੁਆਰਾ 9 ਦਸੰਬਰ 1946 ਨੂੰ ਆਰੰਭ ਕੀਤਾ ਗਿਆ। ਸੰਵਿਧਾਨ ਨੂੰ ਬਵਨ ਵਿਚ 2 ਸਾਲ, 11 ਮਹੀਨਿ ਅਤੇ 18 ਦਿਨ ਲੱਗੇ ਸਨ। ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ 26 ਨਵੰਬਰ 1949 ਨੂੰ ਬਣ ਕੇ ਤਿਆਰ ਹੋ ਗਿਆ ਸੀ ਅਤੇ 26 ਜਨਵਰੀ 1950 ਨੂੰ ਇਸ ਨੂੰ ਲਾਗੂ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਸੀ। ਜੇਕਰ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀਆਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾਵਾਂ ਦੀ ਗੱਲ ਕੀਤੀ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਉਹ ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਹਨ:

***ਲਿਖਤੀ ਅਤੇ ਵਿਸਤ੍ਰਿਤ ਸੰਵਿਧਾਨ:** ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੁਨੀਆਂ ਦਾ ਦੂਸਰਾ ਲਿਖਤੀ ਸੰਵਿਧਾਨ ਹੈ, ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾ ਲਿਖਤੀ ਸੰਵਿਧਾਨ ਸੰਯੁਕਤ ਰਾਜ ਅਮਰੀਕਾ ਦਾ ਹੈ। ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਬਹੁਤ ਜਿਆਦਾ ਵਿਸਤ੍ਰਿਤ/ਲੰਬਾ ਹੈ। ਜਿਸ ਵਿਚ 448 ਧਾਰਾਵਾਂ, 25 ਭਾਗ, 12 ਅਨੁਸੂਚੀਆਂ ਹਨ। ਇਹ ਲਿਖਤੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸਨੂੰ ਇਕ ਕਿਤਾਬਚੇ ਦੀ ਤਰਾਂ ਪੜਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ ।

***ਪ੍ਰੋ: ਅਈਵਰ ਜੈਨਿੰਗਜ ਦੇ ਅਨੁਸ਼ਾਰ** " ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਸਾਰੇ ਸੰਵਿਧਾਨਾਂ ਨਾਲੋਂ ਲੰਬਾ ਅਤੇ ਵਿਸਤ੍ਰਿਤ ਸੰਵਿਧਾਨ ਹੈ। ਕਈ ਵਿਦਵਾਨ ਤਾਂ ਇਸ ਨੂੰ ਹਾਥੀ ਦੇ ਆਕਾਰ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵੀ ਮੰਨਦੇ ਹਨ। ਭਾਰਤੀ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੇ ਵਿਸਤ੍ਰਿਤ ਹੋਣ ਦੇ ਕਈ ਕਾਰਨ ਹਨ:

- ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀਆਂ ਧਾਰਾਵਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਵਿਚ ਵਾਧਾ।
- ਕੇਂਦਰ ਅਤੇ ਰਾਜਾਂ ਦਾ ਇਕ ਹੀ ਸੰਵਿਧਾਨ।
- ਭਾਰਤੀ ਸੰਵਿਧਾਨ ਉੱਪਰ 1935 ਦੇ ਐਕਟ ਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਬਹੁਤ ਦੇਖਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਇਸ ਨੂੰ ਵਿਸਤ੍ਰਿਤ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ।

***ਵੱਖ- ਵੱਖ ਸੋਮਿਆਂ ਤੋਂ ਲਿਆ ਗਿਆ ਸੰਵਿਧਾਨ :** ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਸੋਮਿਆਂ ਤੋਂ ਲਿਆ ਗਿਆ ਸੰਵਿਧਾਨ ਹੈ ਕਿਓਂਕਿ ਸੰਵਿਧਾਨ ਨਿਰਮਾਤਾਵਾਂ ਦਾ ਉਦੇਸ਼ ਕੋਈ ਮੌਲਿਕ ਸੰਵਿਧਾਨ ਤਿਆਰ ਕਰਨਾ ਨਹੀ ਸੀ ਬਲਕਿ ਉਹ ਇਕ ਵਧੀਆ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੇ ਹਨ ਜਿਸ ਵਿਚ ਵੱਖ- ਵੱਖ ਦੇਸ਼ਾਂ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀਆਂ ਵਧੀਆ ਗੱਲਾਂ ਤੂੰ

ਭਾਰਤ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਕੀਤਾ ਗਿਆ :

- ਸੰਸਦੀ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਅਤੇ ਕਾਨੂੰਨ ਦਾ ਸ਼ਾਸਨ ਬਰਤਾਨੀਆਂ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਤੋਂ ਲਿਆ ਗਿਆ ਹੈ।
- ਮੌਲਿਕ ਅਧਿਕਾਰ ਅਤੇ ਨਿਆਂਇਕ ਪੁਨਰ - ਨਿਰੀਖਣ ਸੰਯੁਕਤ ਰਾਜ ਅਮਰੀਕਾ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿੱਚੋਂ ਲਏ ਗਏ ਹਨ।
- ਰਾਜਨੀਤੀ ਦੇ ਨਿਰਦੇਸ਼ਕ ਸਿਧਾਂਤ ਆਇਰਲੈਂਡ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਤੋਂ ਲਏ ਗਏ ਹਨ। .
- ਭਾਰਤ ਦੀ ਸੰਘਾਤਮਕ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਕੈਨੇਡਾ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਤੋਂ ਲਈ ਗਈ ਹੈ।
- ਸੰਵਿਧਨ ਦੀ ਸੋਧ ਵਿਧੀ ਅਤੇ ਰਾਜ ਸਭਾ ਦੇ ਮੈਂਬਰਾਂ ਦੀ ਚੋਣ ਵਿਧੀ ਲਈ ਦੱਖਣੀ ਅਫ਼ਰੀਕਾ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੇ ਰਿਣੀ ਹਾਂ।
- ਭਾਰਤ ਦੇ ਰਾਸ਼ਟਰਪਤੀ ਦੀਆਂ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਜਰਮਨੀ ਦੇ ਵਾਈਮਰ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿੱਚੋਂ ਲਈਆਂ ਗਈਆਂ ਹਨ।
- ਭਾਰਤ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨੁ ਉੱਪਰ ਭਾਰਤ ਸਰਕਾਰ ਕਾਨੂੰਨ 1935 ਦਾ ਵੀ ਕਾਫ਼ੀ ਪ੍ਰਭਾਵ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।

***ਕਠੇਰ ਅਤੇ ਲਚਕਦਾਰ ਸੰਵਿਧਾਨ :** ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਕਠੇਰ ਅਤੇ ਲਚਕਦਾਰ ਦੋਵਾਂ ਦਾ ਮਿਸ਼ਰਣ ਹੈ। ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਕਠੇਰ ਹੈ ਜਿਸਦੇ ਕਾਰਨ ਹਨ ਕਿ:

- ਧਾਰਾ 368 ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਦੋ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀ ਸੋਧ ਵਿਧੀ ਦਾ ਵਰਣਨ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ:
  - ਪਹਿਲੀ ਇਹ ਕਿ ਕੁਝ ਸਥਿਤੀਆਂ ਵਿਚ ਸੋਧ ਕਰਨ ਲਈ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਬਹੁਮਤ ਭਾਵ ਹਰੇਕ, ਸਦਨ ਦੇ ਹਾਜ਼ਰ ਅਤੇ ਵੋਟ ਦੇਣ ਵਾਲੇ ਮੈਂਬਰਾਂ ਦੀ 2/3 ਬਹੁਸਹਿਮਤੀ ਅਤੇ ਕੁਝ ਮੈਂਬਰਾਂ ਦੇ ਸਪੱਸ਼ਟ ਬਹੁਮਤ ਨਾਲ ਸੋਧ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।
  - ਦੂਸਰੀ ਵਿਧੀ ਦੁਆਰਾ ਸੰਸਦ ਦੇ ਹਾਜ਼ਰ ਅਤੇ ਵੋਟ ਦੇਣ ਵਾਲੇ 2/3 ਮੈਂਬਰਾਂ ਦਾ ਬਹੁਮਤ ਅਤੇ ਕੁੱਝ ਮੈਂਬਰਾਂ ਦੇ ਸਪੱਸ਼ਟ ਬਹੁਮਤ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾ ਘੱਟ ਤੋਂ ਘੱਟ ।/2 ਰਾਜ ਵਿਧਾਨ ਮੰਡਲਾਂ ਦੀ ਪ੍ਰਵਾਨਗੀ ਜਰੂਰੀ ਹੈ।

ਭਾਰਤੀ ਸੰਵਿਧਾਨ ਲਚਕਦਾਰ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਕੁਝ ਧਾਰਾਵਾਂ ਅਜਿਹੀਆਂ ਹਨ ਜੋ ਕਿ ਸੰਸਦ ਦੁਆਰਾ ਸਧਾਰਨ ਬਹੁਮਤ ਨਾਲ ਤਬਦੀਲ/ ਸੋਧੀਆਂ ਜਾਂਦੀਆਂ ਹਨ।

***ਸੰਸਦੀ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਦੀ ਸਰਕਾਰ :** ਭਾਰਤ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀ ਇਹ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਹੈ ਕਿ ਇੱਥੇ ਸੰਸਦੀ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਦੀ ਸਰਕਾਰ ਪਾਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀ ਇਹ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਬ੍ਰਿਟੇਨ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਤੋਂ ਲਈ ਗਈ ਹੈ । ਜਿਸ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ : .

- ਨਾ-ਮਾਤਰ ਅਤੇ ਅਸਲੀ ਕਾਰਜਸਾਧਕ ਮੁਖੀ ਵਿਚਕਾਰ ਅੰਤਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। .
- ਕਾਰਜ ਪਾਲਿਕਾ ਆਪਣੇ ਕਾਰਜਾ ਲਈ ਸੰਸਦ ਦੇ ਹੇਠਲੇ ਸਦਨ ਲੋਕ ਸਭਾ ਦੇ ਸਾਹਮਣੇ ਜਿੰਮੇਵਾਰ ਹੁੰਦੀ ਹੈ।
- ਕਾਰਜ ਪਾਲਿਕਾ ਅਤੇ ਵਿਧਾਨ ਪਾਲਿਕਾ ਵਿਚਕਾਰ ਗੂੜ੍ਹਾ ਸੰਬੰਧ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।
- ਮੰਤਰੀ ਪ੍ਰੀਸ਼ਦ ਦਾ ਕਾਰਜਕਾਲ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦਾ।
- ਮੰਤਰੀਆਂ ਨੂੰ ਅਹੁੱਦਾ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਦੇ ਸਮੇਂ ਗੁਪਤਤਾ ਦੀ ਸਹੁੰ ਚੁਕਾਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।

***ਸਰਵਜਨਕ ਬਾਲਗ ਮਤ ਅਧਿਕਾਰ :** ਭਾਰਤ ਇਕ ਲੋਕਤੰਤਰਿਕ ਦੇਸ਼ ਹੈ । ਭਰਤ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀ ਧਾਰਾ-326 ਦੇ ਅਧੀਨ ਭਾਰਤ ਵਿਚ ਸਰਵਜਨਕ ਬਾਲਗ ਮੱਤ ਅਧਿਕਾਰ ਦੀ ਵਿਵਸਥਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ।

- ਦੇਸ਼ ਦਾ ਹਰੇਕ ਨਾਗਰਿਕ ਜਿਸ ਦੀ ਉਮਰ 18 ਸਾਲ ਜਾਂ ਇਸ ਤੋਂ ਵੱਧ ਹੈ ਉਸ ਨੂੰ ਵੋਟ ਪਾਉਣ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਹਾਸਿਲ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ।
- ਹਰੇਕ ਨਾਗਰਿਕ ਆਪਣੀ ਮਰਜੀ ਨਾਲ ਵੋਟ ਪਉਣ ਲਈ ਪੂਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸੁਤੰਤਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।
- ਕਿਸੇ ਵੀ ਨਾਗਰਿਕ ਨਾਲ ਰੰਗ, ਨਸਲ, ਭਾਸ਼ਾ, ਖੇਤਰ, ਧਰਮ, ਜਾਤ ਆਦਿ ਦੇ ਅਧਾਰ ਤੇ ਕੋਈ ਵਿਤਕਰਾ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ।

***ਦੋ ਸਦਨੀ ਵਿਧਾਨ ਪਾਲਿਕਾ :** ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੋ ਸਦਨੀ ਵਿਧਾਨਪਾਲਿਕਾ ਦੀ ਵਿਵਸਥਾ ਕਰਦਾ ਹੈ ਜੋ ਕਿ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀ ਧਾਰਾ -79 ਵਿਚ ਦਰਜ ਹੈ। ਜਿਸ ਅਨੁਸਾਰ:

- ਸੰਸਦ ਦੇ ਹੇਠਲੇ ਸਦਨ ਨੂੰ ਲੋਕ ਸਭਾ ਅਤੇ ਉਪਰਲੇ ਸਦਨ ਨੂੰ ਰਾਜ ਸਭਾ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।
- ਲੋਕ ਸਭਾ ਨੂੰ ਹਰਮਨ ਪਿਆਰਾ ਸਦਨ ਵੀ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।
- ਲੋਕ ਸਭਾ ਦੇ ਮੈਂਬਰ ਜਨਤਾ ਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਤੱਖ ਰੂਪ ਵਿਚ ਸਰਵਜਨਕ ਬਾਲਗ ਮੱਤ ਅਧਿਕਾਰ ਦੁਆਰਾ ਚੁਣੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ।
- ਮੈਂਬਰਾਂ ਦਾ ਕਾਰਜਕਾਲ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।
- ਪ੍ਰਧਾਨ ਮੰਤਰੀ ਦੀ ਸਿਫਾਰਿਸ਼ ਤੇ ਰਾਸ਼ਟਰਪਤੀ ਲੋਕ ਸਭਾ ਨੂੰ ਕਾਰਜਕਾਲ ਪੂਰਾ ਹੋਣ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਵੀ ਭੰਗ ਕਰ ਸਕਦਾ ਹੈ।

***ਮੌਲਿਕ ਅਧਿਕਾਰ :** ਵਿਅਕਤੀ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਲਈ ਅਧਿਕਾਰ ਬਹੁਤ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਹਨ। ਇਸ ਉਦੇਸ਼ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੇ ਭਾਗ 3 ਵਿਚ ਧਾਰਾ 12 ਤੋਂ 35 ਤੱਕ ਮੌਲਿਕ ਅਧਿਕਾਰਾਂ ਦੀ ਵਿਵਸਥਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ:

- ਸਮਾਨਤਾ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ 14-18
- ਸੁਤੰਤਰਤਾ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ 19-22
- ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਦੇ ਵਿਰੁੱਧ ਅਧਿਕਾਰ 23-24
- ਧਾਰਮਿਕ ਸੁਤੰਤਰਤਾ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ 25-28
- ਸੱਭਿਆਚਾਰਕ ਅਤੇ ਵਿੱਦਿਅਕ ਅਧਿਕਾਰ 29-30
- ਸੰਵਿਧਾਨਿਕ ਉਪਚਾਰਾਂ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ 32

***ਮੌਲਿਕ ਕਰਤੱਵ :** ਭਾਰਤ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿਚ ਪਹਿਲਾਂ ਮੌਲਿਕ ਕਰਤੱਵਾਂ ਬਾਰੇ ਕੋਈ ਵਰਣਨ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਸੀ। ਪਰ 1976 ਵਿਚ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿਚ ਕੀਤੀ ਗਈ 42ਵੀਂ ਸੋਧ ਅਨੁਸਾਰ ਭਾਗ IV-A ਸ਼ਾਮਿਲ ਕਰਕੇ ਧਾਰਾ 51-A ਦੇ ਅਧੀਨ 11 ਮੌਲਿਕ ਕਰਤਵਾਂ ਦੀ ਵਿਵਸਥਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ |

*रਾਜਨੀਤੀ ਦੇ ਨਿਰਦੇਸ਼ਕ ਸਿਧਾਂਤ: ਭਾਰਤ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀ ਧਾਰਾ 36-51 ਤੱਕ ਰਾਜਨੀਤੀ ਦੇ ਨਿਰਦੇਸ਼ਕ ਸਿਧਾਂਤਾਂ ਦੀ ਵਿਵਸਥਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਇਹ ਸਿਧਾਂਤ ਆਇਰਲੈਂਡ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਤੋਂ ਲਏ ਗਏ ਹਨ। ਜੋ ਕਿ ਰਾਜ ਦੇ ਮਾਰਗ ਦਰਸ਼ਕ ਅਤੇ ਸੂਚਕ ਮੰਨੇ ਜਾਂਦੇ ਹਨ।

ਜੇਕਰ ਇਹਨਾਂ ਨੂੰ ਅਮਲੀ ਰੂਪ ਦਿੱਤਾ ਜਾਵੇ ਤਾਂ ਭਾਰਤ ਇਕ ਕਲਿਆਣਕਾਰੀ ਰਾਜ ਬਣ ਜਾਵੇਗਾ। ਇਸ ਦੀ ਮਹੱਤਤਾ ਦੇ ਸੰਬੰਧ ਵਿਚ ਵਿਚਾਰ ਪ੍ਰਗਟ ਕਰਦੇ ਹੋਏ ਐਮ. ਸੀ. ਛਾਂਗਲਾ ਨੇ ਕਿਹਾ ਹੈ ਕਿ, " ਇਹਨਾਂ ਸਿਧਾਂਤਾਂ ਨੂੰ ਠੀਕ ਤਰਾਂ ਅਮਲੀ ਰੂਪ ਦੇਣ ਨਾਲ ਭਾਰਤ ਧਰਤੀ ਤੇ ਸਵਰਗ ਬਣ ਜਾਏਗਾ ।" ਪ੍ਰੰਤੂ ਯਾਦ ਰਹੇ ਇਹਨਾਂ ਸਿਧਾਂਤਾਂ ਨੂੰ ਲਾਗੂ ਕਰਵਾਉਣ ਲਈ ਨਿਆਂਇਕ ਸਹਾਇਤਾ ਨਹੀਂ ਲਈ ਜਾ ਸਕਦੀ ਕਿਉਂਕਿ ਇਹ ਸਿਧਾਂਤ ਨਿਆਂ ਸੰਗਤ ਨਹੀਂ ਹਨ।

***ਧਰਮ ਨਿਰਪੱਖ ਰਾਜ :** ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਨੁ ਧਰਮ ਨਿਰਪੱਖ ਰਾਜ ਦੀ ਸਥਾਪਨਾ ਕਰਦਾ ਹੈ। 1976 ਵਿਚ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿਚ ਕੀਤੀ ਗਈ 42ਵੀਂ ਸੋਧ ਅਧੀਨ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀ ਪ੍ਰਸਤਾਵਨਾ ਵਿਚ ਧਰਮ ਨਿਰਪੱਖ ਸ਼ਬਦ ਨੂੰ ਜੋੜ ਕੇ ਇਸ ਤੱਥ ਦੀ ਪੁਸ਼ਟੀ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਪਰ ਇਸ ਦਾ ਅਰਥ ਇਹ ਨਹੀਂ ਹੈ ਕਿ 1976 ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਭਾਰਤ ਧਰਮ ਨਿਰਪੱਖ ਰਾਜ ਨਹੀਂ ਸੀ। ਭਾਰਤ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਤੋਂ ਹੀ ਇਕ ਧਰਮ ਨਿਰਪੱਖ ਰਾਜ ਰਿਹਾ ਹੈ।

- ਭਾਰਤ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀ ਧਾਰਾ 25 -28 ਤੱਕ ਦੇਸ਼ ਦੇ ਹਰੇਕ ਨਾਗਰਿਕ ਨੂੰ ਬਿਨਾਂ ਕਿਸੇ ਭੇਦਭਾਵ ਦੇ ਕਿਸੇ ਵੀ ਧਰਮ ਨੂੰ ਮੰਨਣ, ਪੂਜਾ ਕਰਨ, ਧਰਮ ਦਾ ਪ੍ਰਚਾਰ ਕਰਨ ਆਦਿ ਦੀ ਸੁਤੰਤਰਤਾ ਦਿੱਤੀ ਗਈ ਹੈ।
- ਸਰਕਾਰੀ ਵਿੱਦਿਅਕ ਅਦਾਰਿਆਂ ਵਿਚ ਧਾਰਮਿਕ ਵਿੱਦਿਆ ਦੀ ਮਨਾਹੀ ਹੈ।
- ਪ੍ਰਾਈਵੇਟ ਵਿੱਦਿਅਕ ਅਦਾਰਿਆਂ ਵਿਚ ਧਾਰਮਿਕ ਵਿੱਦਿਆ ਵਿਦਿਆਰਥੀਆਂ ਦੀ ਇੱਛਾ ਤੇ ਨਿਰਭਰ ਹੈ।
- ਧਰਮ ਦੇ ਅਧਾਰ ਤੇ ਕਿਸੇ ਵੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੇ ਵਿਤਕਰੇ ਦੀ ਮਨਾਹੀ ਹੈ।
- ਵਿਅਕਤੀ ਦੁਆਰਾ ਧਾਰਮਿਕ ਸੁਤੰਤਰਤਾ ਦੇ ਅਧਿਕਾਰ ਦੇ ਦੁਰ-ਉਪਯੋਗ ਕਰਨ ਦੀ ਮਨਾਹੀ ਹੈ।

***ਸੰਸਦ ਦੀਆਂ ਸੀਮਿਤ ਸ਼ਕਤੀਆਂ :** ਭਾਰਤੀ ਸੰਸਦ ਦੀਆਂ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਸੀਮਿਤ ਹਨ। ਸੰਸਦ ਪ੍ਰਭੂਸੱਤਾ ਸੰਪੰਨ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਪ੍ਰਭੂਸੱਤਾ ਸੰਪੰਨ ਸੰਸਦ ਉਹ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦੀਆਂ ਸ਼ਕਤੀਆਂ ਉੱਪਰ ਕੋਈ ਕਾਨੂੰਨੀ ਰੋਕ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ ਪਰ ਭਾਰਤੀ ਸੰਸਦ ਕਾਨੂੰਨ ਤੋਂ ਉੱਪਰ ਨਹੀਂ ਹੈ :

- ਸੰਸਦ ਸਿਰਫ਼ ਉਹਨਾਂ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਤੇ ਹੀ ਕਾਨੂੰਨ ਬਣਾ ਸਕਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦੀ ਆਗਿਆ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।
- ਸੰਸਦ ਦੁਆਰਾ ਪਾਸ ਬਿੱਲਾਂ ਤੇ ਰਾਸ਼ਟਰਪਤੀ ਦੀ ਪ੍ਰਵਾਨਗੀ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ।
- ਸੰਸਦ ਦੁਆਰਾ ਪਾਸ ਬਿੱਲਾਂ ਤੇ ਸੁਪਰੀਮ ਕੋਰਟ ਨਿਆਂਇਕ ਪੁਨਰ- ਨਿਰੀਖਣ ਦਾ ਪ੍ਰਯੋਗ ਕਰ ਸਕਦੀ ਹੈ।
- ਸੰਸਦ ਦੁਆਰਾ ਪਾਸ ਕੁਝ ਬਿੱਲਾਂ ਤੇ 1/2 ਰਾਜ ਵਿਧਾਨ ਸਭਾਵਾਂ ਦੀ ਪ੍ਰਵਾਨਗੀ ਵੀ ਜ਼ਰੂਰੀ ਹੈ।

ਇਹਨਾਂ ਤੱਥਾਂ ਤੋਂ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਭਾਰਤੀ ਸੰਸਦ ਪ੍ਰਭੂਸੱਤਾ ਸੰਪੰਨ ਨਹੀਂ ਹੈ।

***ਅਲਿਖਤ ਪ੍ਰਥਾਵਾਂ :** ਭਾਵੇਂ ਕਿ ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਲਿਖਤੀ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਇਸ ਵਿਚ ਪ੍ਰਥਾਵਾਂ ਅਤੇ ਰੀਤੀ- ਰਿਵਾਜਾਂ ਦਾ ਕੋਈ ਸਥਾਨ ਨਹੀਂ ਹੈ ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਪ੍ਰਥਾਵਾਂ ਅਤੇ ਰੀਤੀ - ਰਿਵਾਜਾਂ ਨੇ ਆਪਣਾ ਸਥਾਨ ਬਣਾ ਲਿਆ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਇਹ ਰੀਤੀ-

ਰਿਵਾਜ ਆਪਣੇ - ਆਪ ਹੀ ਬਣਦੇ ਹਨ । ਇਹਨਾਂ ਨੂੰ ਅਦਾਲਤਾਂ ਦੁਆਰਾ ਮਾਨਤਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਨਹੀਂ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਇਹਨਾਂ ਦੀ ਉਲੰਘਣਾ ਨਹੀਂ ਕੀਤੀ ਜਾ ਸਕਦੀ। ਇਹਪ੍ਰਥਾਵਾਂ ਹਨ:

- ਪ੍ਰਧਾਨ ਮੰਤਰੀ ਲੋਕ ਸਭਾ ਅਤੇ ਮੁੱਖ- ਮੰਤਰੀ ਰਾਜ ਵਿਧਾਨ ਸਭਾ ਵਿਚ ਬਹੁਸੰਮਤੀ ਪਾਰਟੀ ਜਾਂ ਗੱਠਜੋੜ ਦਾ ਨੇਤਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ।
- ਲੋਕ ਸਭਾ ਦੇ ਸਭਾਪਤੀ ਅਤੇ ਉੱਪ – ਸਭਾਪਤੀ ਨੂੰ ਆਮ ਤੌਰ ਤੇ ਨਿਰਵਿਰੋਧ ਚੁਣਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।
- ਰਾਜਪਾਲ ਆਮ ਤੌਰ ਤੇ ਦੂਜੇ ਰਾਜਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਲਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।
- ਰਾਜ ਦੀ ਹਾਈ ਕੋਰਟ ਦੇ ਜੱਜਾਂ ਦੀ ਨਿਯੁਕਤੀ ਕਰਦੇ ਸਮੇਂ ਸੰਬੰਧਿਤ ਰਾਜ ਦੇ ਮੁੱਖ ਮੰਤਰੀ ਦੀ ਸਲਾਹ ਲਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।
- ਰਾਸ਼ਟਰਪਤੀ ਪ੍ਰਧਾਨ ਮੰਤਰੀ ਦੀ ਸਿਫ਼ਾਰਿਸ਼ ਤੇ ਲੋਕ ਸਭਾ ਨੂੰ ਭੰਗ ਕਰ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।

***ਮੰਤਰੀ ਪ੍ਰੀਸ਼ਦ ਦਾ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਆਕਾਰ**: ਭਾਰਤ ਦੇ ਮੌਲਿਕ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿਚ ਮੰਤਰੀ ਪ੍ਰੀਸ਼ਦ ਦਾ ਆਕਾਰ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਨਹੀਂ ਸੀ ਬਲਕਿ ਇਸ ਨੂੰ ਪ੍ਰਧਾਨ ਮੰਤਰੀ ਅਤੇ ਰਾਜਾਂ ਵਿਚ ਮੁੱਖ ਮੰਤਰੀ ਦੀ ਇੱਛਾ ਤੇ ਛੱਡ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਜਿਸ ਦਾ ਨਤੀਜਾ ਇਹ ਹੋਇਆ ਕਿ ਮੰਤਰੀ ਪ੍ਰੀਸ਼ਦ ਦਾ ਅਕਾਰ ਬਹੁਤ ਵੱਧ ਗਿਆ ਕੁਝ ਲੋਕਾਂ ਨੇ ਤਾਂ ਇਸ ਨੂੰ ਹਾਥੀ ਦੇ ਆਕਾਰ ਦਾ ਕਹਿਣਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ| ਕਿਉਂਕਿ ਮੰਤਰੀਆਂ ਤੇ ਆਪਣੇ ਚਹੇਤਿਆਂ ਅੰਤੇ ਮਿੱਤਰਾਂ / ਰਿਸ਼ਤੇਦਾਰਾਂ ਨੂੰ ਮੰਤਰੀ ਪ੍ਰੀਸ਼ਦ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਕਰਨਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਸੀ। ਇਸ ਬੁਰਾਈ ਨੂੰ ਖਤਮ ਕਰਨ ਲਈ 2003 ਵਿਚ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿਚ 91ਵੀਂ ਸੋਧ ਕੀਤੀ ਗਈ ਜਿਸ ਉੱਪਰ 2 ਜਨਵਰੀ 2004 ਵਿਚ ਰਾਸ਼ਟਰਪਤੀ ਦੀ ਪ੍ਰਵਾਨਗੀ ਮਿਲੀ 'ਤੇ ਮੰਤਰੀ ਪ੍ਰੀਸ਼ਦ ਦਾ ਆਕਾਰ ਨਿਸ਼ਚਿਤ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ। ਇਸ ਸੋਧ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਮੰਤਰੀ - ਪ੍ਰੀਸ਼ਦ ਵਿਚ ਮੰਤਰੀਆਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਸੰਸਦ ਦੇ ਹੇਠਲੇ ਸਦਨ ਦੇ ਕੁੱਲ ਮੈਂਬਰਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ ਤੋਂ 15% ਤੋਂ ਵੱਧ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗੀ। ਭਾਵ ਮੰਤਰੀ ਪ੍ਰੀਸ਼ਦ ਵਿਚ ਮੰਤਰੀਆਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ 60 ਤੋਂ ਵੱਧ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗੀ ਘੱਟ ਹੋ ਸਕਦੀ ਹੈ।

***ਨਿਆਂਇਕ ਪੁਨਰ-ਨਿਰੀਖਣ :** ਭਾਰਤ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀ ਇਕ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾ ਇਹ ਵੀ ਹੈ ਕਿ ਇੱਥੇ ਨਿਆਂਪਾਲਿਕਾ ਸਰਵ-ਉੱਚ ਹੈ, ਸੰਸਦ ਪ੍ਰਭੂਸੱਤਾ ਸੰਪੰਨ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਸੰਸਦ ਸਿਰਫ਼ ਉਹਨਾਂ ਤੱਥਾਂ ਸੰਬੰਧੀ ਹੀ ਕਾਨੂੰਨ ਬਣਾ ਸਕਦੀ ਹੈ ਜਿਸ ਦੀ ਪ੍ਰਵਾਨਗੀ ਨਿਆਂ ਵਿਵਸਥਾ ਦਿੰਦੀ ਹੈ। ਜੇਕਰ ਸੰਸਦ ਦੁਆਰਾ ਪਾਸ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਕੋਈ ਵੀ ਕਾਨੂੰਨ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੇ ਅਨੁਸਾਰ ਨਾਂ ਹੋਵੇ ਤਾਂ ਨਿਆਂ ਪਾਲਿਕਾ ਇਸ ਨੂੰ ਰੱਦ ਕਰ ਸਕਦੀ ਹੈ ।

ਇਸ ਵਿਵਸਥਾ ਨੂੰ ਹੀ ਨਿਆਂਪਾਲਿਕਾ ਦਾ ਨਿਆਂਇਕ ਪੁਨਰ ਨਿਰੀਖਣ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

***ਇਕਹਿਰੀ ਨਾਗਰਿਕਤਾ :** ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਇਕਹਿਰੀ ਨਾਗਰਿਕਤਾ ਦੀ ਵਿਵਸਥਾ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਦੇਸ਼ ਦਾ ਨਾਗਰਿਕ ਭਾਰਤ ਦੇ ਕਿਸੇ ਵੀ ਕੋਨੇ ਵਿਚ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ ਉਸ ਨੂੰ ਸਿਰਫ਼ ਭਾਰਤ ਦੀ ਹੀ ਨਾਗਰਿਕਤਾ ਹਾਸਿਲ ਹੁੰਦੀ ਹੈ ਨਾਂ ਕਿ ਉਸ ਖਾਸ ਖੇਤਰ ਦੀ। ਸੰਯੁਕਤ ਰਾਜ ਅਮਰੀਕਾ, ਕੈਨੇਡਾ ਅਤੇ ਸਵਿਟਜ਼ਰਲੈਂਡ ਅਜਿਹੇ ਦੇਸ਼ ਹਨ ਜੋ ਦੋਹਰੀ ਨਾਗਰਿਕਾਂ ਦੀ ਵਿਵਸਥਾ

ਕਰਦੇ ਹਨ, ਪਰ ਭਾਰਤ ਵਿਚ ਇਕਹਿਰੀ ਨਾਗਰਿਕਤਾ ਹੀ ਪਾਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ।

***ਸੰਯੁਕਤ ਚੋਣ ਪ੍ਰਣਾਲੀ** : ਸੁੰਤੰਤਰਤਾ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਸੰਪਰਦਾਇਕ ਚੋਣ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਸੀ, ਆਪਣੀ ਸੰਪਰਦਾ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਿਤ ਅਧਿਕਾਰੀ ਦੀ ਹੀ ਚੋਣ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਸੀ। ਪਰ ਸੁਤੰਤਰਤਾ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਭਾਰਤ ਵਿਚ ਸੰਯੁਕਤ ਚੋਣ ਪ੍ਰਣਾਲੀ ਅਪਣਾਈ ਗਈ ਹੈ।

- ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀ ਧਾਰਾ- 325 ਅਧੀਨ ਕਿਹਾ ਗਿਆ ਕਿ ਹਰ ਚੋਣ ਖੇਤਰ ਲਈ ਇਕ ਸਾਂਝੀ ਚੋਣ ਸੂਚੀ ਹੋਵੇਗੀ।
- ਜਿਸ ਵਿਚ ਵੱਖ-ਵੱਖ ਧਰਮਾਂ, ਜਾਤਾਂ, ਨਸਲਾਂ, ਰੰਗ, ਲਿੰਗ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧ ਰੱਖਣ ਵਾਲੇ ਲੋਕਾਂ ਦੇ ਨਾ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੋਣਗੇ|
- ਕਿਸੇ ਵੀ ਵਿਅਕਤੀ ਨਾਲ ਕਿਸੇ ਵੀ ਅਧਾਰ ਤੇ ਕੋਈ ਵਿਤਕਰਾ ਨਹੀਂ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇਗਾ।
- ਜਿਹੜੇ ਖੇਤਰ ਸਾਂਝੇ ਹੋਣਗੇ ਉੱਥੋਂ ਦੇ ਸਾਰੇ ਵੋਟਰ ਮਿਲ ਕੇ ਇਕ ਸਾਂਝੇ ਉਮੀਦਵਾਰ ਦੀ ਚੋਣ ਕਰਨਗੇ।

***ਦਲ ਬਦਲੀ ਦੀ ਮਨਾਹੀ** : ਦਲ- ਬਦਲੀ ਦੀ ਬਿਮਾਰੀ ਨੇ ਪੂਰੀ ਰਾਜਨੀਤੀ ਨੂੰ ਬੁਰੀ ਤਰਾਂ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਬੁਰਾਈ ਨੂੰ ਖ਼ਤਮ ਕਰਨ ਲਈ ਸੰਵਿਧਾਨ ਵਿਚ 1985 ਵਿਚ 52ਵੀਂ ਸੋਧ ਕਰਕੇ ਰੋਕਣ ਦੀ ਕੋਸ਼ਿਸ਼ ਕੀਤੀ ਗਈ ਪਰ ਕਿਸੇ ਵੀ ਪਾਰਟੀ ਦੇ 1/3 ਮੈਂਬਰ ਵੱਖ ਹੋ ਕੇ ਆਪਣੇ ਵੱਖਰੇ ਵਿਧਾਇਕ ਦਲ ਦਾ ਨਿਰਮਾਣ ਕਰ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਵਿਵਸਥਾ ਦਾ ਲਾਭ ਉੱਠਾਉਂਦਿਆਂ ਬਹੁਤ ਸਾਰੇ ਵਿਧਾਇਕ ਦਲ ਦੋਫਾੜ ਹੁੰਦੇ ਰਹੇ। ਫਿਰ ਇਸ ਬੁਰਾਈ ਨੂੰ ਖ਼ਤਮ ਕਰਨ ਲਈ 2003 ਵਿਚ 91ਵੀਂ ਸੋਧ ਕੀਤੀ ਗਈ। ਜਿਸ ਅਨੁਸਾਰ ਹਰੇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀ ਦਲ -ਬਦਲੀ ਤੇ ਰੋਕ ਲਗਾ ਦਿੱਤੀ ਗਈ। ਹੁਣ ਕਿਸੇ ਦਲ ਦੇ ਕੇਵਲ 2/3 ਮੈਂਬਰ ਹੀ ਇਕ ਦਲ ਛੱਡ ਕੇ ਇਕੱਠੇ ਹੋ ਕੇ ਦੂਸਰੇ ਦਲ ਵਿਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੋ ਸਕਦੇ ਹਨ। ਜੇਕਰ ਕੋਈ ਵਿਧਾਇਕ ਦਲ ਬਦਲੀ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸ ਦੀ ਸੰਬੰਧਿਤ ਸਦਨ ਦੀ ਮੈਂਬਰੀ ਖਤਮ ਹੋ ਜਾਏਗੀ ਅਤੇ ਸਦਨ ਦੇ ਬਾਕੀ ਰਹਿੰਦੇ ਕਾਰਜਕਾਲ ਦੌਰਾਨ ਕਿਸੇ ਵੀ ਸਰਕਾਰੀ ਲਾਭਦਾਇਕ ਅਹੁਦੇ ਉੱਤੇ ਨਹੀਂ ਲਗਾਇਆ ਜਾਵੇਗਾ।

***ਇਸਤਰੀਆਂ ਲਈ ਸੀਟਾਂ ਰਾਖਵੀਆਂ ਰੱਖੇ ਜਾਣ ਦਾ ਵਿਵਸਥਾ** : ਲੋਕਤੰਤਰ ਦੀ ਸਫ਼ਲਤਾ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਕ੍ਰਿਆਸ਼ੀਲ ਭਾਗੀਦਾਰੀ ਤੇ ਨਿਰਭਰ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਭਾਰਤ ਵਿਚ ਇਸਤਰੀਆਂ ਲੰਬੇ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਲੋਕ ਸਭਾ ਅਤੇ ਵਿਧਾਨ ਸਭਾਵਾਂ ਵਿੱਚ 33% ਸੀਟਾਂ ਰਾਖਵੀਆਂ ਰੱਖੇ ਜਾਣ ਦੀ ਮੰਗ ਕਰਦੀਆਂ ਰਹੀਆਂ ਸਨ। ਇਸ ਉਦੇਸ਼ ਦੀ ਪੂਰਤੀ ਲਈ ਲੋਕ ਸਭਾ ਅਤੇ ਰਾਜ ਸਭਾ ਵਿੱਚੋਂ 21 ਅਤੇ 29 ਸਤੰਬਰ 2023 ਨੂੰ 106ਵਾਂ ਸੰਵਿਧਾਨਿਕ ਬਿੱਲ ਪਾਸ ਕੀਤਾ ਗਿਆ। ਜਿਸ ਰਾਹੀ ਇਸਤਰੀਆਂ ਲਈ 33% ਸੀਟਾਂ ਰਾਖਵੀਆਂ ਰੱਖੀਆਂ ਗਈਆਂ।

ਸਿੱਟਾ : ਭਾਰਤ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨ ਦੀਆਂ ਉੱਪਰ ਲਿਖੀਆਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪੜ੍ਹਨ ਪਿੱਛੋ ਅਸੀਂ ਇਸ ਸਿੱਟੇ ਤੇ ਪੁੱਜਦੇ ਹਾਂ ਕਿ ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਬਾਕੀ ਸਾਰੇ ਸੰਵਿਧਾਨਾਂ ਤੋਂ ਨਿਆਰਾ ਹੈ। ਇਹ ਸੰਸਾਰ ਦੇ ਵੱਖ- ਵੱਖ ਦੇਸ਼ਾਂ ਦੇ ਸੰਵਿਧਾਨਾਂ ਦੀਆਂ ਚੰਗੀਆਂ ਵਿਵਸਥਾਵਾਂ ਦਾ ਨਿਚੋੜ ਹੈ। ਇਹ ਸੰਵਿਧਾਨ ਨਿਰਮਾਤਾਵਾਂ ਦੀ ਦੂਰਦਰਸ਼ਤਾ ਦਾ ਪ੍ਰਤੀਕ ਹੈ ਇਹ ਹੀ ਕਾਰਨ ਹੈ ਕਿ ਇਹ ਅੱਜ ਤੱਕ ਸਫਲਤਾ ਪੂਰਵਕ ਚੱਲ ਰਿਹਾ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ:

1. Basu, Durga Das- Introduction to the constitution of India
2. V. N. Shukla- The Constitution of India
3. J.C. Johri – The Constitution of India (A Politico-Legal Study)
4. Agarwal, R.C. & Mahesh Bhatnagar - Constitutional Development and National Movement of India, India, 2006
5. Subash, C. Kashyp, our constitution; An Introduction to India's Constitution and Constitutional Law.
6. Constitutional Law - From Wikipedia.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 180–184

भारतीय महिलाओं के संवैधानिक एवं विधिक अधिकार समानता से सशक्तिकरण तक

विवेचना पाण्डेय, शोधार्थी,
असिस्टेंट प्रोफेसर, आर. के. डी. एफ. यूनिवर्सिटी, भोपाल, मध्य प्रदेश।
डॉ. सरिता भवानी मालवीय, शोध निर्देशक
असिस्टेंट प्रोफेसर, आर. के. डी. एफ. यूनिवर्सिटी, भोपाल, मध्य प्रदेश।

सारः– भारतीय समाज महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ करने हेतु संविधान में महिलाओ को विशेप अधिकार प्रदान किए हैं। संविधान के अनुच्छेद–14,15 और 16 महिलाओं को समानता का अधिकार देते हैं, जब कि अनुच्छेद 39 (क) और 42 में महिलाओ के समान अवसर उचित कार्य स्थितियाँ एव मातृत्व सरक्षण की भी व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त विचित प्रावधानों जैरो– हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (2005 रांशोधन) ने पुत्रियों को रामान रांपत्ति अधिकार दिया हैं। दहेज निपेध अधिनियम 1961 घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम 2005 और यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम 2013 ने महिलाओं की गरिमा व सुरक्षा सुनिश्चित की।पंचायती राज व्यवस्था में 33 प्रतिशत आरक्षण न उन्हे निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदार बनाया। इसी प्रकार सें संवैधानिक अधिकारों एवं विधिक संरक्षणो ने महिलाओं को न केवल समानता ही नहीं दी बल्कि उन्हे सशक्तिकरण की दिशा में अवसर भी किया हैं आधुनिक भारत में महिलाएँ शिक्षा राजनीति, अर्थव्यस्था और विज्ञान तकनीक सभी क्षेत्रो में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। अत संक्षेप में हम यह कह सकते हैं, कि भारतीय सवंधिान एवं कानूनों ने भारतीय महिलाओं को पराधीनता से निकाल कर समानता न्याय और सशक्तिकरण की राह पर अवसर किया हैं।

प्रस्तावनाः– भारत में भारतीय महिलाओं को कई प्रकार के महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान किए गए हैं जिससमें से सवैधानिक अधिकारों में सर्वप्रथम समानता का अधिकार भेदभाव के विरूद्ध अधिकार शिक्षा संपत्ति और राजनैतिक संवैधानिक अधिकार शामिल हैं। इन सभी अधिकारों का विशलेपण करने से पता चलता हैं, कि भारतीय संविधान महिलाओं को सशक्त बनाने और उन्हे समाज में एक समान अधिकार प्रदान करवाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। प्राचीन काल से वर्तमान युग तक में यदि हम नारी के संघर्पो की बात करे तो वो बहुत लम्बी रही हैं। कहा जाता रहा हैं कि हजार वर्पो से नारी ही पराधीनता के बन्धन में सदैव रही हैं, इसी कारण वश नारी को ''अंतिम उपनिवेश'' की भी संज्ञा दी जाती रही हैं। वर्तमान युग में विश्व में नारी के प्रति किए जाने वाले अपनाधो की संख्या में असाधारण वृद्धि देखी गई हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव हमें समाज में देखने को मिल रहा हैं क्योकि अपराधो की उत्पत्ति समाज से ही होती हैं इसलिए यह कहा जाता हैं, कि समाज और अपराध एक दूसरे के पूरक होते हैं। आदिम युग में मानव की प्रत्येक अवश्यकताएँ अत्यधिक न्यून थी, इसलिए अपराध भी काफी कम होते थें, किन्तु वर्तमान समय में मनुष्य की निति नये बढ़ती आवश्यकताओं के कारण भी अपराधों में वृद्धि होने लगी हैं। प्रारम्भ में अपराध केवल चोरी,लूट, हत्या बलात्कार इत्यादि की घटनाओं तक ही सीमित थें किन्तु वर्तमान में बढ़ते इलेक्ट्रानिक मीडिया इन्टरनेट, मोबाईलो का बढ़ता चलन तक बढ़ गई हैं जिसे साइबर अपराध भी कहा जाता हैं, जो अपराधो को बढ़ावा देने में अपनी एक अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

महिलाओ को सशक्त बनाने के सवैधानिक एवं विधिक उपबन्ध :– वर्तमान समय में महिलाओ पर अनिगिनत प्रकार से अत्याचार किए जा रहे हैं उनका दैहिक शोपण, गांसिक एवं आर्थिक हर प्रकार से उन पर सगाज द्वारा अत्याचार हो रहा हैं उन सभी अत्याचारो पर विराम लगाने के लिए भारत में महिलाओ के संरक्षण के लिए विधियो का निर्माण किया गया हैं।

जिससे हमारे समाज की महिलाओ को सूरक्षा एवं मान सम्मान प्रदान हो सकें। भारतीय न्याय संहिता महिलाओ को कई महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान करती हैं, जिनमें शामिल हैं हिंसा और भेदभाव से मुक्त रहने का अधिकार, शिक्षा और स्वास्थ्य का अधिकार, संम्पत्ति में स्वामित्व रखने का अधिकार, वोट देने का अधिकार, और समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार इसके अतिरिक्त भारतीय न्याय संहिता महिलाओ को विभिन्न अपराधों से सुरक्षा प्रदान करता हैं।

महिलाओ के अधिकारः–

महिलाओ के प्रति होने वाले हिंसा और भेदभाव से उन्हे मुक्त रहने का अधिकारः–

1. भारतीय न्याय संहिता 2023 महिलाओं को हिंसा और भेदभाव से मुक्त रहने का अधिकार देता हैं जिसमें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के उच्चतम मानक को प्राप्त करने एवं आनंद लेने का अधिकार शामिल हैं।
2. भारतीय न्याय संहता 2023 महिलाओ को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता हैं।
3. भारतीय न्याय संहिता 2023 महिलाओ को सम्पत्ति का मालिक होने का अधिकार प्रदान करता हैं।
4. भारतीय न्याय संहिता 2023 महिलाओं को वोट देने का अधिकार प्रदान करता हैं।
5. भारतीय न्याय संहिता 2023 महिलाओ को पुरूप के बराबर ही वेतन पाने का अधिकार प्रदान करता हैं।
6. भारतीय न्याय संहिता 2023 महिलाओ को जहाँ पर महिलाए नौकरी करती हैं वहाँ पर उनकी पूर्णरूपेण सुरक्षा का अधिकार प्रदान करता हैं।
7. भारतीय न्याय संहिता 2023 महिलाओ को घर में होने वाले अत्याचारो प्रतारणाओ एवं उन पे हो रहे शोपणों से संरक्षण एवं सुरक्षा का अधिकार प्रदान करता हैं।
8. भारतीय न्याय संहिता 2023 महिलााओ पर किसी भी प्रकार से हो रहे अतयाचारों से सुरक्षा प्रदान करने के लिए जीरो (FIR) एफ आई आर दर्ज कराने का अधिकार प्रदान करती हैं।
9. भारतीय न्याय संहिता 2023 महिलाओं को पारिवारिक कानून में समान अधिकार प्राप्त करवाता हैं, सम्पत्ति में स्वामित्व और भरण–पोपण का अधिकार परिवार में महिलाओ को पुरूपो के समान ही गृहकार्य हो या बाहरी सभी में अपनी राय सहमति और सहयोग प्रदान करने का अधिकार प्रदान करता हैं। जिससे महिलाओ को समाज में गौरवपूर्ण जीवन जीने का अधिकार रहें। और उनकी प्रतिप्ठा बनी रहें,
10. भारतीय न्याय संहिता 2023 महिलाओं को जीवन निर्वाह के लिए भरण–पोपण का अधिकार देता हैं। जो उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार उन्हे प्रदान किया जा सकता हैं।
11. परिवार मामलो में महिलाओं के अधिकार घरेलू हिंसा से महिलाओ का संरक्षण अधिनियम 2005 के तहत औपचारिक शादी के बिना भी यदि महिला का किसी पुरूप के साथ शादीनुमा संम्बन्ध हैं तो वह महिला भरण–पोपण की हकदार हैं। एक नाजायज पुत्री भी अपने माता व पिता के द्वारा भरण–पोपण का हकदार होती है एक तलाक शुदा पत्नी भी अपने पति से भरण पोपण का हकदार होती है यदि उस महिला या पत्नी ने दूरारी शादी नहीं की हैं तो,

मुरिलम महिलाओ के मामले में राामान्य रूप रो भरण–पोपण का क्लेम ईदत की अवधि के दौरान ही होती हैं। एक फौजदारी अदालत के समक्ष भरण पोपण के मामले में अगर मुस्लिम पति फौजदारी अदालत के अधिकार क्षेत्र का विरोध करता हैं तो पत्नी का क्लेम राज्य वक्फ बोर्ड तय करेगा, और भुगतान करेगा। ''डैनियल लतीफ (2001) और शबाना बानो (2009) के मुकदमो में सर्वोच्चय न्यायालय ने निर्णय दिया हैं कि एक तलाकशुदा मुस्लिम पत्नी ईदत के अवधि के दौरान भी भरण पोपण की हकदार हैं, अगर उस महिला ने दुबारा शादी नहीं की है तो, महिला की भरण–पोपण राशि पक्षों कि हैसियत और हालात पर निर्भर करती हैं और दावेदार की उचित जरूरते उसका अलग रहने का औचित्य उसके आर्थिक साधन और उन व्यक्तियो की संख्या जा प्रतिवादी पर भरण–पोपण के लिये निर्भर हैं। साधारणतया भरण–पोपण के मामले में जो व्यक्ति भरण–पोपण के लिए बाध्य हैं उसके शुद्ध वेतन में से लगभग 20–25 प्रतिशत का दावेदार होती हैं।

भारतीय न्याय संहिता 2023 में पहली बार महिलाओ के खिलाफ अपराध से संबंधित प्रावधानो को प्राथमिकता दी गई हैं और उन्हे एक अध्याय की तरह रखा गया हैं। महिलाओ के खिलाफ अपराधो के लिए मौत की सजा तक की सख्त सजा

का प्रावधान किया गया हैं। 18 वर्ष से कम उम्र की महिला के साथ सामूहिक बलात्कार की सजा, दोपी व्यक्ति के शेप प्राकृतिक जीवन या मृत्यू तक आजीवन कारावास का प्रावधान बना दिया गया हैं। झूठा वादा करके शादी नौकरी पदोन्नति या पहचान छिपाकर यौन संबंध बनाने आदि के लिए एक नया अपराध भी भारतीय न्याय संहिता (2023) में शामिल किया गया हैं नये अपराधिक कानूनो में महिलाओ की सूरक्षा सें सबंधित मुख्य प्रावधान अनुलग्नक में दिए गए हैं।

भारतीय न्याय संहिता के अध्याय–5 में महिलाओं के खिलाफ अपराधो को अन्य सभी अपराधों पर वरीयता दी गई हैं। भारतीय न्याय संहिता में सामूहिक बलात्कार की नाबालिक पीड़ितो के लिए आयु अंतर को समाप्त कर दिया गया हैं। पहले 16 वर्ष और 12 वर्ष से कम उम्र की लड़की के सामूहिक बलात्कार के लिए अलग–अलग सजाएँ निर्धारित की गई थी वर्तमान में इस प्रकार के प्रावधान को संसोधित किया गया है और अब 18 वर्ष से कम उम्र की महिला के साथ सामूहिक बलात्कार के लिए आजीवन कारावास या मृत्यू दण्ड की सजा हो सकती हैं। जिस महिला पीड़ित के साथ बलात्कार कारित किया जाता हैं उस बलात्कार से संबंधित जाँच के लिए पीड़ित को अधिक सुरक्षा प्रदान करने और पारदर्शिता लागू करने के लिए पुलिरा द्वारा पीड़ित के बयान ऑडियो वीडियो के माध्यम रो दर्ज किया जाएगा। महिला के खिलाफ कुछ अपराधो के लिए पीड़िता का बयान जहाँ तक संभव हो एक महिला मजिस्ट्रेट द्वारा और उनकी अनुपस्थिति में एक पुरूप मजिस्ट्रेट द्वारा एक महिला की उपस्थिति मे दर्ज किया जाना चाहिए ताकि सवेदन शीलता और निप्पक्षता सुनिश्चित की जा सके और पीड़ितो के लिए एक सहायक वातावरण मुहैया किया जा सके। चिकित्सक को बलात्कार पीड़िता की मेडिकल रिपोर्ट 7 दिनो के भीतर जाँच अधिकारी को भेजने का आदेश दिया गया हैं।

नए कानून में महिलाओ के खिलाफ अपराधो के पीडितो को मुक्त प्राथमिक उपचार या चिकित्सा उपचार प्रदान करने का प्रावधान हैं। यह प्रावधान चुनौतीपूर्ण समय के दौरान पीड़ितो की भलाई एवं स्वास्थ्य लाभ को प्राथमिकता देते हुए जरूरी चिकित्सा देखभाल तक तत्काल पहुच सुनिश्चित करना होता हैं। भारतीय महिलाओं को कई प्रकार के विशेपाधिकार के तहत एक अधिकार विवाह के उपरान्त अपना जीवन स्वतंत्र और सूरक्षित रूप से जीने भी अधिकार भारतीय महिलाओं को भारतीय संविधान प्रदान करती हैं। भारत में प्राचीन काल से वर्तमान समय तक विवाहित महिलाओं पर बहुत अत्याचार होते आ रहे हैं। चाहे वह दहेज के लिए प्रताड़ित करना हो, या सती प्रथा या फिर किसी भी प्रकार से घर पे किया जाने वाला घरेलू हिंसा। इनमें से कुछ अनैतिक प्रथाएँ आज भी मौजूद हैं। इन अनैतिक प्रथाओ को मानने वाले आज के स्वतंत्र भारत के शिक्षित समाज भी आते हैं वहाँ के पढ़े–लिखे लोग भी इसका पालन करते हैं। महिलाएँ अधिकत्र चुप रहती हैं क्योकि उनको अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं रहता हैं। कुछ शिक्षित होने के बाबजूद इन कुरीतियों को मानने को विवश रहती हैं। क्योकि उन्हे भारत में विवाहित महिलाओं के अधिकारों के बारे में ज्ञान नही रहता हैं। भारत के संविधान में पत्नी के विधिक अधिकारो को स्पप्ट रूप से वर्णित किया गया हैं। ये कानून महिलओं को अन्याय और अत्याचारो से बचाते हैं। और महिलाओं को समानता का अधिकार देते है। जब महिलाएँ अपने अधिकारो को जानने लगेगी और अच्छी तरह से समझ सकेगी तभी वे अपनी सुरक्षा कर पाएगी। भारतीय महिलाओ को घरेलू हिंसा अधिनियम महिलाओ को अपने पति या पति के परिवार द्वारा करने वाली किसी भी प्रकार की हिंसा से सुरक्षा प्रदान करवाता हैं। यह भारत की विवाहित महिलाओं को उनके पति या प्रति के परिवार के खिलाफ याचिका दायर करने का अधिकार प्रदान करता हैं। अगर महिला को कोई शारीरिक मानसिक या भावनात्मक नुकसान पहुचाया जाता हैं। तो उन्हे ये अधिनियम सुरक्षा प्रदान करता हैं।

<u>वैवाहिक घर में निवास करने का अधिकारः–</u>

हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण–पोपण अधिनियम के अनुसार किसी भी विवाहित स्त्री को अपने ससूराल में रहने का अधिकार होता हैं। अर्थात पत्नी को अपने वैवाहिक घर में रहने का अधिकार होता हैं। वैवाहिक घर मूल रूप से एक घर होता हैं जिसे एक महिला अपने पति के साथ साझाा करती हैं। पति या उसके माता–पिता घर के मालिक हो सकते है। यह किराए की सम्पत्ति भी हो सकती हैं। चाहे घर पैतृक हो या संयुक्त परिवार का परन्तु बहु को रहने का अधिकार होता हैं। कोई भी विवाहित महिला अपने ससुराल (वैवाहिक घर) में तब भी रहने की अधिकारी रहती हैं जब उसका पति वहाँ न हो या पति का निधन हो चुका हो।

<u>स्त्री धन का अधिकारः–</u>"स्त्रीधन" उन उपहारो को कहा जाता हैं जो किसी महिला को विवाह समारोह और प्रवस के दौरान दिए जाते है इसमे कोई भी चल या अचल सम्पत्ति आभूपण उपहार धन आदि शामिल है। स्त्रीधन का मुख्य उद्देश्य विवाहित

महिला को विवाह के बाद वित्तीय सुरक्षा प्रदान करना होता हैं, जिससे महिला किसी भी प्रकार की आपातकालीन समस्याओं से निपट कर अपना जीवन यापन कर सके। सुप्रीम कोर्ट ने महिलाओं को स्त्रीधन को संचितकरने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया हैं। कोर्ट न कहा हैं कि–तलाक के बाद भी महिलाओ का यह अधिकार खत्म नहीं होता हैं। भारत में किसी भी स्त्री विवाह के बाद प्राप्त स्त्रीधन जो उपहार स्वरूप उसे प्रदन किया जाता हैं वह संचित कर रख सकने का पूर्ण अधिकार रखती हैं। यह अधिकार विवाहित स्त्री को भारतीय कानून प्रदान करता हैं। अगर पति या पति के परिवार वाले स्त्रीधन देने से मना करते है तो उन सभी पर अपनाधिक आरोप लगाए जा सकते है। ऐसे मामलो मे जहाँ सास अपनी बहू का स्त्रीधन रखती है और बिना किसी कानूनी वसीयत के उसका निधन हो जाता है तो भी विवाहित स्त्री को ही उस पर कानूनी अधिकार रहता हैं। जिससे उसका जीवन सुरक्षित रह सके।

पैत्रिक सम्पत्ति का अधिकारः– स्वतंत्र भारत के पहले महिलाओ को पैत्रिक संम्पत्ति में कोई अधिकार नही दिया जाता था, परन्तु अब विवाहित महिलाओ के संपत्ति अधिकार भारत में विवाह के बाद भी उनके पुरूप भाई–बहनो के बराबर होता हैं। उत्तराधिकार प्रारंभ में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में बेटियों और बेटो को पिता की सम्पत्ति मे समान अधिकार दिए गए थे। बेटियाँ अपने पिता की सम्पत्ति पर तभी तक अधिकार प्राप्त कर सकती थी जब तक की उनकी शादी न कर दी गई हो। परन्तु 2005 में अधिनियम में संसोधन किया गया और नये अधिनियम में कहा गया हें कि हर बेटी चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित अपने पिता की मृत्यू के बाद उनके सम्पतियों में अपने पुरूप भाई–बहन के बराबर का अधिकार रखती हैं। इसके अलावा विवाहित महिलाओ की सम्पति अधिकार भारत में यह भी कहा गया हैं कि बेटियों को माँ की सम्पत्ति में हिस्सा मिलता हैं। यदि पिता अपनी मृत्यु से पहले किसी वसीयत पर हस्ताक्षर नहीं करते हैं तो वे कानूनी सहायता के लिए न्यायालय की मदद ले सकते हैं।

गरिमा और सम्मान के साथ जीने का अधिकारः– पत्नी को अपने ससूराल वालो के साथ सम्मान और आत्मसम्मान के साथ रहने का कानूनी अधिकार होता हैं। भारत में पत्नी को अपने पति और ससूराल वाले के समान जीवन शैली जीने का अधिकार होता हैं। अपने इच्छा के अनुसार अपने लिए वर खोजने की भी स्त्री को पूर्ण रूप से स्वतंत्रता होती हैं। अगर स्त्री की उम्र 18 वर्प से अधिक की हैं। पत्नी को अपने पति से उचित स्तर और जीवन की आवश्यक वस्तुओ को प्राप्त करने का अधिकार होता हैं। हलांकि यह लाभ पति के जीवन स्तर, उसकी आय और संसाधनो पर निर्भर करते हैं।

बाल भरण–पोषण का अधिकारः– पति एवं पत्नी का यह कर्तव्य होता हैं कि वह अपने नाबालिक बच्चे का भरण–पोपण करें, यदि महिला कमाती नही हैं तो अर्थिक सहायता प्रदान करना पूरूप का कर्तव्य होता हैं। यदि दोनो साथी (पति–पत्नी) बच्चे का आर्थिक रूप से भरण–पोपण नहीं कर सकते हैं तो वे अपने माता–पिता से सहायता पाने के अधिकारी होते हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि स्वतंत्र भारत में महिलओ के सुरक्षा और सम्मान के लिए विभिन्न प्रकार से सहायता प्रदान करने के नियम और कानून बनाए गए हैं जिससे स्त्री अपनी सम्पूर्ण जीवन बिना किसी डर के समाज में और देश में प्रतिप्ठा के साथ निर्वाह कर राके। जिरारो भारत देश प्रगतिकर के एक विकरित भारत बन राके।

निष्कर्षः– भारत में महिलाओं के सुरक्षा और सम्मान के लिए विभिन्न प्रकार के नियम और कानून बनाए गए हैं जिससे स्त्री अपना सम्पूर्ण जीवन बिना किसी डर के देश में प्रतिप्ठा और सम्मान के साथ कर सके। जिससे भारत देश प्रगति कर के एक विकसित भारत बन सके। विभिन्न प्रकार के नियम एवं कानून बनने के बाद भी महिलाओं की दशा में कोई विशेप सुधान नहीं हुआ हैं। यह कहना आज के वर्तमान समय में पूर्णतया सत्य नहीं माना जाएगा। क्योकि यह कह देना महिलाओं को भारतीय संविधान द्वारा प्रदान किए गए विभिन्न प्रकार कि शक्तियों एवं अधिकारों का अपमान होगा। अगर हम वर्तमान की राजनीति की बात करे तो इन्ही अधिकारों की वजह से भारत में महिलाएँ राप्ट्रपति प्रधानमंत्री लोकसभा अध्यक्ष नेता प्रतिपक्ष आदि के पद पर सुशोभित रही हैं। यदि हम कला एवं मनोरंजन के क्षेत्र की बात करे तो इन क्षेत्रो में अब महिलाओं का स्थान अग्रणी रहा हैं। खेल के क्षेत्र में भी महिलाएँ अब सर्वोत्तम उपलब्धियाँ अर्जित कर देश का गौरव और सम्मान विश्व भर में बढ़ा रही हैं। भारत में साहित्य के क्षेत्र को भी महिलाओं की भूमिका से नकारा नही जा सकता हैं। सरोजनी नायडू कमला नेहरू, अनीता देसायी आदि कुछ प्रमुख नाम हैं। वाणिज्य के क्षेत्र में देखा गया हैं। कि वर्तमान समय में बैंक व वित उद्योग की अध्यक्षता (स्टेट बैंक आफ इण्डियाँ) चंदा कोचर (ICICI Bank) शिखा शर्मा (Axis Bank) उपा सागवन भारत की सबसे बड़ी बीमा कम्पनी (LIC) की प्रबंधन निर्देशक रही हैं। लेकिन यह सिक्के का केवल एक ही पहलू हैं स्वतंत्रता के बाद से वर्तमान

समय तक महिलाओ को सशक्त बनाने और उन पर होने वाले अत्याचारों अन्यायो को रोकने के लिए विभिन्न प्रकार के अधिनियम जैसे– हिन्दू विवाह अधिनियम विशेप विवाह अधिनियम विवाह विच्छेद एवं तलाक अधिनियम वैश्यावृत्ती उन्मूलन अधिनियम गर्भपात की चिकित्सा द्वारा मान्यता आदि कानून होने के पश्चात भी भारत में सभी महिलाओं को इसका लाभ नहीं मिलता हैं।

यदि हम पूरे देश में महिलाओ पर होने वाले अपराधों का विश्लेपण करे तो हम यह पाएगें कि अधिकांश अपराधो का रिपोर्ट ही दर्ज नही हो पाती हैं। महिलाओ के उत्थान एवं संरक्षण के लिए पर्याप्त अधिनियम तो हैं परन्तु महिलाओ को अपने अधिकारों का ज्ञान ही नहीं हो पाता हैं। घरेलू हिंसा से सम्बन्धित मामलो में महिलाएँ अपने अधिकारो के लिए आगे ही नहीं आती हैं। देखा गया हैं कि देश में कुल मतदाओ में आधी संख्या महिलाओं की हैं मगर इसके बावजूद भी लोकसभा एवं राज्यसभा विधान मण्डलो में महिलाओ की उपस्थिति लगभग न के बराबर रहती हैं। महिलाओं में साक्षरता की दर भी काफी कम रहती हैं। वर्तमान आकड़ो से स्पप्ट हैं कि 66 पुरूपो की तुलना में आज भी मात्र 39 महिलाएँ ही शिक्षित ही शिक्षित होती हैं। संविधान में इतने नियम और कानून होने के पश्चात महिलाओं की समाजिक स्थिति में सुधार तो हुआ हैं लेकिन पर्याप्त मात्रा में नहीं। जिसके पीछे का मुख्य कारण हैं अधिकतर महिलाओं को कानूनों एवं अपने अधिकारो के बारे में पर्याप्त ज्ञान का अभाव होना पाया गया हैं। अतः महिलाओ के प्रति अत्याचारों को रोकने के लिए कानून व प्रशासन के साथ समाज को भी गंभीरता से रहते हुए कार्य करने होगें तथा अपनी आवश्यकतानुसार उचित भूमिका का निर्वहन करना होगा। हम सभी के सामूहिक प्रयासो से ही भारत की महिलाओं को सम्मानीय दर्जा व उनके अधिकारों की प्राप्ति हो पाएगी।

ग्रंथ सूचीः–

- आचार्य डॉ. दुर्गा दास बसु– भारत का संविधान एक परिचय
- सचिन कुमार जैन– सवधिान की विकास गाथा
- राजकमल प्रकाशन– उत्तराधिकार बनाम पुत्रधिकार
- बी.एस. खेत्रपाल–उत्तराधिकार एव वसीय विधि
- डॉ. पूजा खेत्रपाल–उत्तराधिकार एवं वसीय विधि
- डॉ. नाज परवीन– महिला सशक्तीकरण
- डॉ. सरिता रानी– महिला सशक्तीकरण
- डॉ. पारस दीवान– फैमली लॉ (इलाहाबाद लॉ ऐजेन्सी)
- अनुपम मोदाक– हिन्दू विधि (2025)
- बबिता झॉ– कुटुम्ब विधि (1) 2019 (सिंघल लॉ पब्लिकेशन)
- ઉર્મિલા પવાર– આયદાન
- दीपक कुमार महर्पि– सभी के लिये कानून
- के.डी. गौर–भारतीय न्याय संहिता 2024
- डॉ. मनमोहन जोशी– भारतीय न्याय संहिता 2023 (इन्ट्रीग्रिटी ऐजुकेशन) पब्लिस 2024
- स्वयं के विचार
- इन्टरनेट संचार माध्यम

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 185–191

75 वर्षों में भारतीय संविधान : उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ

डॉ. कांता वर्मा
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान
शासकीय महाविद्यालय लांजी जिला–बालाघाट (मध्यप्रदेश)

सार (Abstract)

भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ और 75 वर्षों की संवैधानिक यात्रा में इसने भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में सुदृढ़ किया। यह शोध–पत्र 6000–8000 शब्द–सीमा के अंतर्गत भारतीय संविधान की प्रमुख उपलब्धियों, संरचनात्मक विशेषताओं तथा 2020–2025 के दौरान सामने आए संवैधानिक निर्णयों, संशोधनों और उभरती चुनौतियों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार संविधान ने लोकतांत्रिक शासन, मौलिक अधिकारों, सामाजिक न्याय, संघवाद और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुदृढ़ किया, साथ ही समकालीन काल में संविधान के समक्ष राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी चुनौतियाँ भी उभरी हैं। शोध–पत्र का उद्देश्य न केवल संवैधानिक उपलब्धियों का मूल्यांकन करना है, बल्कि भविष्य की दिशा में सुधारात्मक सुझाव भी प्रस्तुत करना है।

मुख्य शब्द (Keywords) : भारतीय संविधान, लोकतंत्र, मौलिक अधिकार, संघवाद, न्यायिक सक्रियता, संवैधानिक चुनौतियाँ।

1. भूमिका :

भारतीय संविधान विश्व का सबसे विस्तृत लिखित संविधान है, जो न केवल शासन की रूपरेखा प्रस्तुत करता है, बल्कि भारतीय समाज की आत्मा, आकांक्षाओं और संघर्षों को भी अभिव्यक्त करता है। 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ यह संविधान स्वतंत्रता आंदोलन के अनुभवों, औपनिवेशिक शासन की त्रुटियों और वैश्विक संवैधानिक आदर्शों का समन्वित परिणाम है। संविधान सभा के सदस्यों ने गहन विमर्श, बहस और वैचारिक मतभेदों के बावजूद एक ऐसे दस्तावेज का निर्माण किया जो विविधताओं से भरे भारत को एक राष्ट्र के रूप में बाँध सके। भारतीय समाज जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र और संस्कृति की बहुलता से युक्त रहा है। इस बहुलता को एकता में परिवर्तित करना संविधान निर्माताओं की सबसे बड़ी चुनौती थी। संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्श इसी चुनौती का समाधान प्रस्तुत करते हैं। 75 वर्षों की यात्रा में संविधान ने न केवल राजनीतिक स्थिरता प्रदान की, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास को भी दिशा दी। यह शोध–पत्र 75 वर्षों में भारतीय संविधान की उपलब्धियों और चुनौतियों का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, संवैधानिक संरचना, लोकतांत्रिक उपलब्धियाँ, सामाजिक न्याय की पहल,

न्यायपालिका की भूमिका, संघवाद की प्रकृति तथा 2020–2025 के समकालीन संवैधानिक निर्णयों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। साथ ही, भविष्य की संवैधानिक दिशा और सुधारात्मक उपायों पर भी विचार किया गया है।

2. भारतीय संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

भारतीय संविधान की जड़ें औपनिवेशिक शासन के दौरान विकसित संवैधानिक प्रयोगों में निहित हैं। 1858 के बाद ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत में विभिन्न अधिनियम लागू किए गए, जिनमें 1909 का मॉर्ले–मिंटो सुधार, 1919 का मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार और 1935 का भारत सरकार अधिनियम प्रमुख थे। 1935 का अधिनियम भारतीय संविधान का प्रमुख आधार बना। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय नेताओं ने स्वशासन, नागरिक अधिकारों और लोकतांत्रिक संस्थाओं की आवश्यकता पर बल दिया। संविधान सभा का गठन 1946 में हुआ, जिसने लगभग तीन वर्षों तक निरंतर कार्य करते हुए संविधान का प्रारूप तैयार किया। डॉ. भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व में प्रारूप समिति ने विभिन्न देशों के संविधानों का अध्ययन कर भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप प्रावधान किए।

3. संविधान की संरचनात्मक विशेषताएँ :

3.1 प्रस्तावना :

प्रस्तावना संविधान की आत्मा, दर्शन और मूल भावना मानी जाती है। यह न केवल संविधान के उद्देश्यों का संक्षिप्त सार प्रस्तुत करती है, बल्कि भारतीय राज्य की वैचारिक पहचान और दिशा भी निर्धारित करती है। प्रस्तावना में उल्लिखित आदर्श–सम्प्रभुता, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, लोकतंत्र, गणराज्य, न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व–भारतीय संविधान की आधारशिला हैं और संपूर्ण संवैधानिक व्यवस्था को नैतिक एवं वैधानिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। प्रस्तावना यह स्पष्ट करती है कि संपूर्ण सत्ता का स्रोत भारत की जनता है, और संविधान का निर्माण जनता के हित, कल्याण तथा सम्मान की रक्षा के लिए किया गया है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की अवधारणा यह सुनिश्चित करती है कि राज्य न केवल विधिक समानता बल्कि वास्तविक सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयास करे। विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता लोकतांत्रिक समाज के लिए अनिवार्य मानी गई है, जबकि समानता का सिद्धांत किसी भी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने की संवैधानिक प्रतिबद्धता दर्शाता है। बंधुत्व (Fraternity) का उल्लेख प्रस्तावना को विशेष महत्व प्रदान करता है, क्योंकि यह राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखने हेतु नागरिकों में आपसी भाईचारे और सम्मान की भावना विकसित करने पर बल देता है। यह भारतीय विविधता में एकता के सिद्धांत को संवैधानिक मान्यता देता है।

भारतीय न्यायपालिका ने समय–समय पर प्रस्तावना की व्याख्या कर उसके महत्व को सुदृढ़ किया है। विशेष रूप से केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) के ऐतिहासिक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है और इसमें निहित मूल्य संविधान की मूल संरचना (Basic Structure) का हिस्सा हैं। न्यायालय ने यह भी कहा कि संसद संविधान में संशोधन कर सकती है, किंतु वह प्रस्तावना में निहित मूल आदर्शों को नष्ट या परिवर्तित नहीं कर सकती। इस प्रकार प्रस्तावना केवल एक औपचारिक भूमिका नहीं है, बल्कि यह संविधान की व्याख्या की कुंजी, विधायिका एवं कार्यपालिका के लिए

मार्गदर्शक सिद्धांत, और नागरिकों के लिए संवैधानिक चेतना का स्रोत है। इसके मूल्यों के बिना भारतीय संविधान की आत्मा अधूरी मानी जाएगी।

3.2 मौलिक अधिकार :

मौलिक अधिकार नागरिकों को राज्य की मनमानी से संरक्षण प्रदान करते हैं। समय–समय पर न्यायपालिका ने इन अधिकारों की व्याख्या को विस्तृत किया, जिससे ये अधिकार जीवंत बने रहे। भारतीय संविधान में निहित मौलिक अधिकार लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला हैं। इनका मूल उद्देश्य नागरिकों को राज्य की मनमानी, अत्याचार और शक्ति के दुरुपयोग से संरक्षण प्रदान करना है। संविधान के भाग–III (अनुच्छेद 12 से 35) में उल्लिखित ये अधिकार केवल विधिक प्रावधान मात्र नहीं हैं, बल्कि व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता और समानता को सुनिश्चित करने वाले जीवंत सिद्धांत हैं।

3.3 नीति निदेशक तत्व :

नीति निदेशक तत्व राज्य को सामाजिक–आर्थिक न्याय की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। यद्यपि ये न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं, फिर भी शासन की नीतियों पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा है।

3.4 मौलिक कर्तव्य :

भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्य नागरिकों के नैतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों को परिभाषित करते हैं। जहाँ मौलिक अधिकार व्यक्ति को राज्य की मनमानी से संरक्षण देते हैं, वहीं मौलिक कर्तव्य नागरिकों को राष्ट्र, समाज और संविधान के प्रति उत्तरदायी बनाते हैं। अधिकार और कर्तव्य एक–दूसरे के पूरक हैं, अधिकारों का प्रभावी उपभोग तभी संभव है जब नागरिक अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करें।

4. 75 वर्षों में भारतीय संविधान की प्रमुख उपलब्धियाँ –

4.1 लोकतांत्रिक शासन की निरंतरता और परिपक्वता :

भारतीय संविधान की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि लोकतांत्रिक शासन की निरंतरता है। स्वतंत्रता के पश्चात अनेक नवस्वतंत्र राष्ट्रों में लोकतंत्र अस्थिर रहा, किंतु भारत में नियमित चुनाव, सत्ता का शांतिपूर्ण हस्तांतरण और जनभागीदारी लोकतांत्रिक परिपक्वता का प्रमाण बने। निर्वाचन आयोग जैसी संवैधानिक संस्था ने स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों को सुनिश्चित कर लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत किया। लोकतंत्र केवल चुनाव तक सीमित नहीं रहा, बल्कि पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों के माध्यम से सत्ता का विकेंद्रीकरण हुआ। 73वें और 74वें संविधान संशोधनों ने लोकतंत्र को जमीनी स्तर तक पहुँचाया, जिससे नागरिकों की प्रत्यक्ष भागीदारी संभव हुई।

4.2 मौलिक अधिकारों का विकास और विस्तार :

संविधान के भाग–III में निहित मौलिक अधिकार समय के साथ और अधिक व्यापक हुए। प्रारंभ में इन्हें नकारात्मक अधिकार माना गया, किंतु न्यायपालिका ने इन्हें सकारात्मक अधिकारों के रूप में विकसित किया। जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पर्यावरण, आजीविका और निजता को शामिल किया गया। विशेष रूप से 21वीं सदी में न्यायिक सक्रियता ने मौलिक अधिकारों की व्याख्या को मानवीय और व्यावहारिक बनाया। इससे संविधान एक स्थिर दस्तावेज न रहकर सामाजिक परिवर्तन का उपकरण बन गया।

4.3 सामाजिक न्याय और समावेशी विकास :

भारतीय संविधान ने सामाजिक न्याय को राज्य के प्रमुख उद्देश्यों में स्थान दिया। आरक्षण नीति, सामाजिक कल्याण कानून, महिला एवं बाल संरक्षण अधिनियम, अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम जैसे प्रावधानों ने ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने का प्रयास किया। यद्यपि आरक्षण व्यवस्था पर विवाद रहे हैं, फिर भी यह वंचित वर्गों के सशक्तिकरण का प्रभावी माध्यम सिद्ध हुई है। शिक्षा, प्रशासन और राजनीति में इन वर्गों की भागीदारी बढ़ी है, जो संविधान की सफलता का संकेत है।

4.4 संघीय ढाँचा और राष्ट्रीय एकता :

संविधान ने भारत को 'संघात्मक व्यवस्था के साथ एकात्मक झुकाव' वाला राज्य बनाया। आपातकालीन प्रावधानों के बावजूद संघीय ढाँचे ने देश की एकता को बनाए रखा। भाषाई राज्यों का गठन, विशेष प्रावधान और क्षेत्रीय स्वायत्तता ने विविधता को सम्मान दिया।

4.5 स्वतंत्र एवं सशक्त न्यायपालिका :

न्यायपालिका संविधान की संरक्षक रही है। न्यायिक पुनरावलोकन, जनहित याचिका और मूल संरचना सिद्धांत ने संविधान की सर्वोच्चता सुनिश्चित की। न्यायपालिका ने समय–समय पर कार्यपालिका और विधायिका की सीमाएँ निर्धारित कीं।

5. 2020–2025 के समकालीन संवैधानिक निर्णय –

5.1 निजता और डिजिटल अधिकार :

डिजिटल युग में निजता के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में और अधिक मजबूती मिली।

5.2 आरक्षण और समानता :

आर्थिक आधार पर आरक्षण और पदोन्नति में आरक्षण से जुड़े निर्णय सामाजिक न्याय की नई व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

5.3 संघवाद से संबंधित निर्णय :

राज्यपाल की भूमिका, विधायी अधिकार और केंद्र–राज्य संबंधों पर न्यायिक व्याख्याएँ संघीय ढाँचे को स्पष्ट करती हैं।

6. समकालीन चुनौतियाँ –

6.1 संस्थागत स्वायत्तता :

संवैधानिक संस्थाओं की स्वतंत्रता लोकतंत्र की रीढ़ है, किंतु राजनीतिक हस्तक्षेप एक गंभीर चुनौती है।

6.2 आर्थिक और सामाजिक असमानता :

संविधानिक प्रावधानों के बावजूद असमानताएँ बनी हुई हैं।

6.3 न्यायिक विलंब :

लंबित मामलों की संख्या त्वरित न्याय में बाधक है।

6.4 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता :

राष्ट्रीय सुरक्षा और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच संतुलन आवश्यक है।

7. भविष्य की दिशा एवं सुधारात्मक सुझाव –

संवैधानिक मूल्यों को बनाए रखने हेतु संस्थागत सुधार, नागरिक जागरूकता और तकनीकी युग के अनुरूप संवैधानिक व्याख्या आवश्यक है।

8. 2020–2025 के प्रमुख संवैधानिक निर्णय : विश्लेषणात्मक अध्ययन –

8.1 निजता का अधिकार और डिजिटल युग :

21वीं सदी के तीसरे दशक में निजता का अधिकार भारतीय संविधान के सबसे चर्चित विषयों में रहा है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि निजता केवल व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि डिजिटल डेटा, ऑनलाइन अभिव्यक्ति और सूचना की सुरक्षा से भी जुड़ी हुई है। 2020–2025 के दौरान आए निर्णयों में यह रेखांकित किया गया कि राज्य की निगरानी शक्तियाँ असीमित नहीं हो सकतीं और उन्हें संवैधानिक मर्यादाओं के भीतर रहना होगा।

डिजिटल प्लेटफॉर्म, सोशल मीडिया और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के बढ़ते उपयोग ने नागरिकों की निजता को नए प्रकार की चुनौतियों के समक्ष रखा है। न्यायपालिका ने बार–बार यह दोहराया कि तकनीकी प्रगति मानव गरिमा और मौलिक अधिकारों के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए। यह दृष्टिकोण संविधान को आधुनिक संदर्भों में प्रासंगिक बनाए रखता है।

8.2 आरक्षण, समानता और सामाजिक न्याय :

आरक्षण से संबंधित संवैधानिक विमर्श 2020–2025 के दौरान और अधिक व्यापक हुआ। आर्थिक आधार पर आरक्षण, पदोन्नति में आरक्षण तथा आरक्षण की सीमा जैसे प्रश्नों पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय सामने आए। इन निर्णयों में यह संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया कि समानता का अधिकार और सामाजिक न्याय एक–दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। न्यायपालिका ने यह स्पष्ट किया कि संविधान का उद्देश्य औपचारिक समानता नहीं, बल्कि वास्तविक समानता की स्थापना है। यही कारण है कि ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गों के लिए विशेष प्रावधानों को संवैधानिक वैधता प्रदान की गई।

8.3 संघवाद और केंद्र–राज्य संबंध :

संघवाद भारतीय संविधान की आधारशिला है। 2020–2025 के दौरान केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों, विधायी शक्तियों और प्रशासनिक नियंत्रण को लेकर अनेक विवाद सामने आए। सर्वोच्च न्यायालय ने संघवाद को 'संवैधानिक साझेदारी' के रूप में परिभाषित करते हुए सहकारी संघवाद पर बल दिया। राज्यपाल की भूमिका, राज्य सरकारों की स्थिरता और संघीय संतुलन से जुड़े निर्णयों ने यह स्पष्ट किया कि संविधान केवल शक्ति का वितरण नहीं करता, बल्कि शक्ति के प्रयोग की मर्यादाएँ भी निर्धारित करता है।

8.4 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और लोकतंत्र :

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतंत्र का प्राणतत्व है। 2020–2025 के निर्णयों में न्यायपालिका ने यह संतुलन बनाने का प्रयास किया कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध केवल संवैधानिक सीमाओं के भीतर ही लगाए जा सकते हैं। सोशल मीडिया, डिजिटल पत्रकारिता और सार्वजनिक असहमति के संदर्भ में आए निर्णयों ने यह स्पष्ट किया कि लोकतंत्र में असहमति को देशद्रोह के रूप में नहीं देखा जा सकता। यह दृष्टिकोण संविधान की उदार और लोकतांत्रिक आत्मा को पुष्ट करता है।

9. समकालीन संवैधानिक चुनौतियाँ : एक आलोचनात्मक दृष्टि –

9.1 संवैधानिक संस्थाओं की स्वायत्तता :

लोकतंत्र की सफलता संवैधानिक संस्थाओं की निष्पक्षता और स्वतंत्रता पर निर्भर करती है। वर्तमान समय में यह चिंता व्यक्त की जा रही है कि कुछ संस्थाओं पर राजनीतिक प्रभाव बढ़ रहा है। यह स्थिति संविधान की मूल भावना के लिए चुनौतीपूर्ण है।

9.2 सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ :

संविधान द्वारा समानता का अधिकार प्रदान किए जाने के बावजूद सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ बनी हुई हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के क्षेत्र में असमान अवसर संवैधानिक आदर्शों और वास्तविकता के बीच अंतर को दर्शाते हैं।

9.3 न्यायिक विलंब और न्याय तक पहुँच :

न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या त्वरित न्याय के सिद्धांत के विपरीत है। यह स्थिति आम नागरिक के संवैधानिक अधिकारों को प्रभावित करती है और न्यायपालिका की कार्यकुशलता पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

9.4 राष्ट्रीय सुरक्षा बनाम नागरिक स्वतंत्रता :

राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर लगाए जाने वाले प्रतिबंध और नागरिक स्वतंत्रताओं के बीच संतुलन एक जटिल संवैधानिक चुनौती है। इस संतुलन को बनाए रखना लोकतांत्रिक शासन की अनिवार्य शर्त है।

10. भविष्य की संवैधानिक दिशा एवं सुधारात्मक सुझाव –

भारतीय संविधान की जीवंतता इस बात में निहित है कि वह समय के साथ स्वयं को ढाल सकता है। भविष्य में संवैधानिक मूल्यों को सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक है कि संवैधानिक संस्थाओं की स्वायत्तता बनाए रखी जाए, नागरिकों में संवैधानिक साक्षरता बढ़ाई जाए और तकनीकी विकास को मानव अधिकारों के अनुकूल दिशा दी जाए।

11. संविधान निर्माताओं की कल्पना बनाम समकालीन भारत –

भारतीय संविधान निर्माताओं की कल्पना एक ऐसे भारत की थी, जहाँ स्वतंत्रता केवल राजनीतिक न होकर सामाजिक और आर्थिक भी हो। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा में बार–बार चेताया था कि राजनीतिक लोकतंत्र तब तक स्थायी नहीं हो सकता, जब तक सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र स्थापित न हो। इसी प्रकार जवाहरलाल नेहरू ने संविधान को 'एक जीवंत दस्तावेज' बताया, जो समय के साथ विकसित होता रहेगा। समकालीन भारत में इन आदर्शों की आंशिक पूर्ति तो हुई है, किंतु कई क्षेत्रों में संविधान निर्माताओं की कल्पना और वास्तविकता के बीच अंतर भी स्पष्ट है। लोकतांत्रिक संस्थाएँ स्थापित हुईं, किंतु सामाजिक असमानता, आर्थिक विषमता और राजनीतिक ध्रुवीकरण जैसी समस्याएँ बनी रहीं। यह अंतर संविधान की असफलता नहीं, बल्कि उसके समक्ष खड़ी सामाजिक चुनौतियों को दर्शाता है।

संविधान निर्माताओं ने जिस नैतिक राजनीति की कल्पना की थी, वह आज व्यावहारिक राजनीति में कमजोर होती दिखाई देती है। ऐसे में संविधान की मूल भावना को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता और भी अधिक महसूस होती है।

12. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय संविधान –

भारतीय संविधान की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि उसने विभिन्न देशों के संवैधानिक अनुभवों को आत्मसात किया है। मौलिक अधिकारों की प्रेरणा अमेरिकी संविधान से, संसदीय प्रणाली ब्रिटेन से, और नीति निदेशक तत्व आयरलैंड से लिए गए हैं। इसके बावजूद भारतीय संविधान एक मौलिक और स्वतंत्र पहचान रखता है। वैश्विक स्तर पर देखा जाए तो भारत उन चुनिंदा देशों में है, जहाँ लोकतंत्र ने लंबी अवधि तक निरंतरता बनाए रखी है। अनेक विकासशील देशों में सैन्य तख्तापलट या अधिनायकवाद की प्रवृत्ति देखी गई, किंतु भारत में संविधान ने लोकतांत्रिक परंपराओं को जीवित रखा। दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील और अन्य लोकतांत्रिक देशों के संविधानों की तुलना में भारतीय संविधान अधिक व्यापक और लचीला है। यही कारण है कि यह विविध सामाजिक संरचनाओं के बावजूद प्रभावी बना हुआ है।

13. निष्कर्ष –

75 वर्षों की संवैधानिक यात्रा यह सिद्ध करती है कि भारतीय संविधान केवल शासन का दस्तावेज नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का माध्यम है। उपलब्धियों और चुनौतियों के बीच संतुलन बनाए रखते हुए संविधान ने भारत को एक सशक्त लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में स्थापित किया है। राष्ट्रीय सेमिनार के संदर्भ में यह अध्ययन यह रेखांकित करता है कि संविधान की सफलता उसके सतत् पालन और नागरिकों की संवैधानिक प्रतिबद्धता पर निर्भर करती है।

संदर्भ (References) :

1. भारतीय संविधान, भारत सरकार।
2. ऑस्टिन, ग्रानविल (2010). The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation. Oxford University Press.
3. बसु, डी.डी. (2021). Introduction to the Constitution of India. LexisNexis.
4. अंबेडकर, भीमराव आर. (1949). Constituent Assembly Debates. भारत सरकार प्रकाशन।
5. नेहरू, जवाहरलाल (1989). The Discovery of India. Oxford University Press.
6. अग्रवाल, एस.के. (2018). Indian Constitutional System. S. Chand & Company.
7. सुभाष कश्यप (2019). Our Constitution. National Book Trust.
8. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय : केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)।
9. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय : मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978)।
10. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय : के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ (2017)।
11. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय : जनहित फाउंडेशन बनाम भारत संघ (2022)।
12. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय : एस.जी. वोंबले बनाम भारत संघ (1994)।
13. भारत सरकार (2020). National Education Policy.
14. भारत सरकार विधि आयोग रिपोर्ट्स (विविध वर्ष)।
15. यूनाइटेड नेशंस (2020). Human Rights and Constitutional Democracy.
16. चक्रवर्ती, एस. (2022). भारतीय संघवाद और संवैधानिक संस्थाएँ. Indian Journal of Constitutional Law.
17. शर्मा, आर. (2023). डिजिटल युग में निजता का अधिकार. Journal of Public Law.
18. भारत के सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख निर्णय (2020–2025)।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 192-196

ग्रामीण परिवारों में महिलाओं की बदलती भूमिका : उपलब्धियां तथा चुनौतियां

(मध्य प्रदेश पंचायतीराज के विशेष संदर्भ में)

डॉ. नियाज अहमद अन्सारी
सहा. प्राध्या., राजनीतिशास्त्र एवं व्यक्तित्व विकास
शासकीय आदर्श महाविद्यालय, उमरिया (म. प्र.)

भारत को आजादी मिलने के बाद से ही संविधान निर्माताओं ने महात्मा गांधी, डॉ. अम्बेडकर, पं. नेहरू और उनके अनुयायियों के प्रयासों को ध्यान में रखकर गावों को राजव्यवस्था का केन्द्र बनाने हेतु संविधान के भाग–4 में उल्लिखित अनुच्छेद 40 को शामिल किया है। कालान्तर में इसको क्रियान्वित करने हेतु अनुच्छेद 243 के अंतर्गत 73वें संविधान संशोधन (1992) द्वारा गांधीजी के स्वप्न रामराज्य अर्थात पंचायती राज लागू हुआ हो सका है।[1] केन्द्र एवं राज्य सरकारों के समस्त प्रयासों का प्राथमिक लक्ष्य लोगों का कल्याण करना रहा है। अब तक की सभी नीतियां और कार्यक्रम ग्रामीण निर्धनता, अशिक्षा एवं महिला नेतृत्व के अभाव को दूर करने के लक्ष्य को ध्यान में रखकर तैयार किए गए, जो भारत में योजनाबद्ध विकास के प्रमुख लक्ष्यों में से एक है। सन् 1919 में मुबंई में हुए महिला सम्मेलन में महात्मा गांधी ने कहा था, ''जब तक भारतीय महिलायें आर्थिक एवं राजनीतिक मामलों में पुरूषों के साथ बराबरी की हिस्सेदारी नही निभाती है तब तक भारत का सितारा बुलंद नही होगा।''[2]

स्वतंत्र भारत में महिला विकासार्थ कई संवैधानिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रयास किये गये हैं जिनसे महिला वर्ग को अनेक लाभ हुए हैं। आज ये वर्ग सतत विकास की ओर अग्रसर हैं जिसे महिला का सकारात्मक पक्ष माना जाता है। इसकी समीक्षा करके ही इस क्षेत्र की समस्याओं रूपी बाधाओं की खोज की जा सकती है। अतः महिला सरपंचों से संबंधित संवैधानिक, कानूनी, राजनीतिक प्रयासों की समीक्षा निम्नांकित बिन्दुओं में करना उचित होगा जो उनकी राजनीतिक जागरूकता एवं सक्रियता का परिचायक बन रहीं है–

भारत में पचायतीराज की विकास यात्रा –

ग्रामीण विकास के अंतर्गत सभी योजनाओं और विकास कार्यक्रमों का खाका पंचायतीराज के रूप में तैयार किया गया है। इसके अंतर्गत लोगों की आर्थिक बेहतरी और सामाजिक परिवर्तन दोनों को ध्यान में रखा गया है। ग्रामीण लोगों को आर्थिक विकास के बेहतर अवसार प्रदान करने के लिए ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में लोगों की अधिकाधिक भागीदारी, योजनाओं का विकेंद्रीकरण, भूमि सुधारों का बेहतर प्रबंधन और ऋण सुलभ उपलब्ध कराना जैसे उपाय किए गए। गरीबी, अज्ञानता, बीमारियों में कमी लाना और अवसरों की असमानता जैसी

कुप्रवृत्तियों का अंत तथा बेहतर और उच्चतर गुणवत्तायुक्त जीवन प्रदान करना बुनियादी सिद्धांत रहे हैं, जिन पर ग्रामीण विकास में कृषि उद्योग, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य और अनुशंगी क्षेत्रों के विकास पर बल दिया गया। बाद में यह महसूस किया गया कि तीव्र विकास का लक्ष्य तभी हासिल किया जा सकता है, जब सरकारी प्रयासों के पूरक के रूप में निचले पायदान के लोगों और महिलाओं की प्रत्यक्ष और परोक्ष भागीदारी भी हो।

2 अक्तूबर, 1952 में प्रारंभ किया गया सामुदायिक विकास संबंधी कार्यक्रम ग्रामीण विकास और पंचायती राज के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ है। इस कार्यक्रम के बाद में कई क्रांतिकारी बदलाव आए और इसे विभिन्न मंत्रालयों द्वारा संचालित किया गया। 3 अक्टूबर, 1974 में खाद्य और कृषि मंत्रालय के एक भाग के रूप में ग्रामीण विकास विभाग अस्तित्व में आया। अगस्त 1979 में इस विभाग का दर्जा बढ़ाया गया और इसे ग्रामीण पुननिर्माण मंत्रालय का नाम दिया गया। बाद में इस मंत्रालय को ग्रामीण विकास पंचायत का नाम दिया गया और एक बार फिर से कृषि एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत इसे एक विभाग के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। सितंबर, 1985 में इसे एक बार फिर कृशि मंत्रालय के रूप में पुनर्गठित किया गया।

पचायती राज और पेसा एक्ट –

वर्ष 1999 में मंत्रालय का नाम पुनः ग्रामीण विकास मंत्रालय किया गया। जुलाई 2011 में ग्रामीण विकास मंत्रालय में ग्रामीण विकास विभा और भूमि संसाधन विभाग नामक दो विभाग हैं। अंततः पंचायती राज मंत्रालय की स्थापना वर्ष 2004 में की गई। इसका प्रमुख कार्य संविधान के भाग–9 के प्रावधानों, अनुच्छेद 243 जेडडी और पेसा एक्ट (पीईएसए) के अनुसार जिला योजना समिति संबंधी प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित करना है। 4 मंत्रालय का लक्ष्य पंचायतों अथवा पंचायती राज संस्थानों के माध्यम से विकेंद्रीकृत और भागीदारीपूर्ण स्थनीय स्वशासन की व्यवस्था करना है। मंत्रालय का मिशन पंचायती राज संस्थानों का सशक्तीकरण, उन्हें सक्षम एवं जवाबदेह बनाना है ताकि सामाजिक न्याय, महिला सबलीकरण, और सक्षम सेवा वितरण के साथ समावेशी विकास सुनिश्चित किया जा सके।

मंत्रालय अपने लक्ष्य हासिल करने के लिए विभिन्न तरीकों से काम करता है। पंचायती राज मंत्रालय ज्ञान के सृजन और उसे साझा करने पर बल देता है ताकि समाधान किए जाने वाले मुद्दे स्पष्ट हों, उनके लिए सार्थक कार्यनीतियां तैयार की जाएं और सरकार एवं गैर–सरकारी एजेंसियों तथा विशेषज्ञों के बीच भागीदारी हो। मंत्रालय विभिन्न राज्यों में सीखने के लिए तकनीकी सहायता और सुविधाएं भी प्रदान करता है। भारत के संविधान के भाग–9 में त्रि–स्तरीय पंचायतों की स्थापना (20 लाख से कम आबादी वाले राज्यों या केन्द्र शासित प्रदेशों में केवल दो स्तरीय) का प्रावधान है–

1. ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायतें,
2. जिला स्तर पर जिला पंचायतें और
3. ग्राम पंचायतों एवं जिला पंचायतों के बीच उप–जिला स्तर पर मध्यवर्ती पंचायतें।

इसमें ग्राम सभा (ग्राम पंचायत के क्षेत्र में रहने वाले पंजीकृत मतदाताओं की आम सभा) का प्रावधान भी है, जो ग्रामवासियों के स्थानीय शासन में सीधे भागीदारी के लिए एक मंच है। भारत के संविधान ने इन पंचायतों के लिए पांच वर्ष का कार्यकाल निर्धारित किया है और इनमें महिलाओं एवं भारतीय समाज के हाशिये पर रहने वाले पिछड़े एवं दलित वर्गों (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों) के लिए सीटों का आरक्षण का प्रावधान भी किया गया है, जबकि महिलाओं के लिए 33.33 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। हालांकि, अनेक राज्यों

में पंचायतों में महिलाओं के लिए सीटों और मुखिया पदों में आरक्षण 50 प्रतिशत तक बढ़ा दिया है। भारत के संविधान में पंचायतों के सभी सदस्यों के प्रत्यक्ष चुनाव की भी व्यवस्था की गई है।

पंचायतों में महिलाओं हेतु एक तिहाई स्थानों को आरक्षित होने से वे चूल्हे–चौके से बाहर निकलकर चौपाल तक पहुंच सकीं है। स्थानीय स्वशासन के अन्तर्गत 20 लाख महिलाओं को जनप्रतिनिधि के रूप में राजनीतिक शक्ति मिली है जिससे उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक शक्ति भी प्राप्त हो रही है। इस शक्ति से प्रेरित होकर करोड़ों महिलाएं जागृत हुई है। उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी वे समग्र विकास प्रक्रिया में अपना यथासंभव योगदान दे रहीं है।

महिला सहभागिता से संबंधित संवैधानिक प्रावधान –

पंचायती राज में महिला सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए पंचायती राज की दिशा में एक कदम आगे बढ़ाते हुए मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने महिला पंचायत के दौरान पंचायतों में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देने का वायदा किया। 30 मार्च 2007 को म. प्र. विधानसभा ने ''म. प्र. पंचायत राज और ग्राम स्वराज (संशोधन) विधेयक 2007'' को सर्व सम्मति से पारित भी कर दिया है।[5] उल्लेखनीय है कि देश के दो–तीन राज्यों में ऐसी व्यवस्था पहले से ही चल रही है। पंचायतों में महिलाओं की आधी भागीदारी की सर्वप्रथम मांग पाकिस्तान के मानवाधिकार आयोग की अध्यक्ष असमां जहांगीर ने दिल्ली में 24/4/1997 में आयोजित''महिला राजनीतिक सशक्तिकरण दिवस'' पर की थी।[6]

महिला सहभागिता की आवश्यकता –

भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक सिद्धान्तों तथा अन्य विशिष्ट अनुच्छेदों से स्पष्ट होता है कि देश में 'लोक कल्याणकारी राज्य' की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसकी पूर्ति हेतु लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण के रूप पंचायती राज को अपनाया गया है। इससे मतदाता की प्रत्यक्ष भागीदारी भी सुनिश्चित होती है। वास्तव में महिला सशक्तिकरण एक सामाजिक, राजनीतिक व संवैधानिक मामला है जिसको महिला प्रतिनिधित्व से ही सुलझाया जा सकता है। भारत में सदियों से लैंगिक विषमता से महिला वर्ग पीड़ित रहा है जिसे समरसता प्रदान करने हेतु पंचायती राज में महिलाओं को 1/3 स्थान आरक्षित किये गये हैं। महिला सहभागिता द्वारा ही महिलाएं अपनी स्वतंत्रता, समानता व भेदभाव रहित जीवन के लिए राजनीतिक संघर्ष कर सकती हैं। जैसा कि भारत रत्न डॉ. अम्बेडकर ने कहा है, ''राजनीतिक शक्ति वह मास्टर चाबी है जिससे हर वर्ग के पिछड़ेपन रूपी ताले को खोला जा सकता है।''[7]

महिला विकास का सकारात्मक पक्ष (उपलब्धियां) –

स्वतंत्र भारत में महिला विकासार्थ कई संवैधानिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रयास किये गये हैं जिनसे महिला वर्ग को अनेक लाभ हुए हैं। आज ये वर्ग सतत विकास की ओर अग्रसर हैं जिसे महिला का सकारात्मक पक्ष माना जा सकता है। इसकी समीक्षा करके ही इस क्षेत्र की समस्याओं रूपी बाधाओं की खोज की जा सकती है। अतः महिला विकास के क्षेत्र में किये गये संवैधानिक, कानूनी, राजनीतिक प्रयासों की समीक्षा निम्नांकित बिन्दुओं में करना उचित होगा जो उनकी राजनीतिक जागरूकता एवं सक्रियता का प्रतिफल है।

पंचायतीराज में महिला प्रतिनिधित्व की वर्तमान राजनीतिक स्थिति –

73वें संविधान संशोधन से अपेक्षा की गई थी कि इसके सही क्रियान्वयन से देश में 12,00,000 (बारह

लाख) महिलाएं राजनीतिक जगत में कदम रख सकीं हैं, लेकिन वर्तमान सामाजिक कुरीतियों जैसे– पर्दा प्रथा, महिलाओं की पुरूषों पर निर्भरता, निरक्षरता, पारिवारिक हस्तक्षेप, लालफीताशाही आदि के कारण ऐसा संभव नहीं हुआ।[5]

महिला प्रतिनिधित्व का नकारात्मक पक्ष –

पंचायती राज में महिलाओं को आरक्षण देने के बावजूद उनकी पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति में वांछित सुधार नहीं आया है। आज भी आम महिला, महिला विकास के कार्यक्रमों, योजनाओं व सुविधाओं का पूर्ण लाभ उठाने की स्थिति में नहीं आ सकी है। इसके लिए शासन–प्रशासन में बैठे पुरूष वर्ग की विषम वातावरण में महिला जनप्रतिनिधियों को कई समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। महिला सरपंचों के साथ पंचायत सचिव के रूप में पुरूष वर्ग ही हावी है जिससे वे संकोचवश स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाती हैं। महिला सरपंचों के साथ काम करनेवाले पुरूश पंचायत सचिव के आदि की भी खरी–कोटी सुननी पड़ती है जिससे उनका प्रतिनिधित्व मात्र औपचारिक ही रह जाता है।

महिलाओं का न्यून राजनीतिक प्रतिनिधित्व –

अब तक संसद के दोनो सदनों लोकसभा एवं राज्य सभा सहित राज्य विधान सभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व लगभग 10 प्रतिशत से कम ही रहा है। भारत की संसद में मात्र 10 प्रतिशत और राज्य विधानसभाओं में 5 से 8 प्रतिशत ही महिलाएं ही जनप्रतिनिधि बन सकी हैं। भारत में जहां एक और स्थानीय शासन के अन्तर्गत पंचायतीराज व्यवस्था में 73 एवं 74वें संविधान संशोधन के द्वारा महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गये है, वहीं दूसरी ओर संसद एवं राज्य विधानमंण्डलों में महिलाओं को आरक्षण न होने से महिलाओं का प्रतिनिधित्व उचित एवं सन्तोषजनक नही है जबकि 'महिलाओं की परिस्थिति पर संयुक्त राष्ट्र आयोग (1990)' ने भी सुझाव दिया है कि निर्णय लेने वाली संस्थाओं में न्यूनतम 30 प्रतिशत भागीदारी होना चाहिए।[8]

स्थानीय स्वशासन की सफलता के लिए कर्मचारियों की लापरवाही और भ्रष्ट कार्यशैली एक बड़ी बाधा है, क्योंकि पंचायतकर्मियों को न्युनतम वेतन व सुविधाएं दी जाती हैं जिसकी भारपाई वे रिश्वत लेकर करते हैं। अभी भी गावों में सवर्णों एवं प्रभावशाली व्यक्तियों का दबदबा है जिसे समाप्त किये बिना पंचायती राज की सफलता और महिलाओं का प्रतिनिधित्व सार्थक नहीं हो सकता।

पंचायतीराज में महिला जनप्रतिनिधियों की समस्याओं के समाधानार्थ सुझाव –

1. राजनीतिक विकास की मूलवाहक ''शिक्षा'' संबंधी समस्याओं का यथाशीघ्र हल खोजना होगा, तभी पंचायती राज में महिलाएं अपने प्रतिनिधित्व को सार्थक सिद्ध कर सकती हैं। हमें योजना आयोग की पूर्व सदस्या मीरा सेठ के इस कथन को ध्यान में रखना होगा– ''जब तक देश की आधी आबादी रूपी महिला वर्ग अशिक्षित रहेगा, तबतक उनका प्रतिनिधित्व शोपीस ही बना रहेगा और पंचायती राज पुरूष वर्ग की कठपुतली।''[9]
2. महिला जनप्रतिनिधियों को निर्वाचित होते ही उन्हें अनिवार्य व वास्तविक प्रशिक्षण देना होगा जिससे वे अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को भली–भांति समझ सकें। इससे वे योजनाओं की सही जानकारी से अवगत होंगी और क्रियान्वयन सफल होगा।
3. सरकारी योजनाओं व पत्राचार की भाषा अत्यंत सरल व स्थानीय बोली में होनी चाहिए जिससे कम पढ़ी लिखी महिला सरपंच भी उस कागज के सही अर्थ को समझ कर कार्य करती रहें।

4. महिला सरपंचों एवं अन्य महिला पंचायत जनप्रतिनिधियों को निर्वाचित होते ही सचिव के रूप में महिलाकर्मी ही उपलब्ध करायी जानी चाहिए जिससे वे स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकें।

5. निरंकुश बनते प्रशासन तंत्र को भी सहयोगात्मक व्यवहार करने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि वे पंचायतों के लिए मार्गदर्शक एवं प्रेरणास्त्रोत के रूप में अपनी सेवाएं दे सकें। ऐसा होने पर ही ग्रामीण विकास की योजनाएं व कार्यक्रम सफल हो सकते हैं, अन्यथा पंचायती राज में महिलाओं की उपस्थिति शोपीस बनी रहेगी। स्वामी विवेकानंद जी ने भी कहा है– " There is no change for the world unless the condition of women improved. It is not possible for a bird to fly on only one wing. " अर्थात " संसार में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाये बिना कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हो सकता। जैसे पक्षी एक पंख से उड़ान नहीं भर सकता।"[10]

निष्कर्ष :-

महिला जनप्रतिनिधित्व की उपर्युक्त उपलब्धियों और उनंके मार्ग की बाधाओं रूपी समस्याओं का निराकरण सुझाए गए मौलिक उपायों से किया जा सकता है। सरकार एवं समाज को ईमानदारी से महिला प्रतिनिधित्व के विकास में वास्तविक योगदान करना होगा। उभरते महिला नेतृत्व को भी वर्तमान राजनीतिक बुराइयों जैसे– भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, अत्यधिक स्वार्थसिद्धि और अपराधीकरण से बचकर अपने जनप्रतिनिधित्व और नेतृत्व को सार्थक करने के लिए उच्च शिक्षा, उच्च आदर्श और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए आगे बढ़ना होगा, क्योंकि इनके सहयोग के बिना पंचायती राज और लोकतंत्र का विकेंद्रीकरण सफल नहीं हो सकता है।

उल्लेखनीय है कि पिछले कई वर्षो से लड़कियां ही हाई स्कूल एवं हायर सेकेण्डरी परीक्षाओं मे लड़को से ज्यादा संख्या में उत्तीर्ण हो रही है। वस्तुतः यह बदलाव बालिकाओं और महिलाओं द्वारा विद्यालय, महाविद्यालय, प्रतियोगी परीक्षा एवं तकनीकी संस्थानों आदि में दिनोंदिन बढ़ते प्रवेश करने एवं सरकारी सेवा में आने से स्वतः परिलक्षित होता है। अब महिलाएं स्थानीय निकायों, विधान सभा एवं संसद में भी आसानी से पहुंच रहीं है। निःसंदेह यह बदलाव समाज एवं नारीवर्ग के लिए शुभ संकेत है जिससे भविष्य में नारियों का चौतरफा सशक्तिकरण सुनिश्चित किया जाकर विकसित भारत–2047 के लक्ष्य को प्राप्त करना संभव होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. सईद, एस. एम., भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, 2011, भारत बुक सैन्टर, लखनऊ, पेज–81
2. गाबा, ओ. पी., भारतीय राजनीतिक विचारक, 2017, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, पेज–241
3. भारत–2015, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पेज–685
4. करेंट अफेयर्स टुडे, फरवरी, 2023, दृष्टि पब्लिकेशन, दिल्ली, पेज–202
5. सिद्दीकी, शादाब, मध्य प्रदेश का सम्पूर्ण सामान्य ज्ञान, 2022, उपकार प्रकाशन, आगरा, पेज– 78
6. भांगे, सी. बी., गांधी : एक अध्ययन, 2020, भारती पब्लिकेशन, दिल्ली, पेज–146
7. भाकुनी एवं अन्सारी, युग पुरूष : बाबा साहेब आंबेडकर, 2022, वर्ल्ड लेब पब्लिकेशन, गाजियाबाद, पेज–182
8. प्रतियोगिता दर्पण, जून 2007, उपकार प्रकाशन, आगरा, पेज–1924
9. स्वरूप, अनूप, शिक्षा पर गांधीवादी सिद्धांत और उपदेश, रोजगार समाचार, 28 सितम्बर–4 अक्तूबर, 2019, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पेज–1
10. अवस्थी, ओ.पी., भारतीय राजनीतिक चिंतक, 2016, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पेज–205

मोबाइल फोन नं. 8120123786, ईमेल : dr.ansaari786@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 197–200

भारतीय इतिहास–साहित्य के अध्ययन में समानता का अधिकार

डॉ. पुष्पा कुमारी
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
कालियागंज महाविद्यालय, कालियागंज।

असमानता और मनुष्य साथ–साथ चलते हैं क्योंकि मनुष्य के प्राकृतिक गुण अलग–अलग हैं। लेकिन समकालीन सोच असमानताओं के दावों में से एक को नकारती है क्योंकि यह स्थापित किया गया है कि हर किसी का अंतर्निहित मूल्य समान है। समानता का विचार विशेषाधिकार के विचार से उपजा है। आधुनिक लोकतंत्र समानता की अवधारणा को श्रेष्ठ आदर्श के रूप में मान्यता देते हैं। समानता का अधिकार एक ऐसी आदर्श व्यवस्था का तात्पर्य है जिसमें सभी सक्षम व्यक्तियों को समान रूप से समाज की समान संभावित सदस्यता का अधिकार हो। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की नागरिक स्वतंत्रता दूसरों के समान ही मूल्यवान है। भारत में, समानता की अवधारणा को प्राचीन काल से ही सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परंपराओं में एक पक्ष बनाया गया है। भारत पुराने अप्रवासियों का देश रहा है, जो इसकी विविधता को स्पष्ट करता है। आर्य सबसे पहले भारत को अपना घर बनाने वाले थे अन्य जो बाद में उनके साथ शामिल हुए, वे यूनानी, पार्थियन, यहूदी, हूण, बैक्ट्रियन, तुर्क, ईसाई, पारसी और ईरानी थे। यह दर्शाता है कि भारत की धरती ने सभी समुदायों और संप्रदायों की संस्कृतियों को समान रूप से पोषित किया है। भारतीय इतिहास अलग–अलग तरह की असमानताओं के उदाहरणों से भरा पड़ा है। इस संदर्भ में महान उर्दू शायर फिराक गोरखपुरी ने लिखा : "सर जमीन–ए–हिंद पर अकवाम–ए–आलम के फिराक/काफिले गुजरते गए हिंदोस्तां बनता गया।"[1]

प्राचीन भारत में धर्म और सामाजिक व्यवस्था का मिश्रण था। हालाँकि भारतीय धरती ने समय–समय पर सभी धर्मों को समान रूप से पोषित किया है। हिंदू न्याय शास्त्र में, यह 'जन्म और पुनर्जन्म' की अवधारणा है जो हिंदू ब्रह्मांड विज्ञान के केंद्र में थी। हिंदू दर्शन के सृजन सिद्धांत के अनुसार, विश्व की रचना ब्रह्मा (ईश्वर) ने अपने शरीर को चार भागों में विभाजित करके की थी, प्रत्येक भाग एक वर्ण का प्रतिनिधित्व करता था। मानवधर्मशास्त्र कहता है : "अपने शरीर को विभाजित करके, भगवान आधे पुरुष और आधे महिला बन गए। उस (स्त्री) से उन्होंने विराग उत्पन्न किया।"[2] और इस प्रकार मनुष्य की रचना शुरू हुई। इस प्रकार नर और मादा दोनों ही देवत्व समानता को साझा करते हैं। इसलिए, जहां तक वंशावली संशयवाद का संबंध है, सभी मनुष्य समान थे। विष्णु पुराण का श्लोक राष्ट्र के साथ लोगों की अखंडता की बात करता है। भारतीय समाज में कुछ

भेद भावपूर्ण रीति–रिवाजों और प्रथाओं के अस्तित्व के कारण समाज असमानता से ग्रस्त था। इस तरह का भेद–भाव या असमानता पूरी तरह से वैदिक निषेधाज्ञा के विपरीत थी। ऋग्वेद और अथर्ववेद की ऋचाओं में भी समानता का घोषणापत्र मिलता है। वैदिक घोषणाओं में समानता की अवधारणा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। वैदिक प्रावधान मनुष्यों के बीच समानता की जोरदार घोषणा करते हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकार आर.सी. मजूमदार ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि ऋग्वैदिक युग में समाज की राजनीतिक और सामाजिक नींव परिवार थी। वे प्राचीन सामाजिक जीवन के बारे में आगे कहते हैं : "परिवार पितृवंशीय होने के कारण ...बेटियों का जन्म वांछित नहीं था, लेकिन जन्म लेने के बाद उनके साथ दयालुता और विचार किया जाता था। उनकी शिक्षा की उपेक्षा नहीं की गई, और उनमें से कुछ ने भजनों की रचना की और विश्ववारा, घोषा और अपाला जैसे द्रष्टाओं की श्रेणी तक पहुँचे। लड़कियों का विवाह तब कर दिया जाता था जब वे पूर्ण विकसित हो जाती थीं। प्रेम के साथ–साथ पैसे के लिए भी विवाह जाना जाता था, बहु विवाह का चलन था, लेकिन बहु पतित्व का नहीं। विधवाओं के पुनर्विवाह की अनुमति थी। पत्नी, पति के धार्मिक प्रसाद में भाग लेती थी और उसके घर की रानी थी।"[3] इस प्रकार विभिन्न रूपों में असमानताओं की व्यापकता के बावजूद प्राचीन भारतीय समाज में समानता कायम थी।

भारत में सामाजिक, भौतिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संपदा में लोगों की समान भागीदारी सुनिश्चित करके समानता बनाए रखी गई थी। अर्थ शास्त्र में भी हिब्रूबाइबिल और हम्मूराबी संहिता की तरह नियोक्ता और कर्मचारी दोनों के लिए संविदात्मक कार्य व्यवस्था के मामले में समान अधिकार का सम्मान किया गया था। इसलिए, संविदात्मक समझौते की शर्तों से परे किए गए किसी भी काम पर कर्मचारियों को अतिरिक्त मुआवजा देना पड़ता था। भारत में मुसलमानों के आगमन से पूर्व समाज विभिन्न रूपों में असमानताओं के चंगुल में था। हिन्दू समाज विभिन्न वर्गों में बँटा हुआ था। हिंदू धर्म जाति व्यवस्था और उसके पदानुक्रम नहीं थे, हालांकि यह व्यवस्था श्रम विभाजन पर आधारित इसकी सामाजिक व्यवस्था का एक हिस्सा थी। छुआ छूत की प्रथा पक्षपात का एक कारण थी। सल्तनत काल (मध्यकालीन काल) के दौरान भक्ति आंदोलन के संतों ने सार्वभौमिक भाई चारे और मानव समानता का उपदेश दिया। भक्ति आंदोलन के संतों ने सभी धर्मों की मौलिक समानता और भगवान की एकता को अपने उदार विचार के आधार पर असमानताओं और जाति–प्रथा को खत्म करने का प्रयास किया। एकेश्वरवाद के आधार पर, भक्ति आंदोलन के संतों ने आम लोगों के लिए सुलभ भाषा में धार्मिक और जातिगत मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया। इनमें अनंतानंद, रामानुज, निम्बकर, रामानंद, कबीर, पीपा, पद्मावती, नानक, वल्लभाचार्य, भवानंद, सुखा, चौतन्य, नामदेव, रविदास, मीरा बाई, तुलसी दास, साइना और अन्य प्रमुख थे।

सभी धर्मों के लिए समान सम्मान, सभी लोगों के साथ समान व्यवहार, शासन में लोगों की भागीदारी अच्छी तरह से बनाए रखने के कारण मौर्य काल के साथ–साथ गुप्तकाल और महान अकबर (1556–1605 ई) के काल को भारतीय इतिहास का 'स्वर्णकाल' माना जाता है। मुस्लिम शासन के तहत, शेरशाह और अकबर के समय में, मुसलमानों ने सभी के लिए समानता के नियम का पालन किया क्योंकि उनका धर्म, इस्लाम, नस्ल, रंग, राष्ट्रीयता आदि के किसी भी भेदभाव के बिना प्रत्येक व्यक्ति को अल्लाह के सामने समान स्तर पर रखता है। भारत में उपनिवेशीकरण और ब्रिटिश साम्राज्य के आगमन के साथ भारतीय समाज की सामाजिक संरचना बदलने

लगी। उपनिवेशीकरण तक, भारतीयों को भारत में शास्त्रीय काल के दौरान स्थापित धार्मिक और प्रथागत नियमों द्वारा नियंत्रित किया जाता था। ब्रिटिश शासन से पहले, जाति व्यवस्था पहचान व्यक्त करने के कई तरीकों में से केवल एक के रूप में कार्य करती थी। स्थानीय स्तर पर, एक समूह का दूसरे समूह पर प्रभाव बार–बार बदलता रहा। इन समूहों में मंदिर समुदाय, प्रादेशिक समूह, कृषि और व्यापारिक समूह शामिल थे। भारतीय समाज तत्कालीन ब्राह्मणों द्वारा स्थापित श्रेष्ठ एवं निम्न जातियों पर आधारित पदानुक्रम के आधार पर कार्य कर रहा था।

समाज में समानता का अधिकार कम देखने को मिलता था। जो लोग ऊँची जाति के थे उन्हें विशेषाधि ाकार प्राप्त थे और जो निचली जाति के थे उन्हें अपवित्र और अछूत माना जाता था। आसान शासन के लिए, जाति व्यवस्था को अंग्रेजों ने अपने औपनिवेशिक प्रतिष्ठान को मजबूती प्रदान करने के मुख्य उपकरण के रूप में प्राथमिकता दी थी। अंग्रेजी शासकों ने आसान शासन के लिए न्याय, समानता और अच्छे विवेक की अवध ाारणा को शामिल किया। उन्होंने उन सभी का दमन किया जिन्होंने समानता और स्वतंत्रता की मांग की। अंग्रेजों के साथ उनके विचार और मूल्य आए जिन्होंने भारतीय सामाजिक परिवेश को कुछ हद तक प्रदूषित किया। लॉर्ड बेंटिक के दिनों में, सदियों पुरानी सामाजिक बुराइयों के संबंध में कई सुधार किए गए थे जो समाज में सती, शिशुहत्या, ठगी और बहु विवाह जैसी असमानताओं को बढ़ावा देने वाले थे। महात्माफुले, नारायणगुरु, अयोथीदास और डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा शुरू किए गए अधिकांश सुधार आंदोलन पूजा, नागरिक अधिकारों और शिक्षा के मामलों में 'उच्च जातियों' के साथ समानता के लिए और आर्थिक अधिकारों के बारे में आंदोलन के लिए आंदोलन रत थे। 1936 में, डॉ. अम्बेडकर ने अपने प्रसिद्ध भाषण, 'मुक्तिकोणपथे' (मोक्ष का मार्ग क्या है) में, उन्होंने 'व्यक्ति के उत्थान के लिए आवश्यक तीन कारकों, अर्थात्सहानुभूति, समानता और स्वतंत्रता' पर जोर दिया। उन्होंने समानता को 'स्पष्ट रूप से भ्रांतिपूर्ण' माना और केवल समानता के स्थान पर समता या न्याय को प्राथमिकता दी। उन्होंने अवसर की समानता का समर्थन किया, इस प्रकार स्वतंत्रता के साथ समानता का सामंजस्य स्थापित किया। प्राचीन असमानताओं ने स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को प्रभावित और प्रेरित किया। इसीलिए, देश की आजादी के बाद ब्रिटिश शासन के दौरान अन्याय सहने वाले संविधान निर्माताओं ने सामाजिक असमानताओं के खिलाफ लोगों को सुरक्षा और विश्वास प्रदान करने के लिए संविधान में कुछ बुनियादी अधिकारों को गारंटी शुदा बुनियादी अधिकारों के साथ शामिल किया था।

लगभग सभी सुधार कों ने लोगों के कष्टों के निवारण के लिए वेदों, उपनिषदों, बाइबिल और कुरान का हवाला दिया। भारतीय समाज ने प्राचीन परंपराओं और औपनिवेशिक आधुनिकता के मिश्रण पर आधारित सुधारों को देखा, जिसने समानता, स्वतंत्रता और आजादी के ऐतिहासिक मिशन को बीच में ही छोड़ दिया। भारतीय संविधान के निर्माताओं के मन में अतीत की ये सारी पीड़ाएँ थीं। समानता की अवधारणा को असमानता की सच्चाई के साथ समानता के आदर्श के प्रति हमारी प्रतिबद्धता के प्रतीक के रूप में संविधान के तहत प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों पर अध्याय में जोर दिया गया है। तदनुसार, भारतीय संविधान अनुच्छेद 14 से 18 के माध्यम से समानता की अवधारणा को मौलिक अधिकारों के रूप में मान्यता देता है। समानता की अवधारणा भारतीय लोकतंत्र की शानदार आधार शिलाओं में से एक है। अतः भारतीय संविधान के अंतर्गत राष्ट्रीय जीवन में एकीकरण के लिए समानता की अवधारणा का प्रयोग किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. बी. सिवरामय्या, इनक्वॉलिटीज एंड द लॉ (1984)
2. डेविड जी. रीचिए, नेचुरल राइट्स, 248 (1903)
3. द हिंदू, 12 जनवरी, 2011 (कोलकाता)
4. एम. पी. सिंह (एडिटेड), ह्यूमन राइट्स एंड बेसिक नीड्स, 28 (2008)
5. न्यायमूर्ति एम. रामा जोइस, भारत का कानूनी और संवैधानिक इतिहास (2001)
6. आर. सी. मजूमदार, एच.सी. राय चौधरी और कालीकिंकर दत्ता, एन एडवांस्डहिस्ट्री ऑफ इंडिया (1995)
7. जवाहर लाल नेहरू, द डिस्कवरी ऑफ इंडिया (1999)
8. के. न पणिक्कर, वास् डरे अ रेनैस्संस? फ्रॉन्टलीन, 111–116 (मार्च 11, 2011)
9. एस. सी. दुबे, इंडियन सोसाइटी (2000)
10. एल. पी. शर्मा, हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इंडिया 287 (1997)
11. के. आई. विभूति (एडिटेड), डॉ आंबेडकर एंड एम्पावरमेंट : कोंस्टीटूशनल विकिसीटुडे 37–52 (1993)
12. अमर्त्यसेन, द आर्गुमेंटेटिव इंडियन (2005)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 201–204

हिंदी भाषा और संविधान

डॉ. शुभा मिश्रा
विभागाध्यक्ष हिंदी
श्री दावड़ा विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़।

सारांश :

कोई भी भाषा केवल संचार का साधन मात्र नहीं होती, अपितु ये हमारे देश, विरासत और संस्कृति का प्रतिक होती है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न प्रकार की बोली और भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। सभी की अपनी भाषाएँ एवं इनके अपने अर्थ होते हैं। संविधान सभा में भी भाषाई बहस के दौरान सभी ने अपनी ओर से अलग–अलग भाषाओं को राष्ट्र भाषा बनाने हेतु अपना तर्क दिया। सभी के तर्को को परखने के पश्चात् संविधान सभा द्वारा निर्णय लिया गया कि संविधान की कोई राष्ट्र भाषा नहीं होगी।

भाषा हर एक व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती है। इस भाषा को लेकर सभी के अपने मत रहे। किसी के लिए इसका अर्थ स्कूल की मातृ–भाषा की शिक्षा से संबंधित था तो किसी के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा और किसी ने इसे संस्कृति से जोड़ कर देखा और अततः सभी की इन समस्या को सुलझाते हुए हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया। राष्ट्र के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक ढांचे का मूल आधार भारतीय संविधान है। हिंदी भाषा को विशेष स्थान प्रदान करने हेतु भारत की भाषिक विविधता को सम्मान देते हुए संविधान निर्माताओं ने हिंदी को प्रमुखता प्रदान की। इस शोध पत्र में संविधान में हिंदी की स्थिति, हिंदी से जुड़े प्रावधान, भाषा नीति, हिंदी की संवैधानिक मान्यता का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द – संविधान, राजभाषा, विरासत, संस्कृति, शिक्षा, भारत, हिंदी।

प्रस्तावना –

भारतीय संविधान और हिंदी का एक दूसरे से संबंध केवल कानूनी रूप से नहीं है, अपितु ये देश की राष्ट्रीय एकता और संस्कृति का भी प्रतीक हैं। संविधान द्वारा हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया जाना भारतीय पहचान को और भी अधिक सशक्त किया जाना है। इसकी प्रमुख विशेषता यह भी रही की इसमें दूसरी भारतीय भाषाओं के सम्मान और संरक्षण के विषय में भी महत्वपूर्ण निर्णय लिये गए। आज वर्तमान युग में हिंदी के आदर करने के साथ–साथ हमें उसे वैश्विक स्तर तक ले जाने की भी आवश्यता है। इसके साथ ही हमें हिंदी को विज्ञान, आधुनिकता, प्रशासन और संवाद की भाषा के रूप में भी आगे लेकर आना है। भारतीय संविधान में हिंदी को राजभाषा के रूप में जोड़ने के पश्चात् हिंदी ने अनेकों भाषाई समुदायों को एकसाथ जोड़ने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसके कारण हिंदी जन–संपर्क का एक सशक्त माध्यम बनी। संविधान के कुल 395

अनुच्छेदों में 11 अनुच्छेद संविधान में भाषा पर ही है। संविधान में भाषा से संबंधित सवालों को महत्व दिया गया इनके अनुसार देवनागरी में लिखी हिंदी संघ की राजभाषा और राजकीय प्रायोजनों के लिए अंतराष्ट्रीय रूप वाले भारतीय अंक प्रयोग किए जाएगें। संविधान देश के हर एक व्यक्ति को उनका भाषिक अधिकार प्रदान करते है, इसके अनुसार यह जनतांतित्र है।

संविधान में हिंदी का स्थान :

भारतीय संविधान के भाग XVII (धारा 343–351) में भाषा से संबधित प्रावधान दिए गए हैं।

1. धारा 343 : राजभाषा

संविधान के अनुसार भारत की राजभाषा हिंदी तथा लिपि देवनागरी होगी।

अंग्रेजी भाषा के उपयोग को 15 वर्ष तक जारी रखने का प्रावधान किया गया, जिसे बाद में विधि संशोधनों के माध्यम से बढ़ाया गया।

2. धारा 344 : भाषा आयोग

केन्द्र सरकार को भाषा आयोग नियुक्त करने का अधिकार है, ताकि राजभाषा के विकास और उपयोग के संबंध में सुझाव प्राप्त किए जा सकें।

3. धारा 345–347 : राज्यों की भाषा

राज्यों को अपनी आधिकारिक भाषा चुनने की स्वतंत्रता दी गई है।

किसी भाषा को राज्य स्तरीय मान्यता आवश्यकता अनुसार दी जा सकती है।

4. धारा 351 : हिंदी का विकास

हिंदी भाषा का राष्ट्रव्यापी विकास, प्रसार और संवर्धन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया है। भारत में तीन–भाषा सूत्र का पालन किया जाता है।

केन्द्र – राजभाषा हिंदी तथा सहायक भाषा अंग्रेजी का प्रयोग।

राज्य – राज्य की भाषा + हिंदी (अंग्रेजी)

शिक्षा – मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा + हिदी + अंग्रेजी

हिंदी और भारतीय लोकतंत्र :

हिंदी न सिर्फ राजभाषा है, अपितु ये हमारे भारतीय लोकतंत्र की संवाद–भाषा भी है।

- संसद में बहस,
- प्रशासन में कार्य,
- शिक्षा और साहित्य,
- दूरदर्शन, आकाशवाणी, मीडिया इन सभी में हिंदी की भूमिका प्रांरभ से लेकर वर्तमान तक विस्तृत होती गई है।

हिंदी दिवस –

हिंदी केवल एक भाषा ही नहीं है, अपितु ये हमारी सांस्कृतिक पहचान भी है या यूँ कहे की ये हमारे देश की आत्मा है। इसकी शुरुआत 14 सिंतबर 1949 को हुई थी जिस वक्त संविधान सभा द्वारा हिंदी को भारत की राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ था। हिंदी भाषा बेहद ही सहज और सरल भाषा है जो अधिक से अधिक लोगों

द्वारा बोली और समझी जाती है। हिंदी भाषा संस्कृत, पाली, प्राकृत एव अपभ्रंश जैसे अनेकों लोक भाषाओं में होते हुए स्वयं को विकसित किया है। आज हिंदी भाशा न सिर्फ भारत में ही बल्कि विश्व के अनेकों देशों बोली जाती है, और इसकी संख्या हर वर्ष बढ़ती जा रही है। विश्व में सबसे ज्यादा प्रयोग की जाने वाली भाषा में भी हिंदी भाषा शामिल है।

संवैधानिक प्रावधान :

भारत के संविधान में राजभाषा से संबधित भाग –17

अध्याय 1 – संघ की भाषा

अनुच्छेद 120, संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा

1. भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधो के अधीन रहते हुए, संसद में कार्य हिंदी या अंग्रेजी में किया जाएगा, परंतु यथा स्थिति, राज्य सभा का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिंदी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

2. जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो 'अंग्रेजी में' शब्दों का उसमें लोप कर दिया गया है।

आदिकाल से लेकर अब तक भारत में अनेक भाषाएँ विद्यमान रही है, जिसके जरिए भाषाओं का भी आदान–प्रदान होता रहा है। इसलिए कहा भी जाता है – कोस–कोस में पानी बदले चार कोस में बानी। जब भारत देश आज़ाद हुआ उस वक्त अंग्रेजी ही भारत की राजभाषा थी। अंग्रेजों के जाने के बाद भारत को राजभाषा की जरूरत थी जिसके द्वारा प्रशासनिक तौर पर पूरे देश में एकता स्थापित की जा सके और सभी एक–दूसरे से जोड़कर रखा जा सके। 26 जनवरी 1950 को भारत में गणतंत्र की स्थापना हुई। देश में शासन के लिए संविधान स्वीकृत की गई जिसे भारतीय संविधान कहा गया। इस संविधान में अनेक विषयों पर गहन चर्चा की गई जिसमें भाषा जैसे अनेक मुद्दे शामिल थे। उस वक्त हिंदू एंव मुस्लिम सभी हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया करते थे यह जन साधरण की भाषा थी। इसलिए एक बड़ा प्रश्न संविधान निर्माताओं के समक्ष यह भी आया कि इसे हिंदी भाषा कहो जाए या फिर हिन्दुस्तानी। संविधान निर्माताओं के द्वारा अनेक विद्वानों के साथ मिलकर इस विषय में गहन चर्चा के पश्चात हिंदी शब्द को प्रयोग में लाया गया।

निष्कर्ष :

हिंदी भाषा हम भारतीयों की पहचान है, जो हमारे हृदय में निवास करती है, परंतु आज भी कहीं न कहीं अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व अनेक क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भाषाओं से संबधित मुद्दे सदैव जटिल रहे हैं क्योंकि हर एक व्यक्ति की अपनी भाषा होती है और उस हेतु उनका अपना अर्थ भी होता है। भारतीय संविधान में राजभाषा के रूप में हिंदी को स्थापित करना भारत की भाषाई एकता और सांस्कृतिक समरसता की दृष्टि से भी देखा जाए तो ये बेहद ही महत्वपूर्ण कदम था चूंकि भारत देश एक बहुभाषी राष्ट्र है जहाँ अनेकों भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान की रचना के दौरान भाषा पर प्रश्न बेहद ही जरूरी था। देश की एकता स्थापित करने और एकजूट रखने के लिए भाषाई विविधता की पहचान को भी संजोकर रखना संविधान सभा के लिए बड़ी चुनौती थी। इसे देखते हुए हिंदी को ही राजभाषा के रूप में चुना

गया)

संदर्भ ग्रंथ –

1. भारतीय संविधान 2023, भारत सरकार : भारतीय संविधान (मूल संस्करण 1950).
2. डॉ. नागेन्द्र (2018), भारतीय राजभाषा नीति और हिंदी, राजकमल प्रकाशन (मूल संस्करण 1970).
3. जौहरी, जे. सी. (2015), भारतीय संविधान : एक अध्ययन, एस. चाँद ग्रुप (मूल संस्करण 1984)
4. भाटिया, चंद्र कैलाश (1989), राजभाषा हिंदी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5. बसु, डी.डी. (2022), भारतीय संविधान का परिचय, लेक्सीस नेक्सीस इंडिया, (मूल संस्करण 1960).
6. Brass, R. Paul, (2021), Language and partitics in India, Camleridge university Press, (1974)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 205–210

75 वर्षों में संविधान की उपलब्धियां और बालकाव्य

दिवाकर मिश्र (सूबेदार) सेवानिवृत्त,
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखंड।
डॉ. कमल कुमार बोस, शोध निर्देशक
सेंट जेवियर्स कॉलेज, रांची, झारखंड।

शोधसार :

यह शोध आलेख भारतीय संविधान की 75 वर्षों की उपलब्धियों और बालकाव्य की सामाजिक–सांस्कृतिक भूमिका को एक साथ समझने का प्रयास है। संविधान ने भारत में लोकतंत्र, समानता और सामाजिक न्याय को सशक्त किया है, वहीं बालकाव्य ने बालमन में सृजनात्मकता, संवेदनशीलता और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के मूल्यों का विकास किया है। दोनों ही भारतीय समाज की आत्मा के दो पहलू हैं एक बाह्य शासन को दिशा देता है, दूसरा आंतरिक चेतना को पोषण। संविधान जहाँ नागरिकों के अधिकारों और दायित्वों की रूपरेखा तय करता है, वहीं बालकाव्य उन मूल्यों को नई पीढ़ी के मन में संस्कारित करता है। यह आलेख इस समानांतर यात्रा को रेखांकित करता है कि कैसे संविधान और बालकाव्य मिलकर एक न्यायपूर्ण, संवेदनशील और सृजनशील भारत की नींव रखते हैं।

मुख्य शब्द : सांस्कृतिक, लोकतांत्रिक, सृजनात्मकता, नैतिक, संविधान, सृजनशील, कल्पनाशक्ति।

प्रस्तावना :

भारत का संविधान और भारतीय बालसाहित्य दोनों ही राष्ट्र के सांस्कृतिक एवं नैतिक विकास के प्रमुख स्तंभ हैं। संविधान ने जहाँ स्वतंत्रता के बाद भारत को लोकतांत्रिक दिशा दी, वहीं बालकविता ने नई पीढ़ी के भीतर मानवीय संवेदनाओं को जीवित रखा। भारतीय संविधान ने समाज में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की भावना को स्थापित किया। दूसरी ओर, बालकविता ने बालक के कोमल मन, उसकी कल्पनाओं और अभिव्यक्तियों को भाषा दी। आज के प्रतिस्पर्धी और अनुकरण–प्रधान युग में संविधान और बालकाव्य दोनों ही हमें हमारे मूल मानवीय और नैतिक मूल्यों की ओर लौटने की प्रेरणा देते हैं।

"भारत का संविधान, भारत का सर्वोच्च विधान है जो संविधान सभा द्वारा 26 नवम्बर 1949 को पारित हुआ तथा 26 जनवरी 1950 से प्रभावी हुआ। यह दिन (26 नवम्बर) भारत के संविधान दिवस के रूप में घोषित किया गया है। जबकि 26 जनवरी का दिन भारत में गणतन्त्र दिवस के रूप में मनाया जाता है।"[1] "भारत के संविधान का मूल आधार भारत सरकार अधिनियम (1935) को माना जाता है।"[2] भारत का संविधान विश्व के किसी भी

गणतान्त्रिक देश का सबसे लम्बा लिखित संविधान है।

भारतीय संविधान में वर्तमान समय में भी केवल 470 अनुच्छेद, तथा 12 अनुसूचियाँ हैं और ये 25 भागों में विभाजित है। परन्तु इसके निर्माण के समय मूल संविधान में 395 अनुच्छेद जो 22 भागों में विभाजित थे इसमें केवल 8 अनुसूचियाँ थीं। संविधान में सरकार के संसदीय स्वरूप की व्यवस्था की गई है जिसकी संरचना कुछ अपवादों के अतिरिक्त संघीय है। केन्द्रीय कार्यपालिका का सांविधानिक प्रमुख राष्ट्रपति है। "भारत के संविधान की धारा 79 के अनुसार, केन्द्रीय संसद की परिषद् में राष्ट्रपति तथा दो सदन है जिन्हें राज्यों की पर प्रधानमन्त्री होगा, राष्ट्रपति इस मन्त्रिपरिषद की सलाह के अनुसार अपने कार्यों का निष्पादन करेगा। इस प्रकार वास्तविक कार्यकारी शक्ति मन्त्रिपरिषद में निहित है जिसका प्रमुख प्रधानमन्त्री है जो वर्तमान में नरेन्द्र मोदी हैं।[3]

पिछले 75 वर्षों में भारतीय संविधान ने लोकतंत्र को गहराई तक स्थापित किया है। इसने भारत को एक लोकतांत्रिक गणराज्य बनाया, जहाँ नियमित और शांतिपूर्ण चुनावों के माध्यम से सत्ता का हस्तांतरण सुनिश्चित हुआ। संविधान ने सामाजिक न्याय के लिए आरक्षण, समान अवसर और कल्याणकारी प्रावधानों द्वारा समाज के कमजोर वर्गों को सशक्त किया। इसके अतिरिक्त, भारत की विविधता में एकता को बनाए रखते हुए संविधान ने भाषाई, धार्मिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं को एक राष्ट्रीय ढाँचे में संगठित कियाङ। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों के संतुलन ने शासन को स्थायित्व प्रदान किया । मौलिक अधिकारों की गारंटी ने नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा की। संविधान की सबसे बड़ी विशेषता इसका लचीलापन है अब तक 100 से अधिक संशोधन किए जा चुके हैं, जो समाज की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप इसकी अनुकूलता को दर्शाते हैं। इसके साथ ही 73वें और 74वें संशोधनों द्वारा स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक दर्जा देकर लोकतंत्र की जड़ों को ग्राम और नगर स्तर तक पहुँचाया गया।

बालकाव्य की भूमिका और आवश्यकता :

जैसे संविधान नागरिकों की स्वतंत्रता का संरक्षक है, वैसे ही बालकाव्य बच्चों की कल्पनात्मक स्वतंत्रता का माध्यम है। बालकविता केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि बालक के मन, भावना और सृजनशीलता को अभिव्यक्ति देने का सशक्त साधन है। यह उनके भीतर छिपे विचारों, प्रश्नों और जिज्ञासाओं को स्वर देती है। जब परिवार और समाज की सीमाएँ बच्चे की कल्पना को बाँध देती हैं, तब बाल कविता उसे उड़ान देती है। भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में जहाँ बच्चों से अनुशासन और अनुकरण की अपेक्षा की जाती है, वहाँ बालकाव्य उन्हें स्वयं सोचने और अनुभव करने का अवसर देता है। यह केवल "फूल, चाँद और परियों" की दुनिया नहीं, बल्कि बालक की मुक्त अभिव्यक्ति का मंच है, जो उन्हें संवेदनशील नागरिक बनने की दिशा में प्रेरित करता है।

बालकविता केवल एक सौंदर्यात्मक विधा नहीं है, वह एक मानवतावादी आंदोलन भी है। यह बालक को सुनने, समझने और उसका आत्मसम्मान बनाए रखने का एक साहित्यिक प्रयास है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे सोचने वाले, महसूस करने वाले और रचने वाले मानव बनें, तो हमें उन्हें न केवल अच्छा जीवन देना होगा, बल्कि अच्छा साहित्य भी देना होगा और वह बालकविता से आरंभ होता है। बाल साहित्य के अंतर्गत बालकाव्य एक विशिष्ट और अत्यंत प्रभावकारी विधा है, जो बालकों के मनोविज्ञान, कल्पनाशक्ति और जीवनानुभवों के आलोक में रचित होती है। "यह काव्य–रूप बालकों के मनोरंजन के साथ–साथ उनके व्यक्तित्व–विकास, सामाजिक बोध, नैतिक शिक्षा और भाषिक क्षमता को सशक्त बनाने में सहायक होता है।[4] बालकाव्य न केवल

कोमल बाल मन को आनंदित करता है, बल्कि उसे जीवन के मूलभूत संस्कारों की ओर भी उन्मुख करता है "बालकाव्य से तात्पर्य ऐसे काव्य–सृजन से है, जो विशेष रूप से बाल पाठकों की मानसिक एवं संवेदनात्मक संरचना को ध्यान में रखते हुए रचित होता है।"[5] इसकी भाषा सहज, बोधगम्य, लयात्मक एवं कल्पनाप्रवण होती है, ताकि बालक उसमें न केवल रसास्वादन कर सकें, बल्कि उसमें निहित सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों को भी आत्मसात कर सकें। बालकविता की भाषा में कठिनता या गूढ़ार्थ का प्रयोग नहीं किया जाता। यह बालकों की बौद्धिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए सहज और स्पष्ट होती है। लयात्मकता एवं तुकांत सौंदर्य का बालकविता में ध्यान रखने के साथ ही और भाव और भाषा का भी विशेष ध्यान रखा जाता है, जिससे वह गेय बन सके और बालक उसे गुनगुना सकें।

बालकविता में परियों, खिलौनों, जानवरों, चाँद–सितारों आदि की काल्पनिक दुनिया प्रस्तुत कर बालकों को कल्पनालोक की सैर कराई जाती है"।[3] बालकविता के माध्यम से बच्चों को सत्य, अहिंसा, परिश्रम, करुणा, सहयोग, देशप्रेम जैसे मूल्यों से परिचित कराया जाता है । बालकविता बालकों के भीतर मानवीय भावनाओं की परिपक्वता को जागृत करती है। यह उनके अंतःकरण में संवेदना, सहानुभूति और सौंदर्यबोध को जन्म देती है। बालकाव्य का महत्त्व केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है, यह बालकों के समग्र व्यक्तित्व–विकास का माध्यम भी है। "इसके माध्यम से भाषा का आरंभिक शिक्षण, उच्चारण–संशोधन, स्मरण शक्ति का विकास, कल्पना का विस्तार और सामाजिक चेतना का सृजन संभव होता है। बालकविता बालकों को राष्ट्र, समाज, पर्यावरण, प्रकृति और जीवन के विविध पक्षों से भी परिचित कराती है। "हिंदी बालकाव्य के क्षेत्र में सोहनलाल द्विवेदी, हरिवंशराय बच्चन, शिवमंगल सिंह 'सुमन', नरेन्द्र शर्मा, प्रेमचंद गांधी, डॉ. राष्ट्रबंधु, हेमंत कुमार, भारत भूषण श्रीवास्तव आदि रचनाकारों ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।"[6] इनकी रचनाएँ बालकों के हृदय में गहरी छाप छोड़ने वाली रही हैं। उदाहरण स्वरूप "कोशिश करने वालों की हार नहीं होती"[7] "नन्हा मुन्ना राही हूँ" ,"झूले की रस्सी" ,"चलो बच्चों स्कूल चलें" इस प्रकार, "बालकाव्य न केवल बालकों के मनोरंजन का सशक्त माध्यम है, बल्कि यह उनके समग्र विकास का आधार स्तंभ भी है। यह उनके भीतर संस्कार, सृजनशीलता, भाषिक सौंदर्यबोध और नैतिक चेतना का बीजारोपण करता है। यदि कहा जाए कि बालकविता बालमन की आत्मा है, तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।"[8]

पिछले पचास वर्षों में भारतीय समाज, विशेषकर बालमन की दुनिया में जो परिवर्तन घटित हुए हैं, वे पूर्ववर्ती पाँच शताब्दियों में संभवतः नहीं हो सके। यह युग विज्ञान, सूचना, तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के तीव्र उत्कर्ष का काल है। अब तो स्थिति यह हो चली है कि तकनीकी परिवर्तनों की लहरें प्रतिदिन नवीन आयाम गढ़ रही हैं। ऐसे परिवेश में बालकों को प्रारंभिक अवस्था से ही विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचारों से परिचित कराना केवल अपेक्षित ही नहीं, बल्कि आवश्यक हो गया है। बालक, स्वभावतः कल्पनाशील, जिज्ञासु और संवेदनशील होता है। वह दृश्य, श्रव्य और भाषिक संकेतों से अधिक गहरे स्तर पर जुड़ता है। यही कारण है कि बालकाव्य जिसमें कविता, शिशुगीत, लयात्मक कथन और तात्त्विक बिम्ब समाहित होते हैं बालकों के लिए अत्यंत प्रभावशाली माध्यम बन जाता है। राजा–रानी, राक्षस–परियाँ, बाघ–सिंह, बिल्ली–चूहा, तितली और भालू आदि प्रतीकात्मक पात्रों के माध्यम से बालकाव्य में बालक को केवल मनोरंजन नहीं प्राप्त होता, बल्कि यह उसके मानसिक, भावनात्मक एवं नैतिक विकास में भी सहायक सिद्ध होता है।

एक सजग और संवेदनशील बाल साहित्यकार बालकाव्य को केवल काव्यात्मक अनुशासन में बाँधकर नहीं देखता, बल्कि उसे बाल–चेतना का संवाहक मानता है। वह बालक के मनोविज्ञान, भाषा प्रवृत्ति और कल्पनाशक्ति को ध्यान में रखते हुए ऐसा काव्य रचता है जो मनोरंजन और शिक्षण का संतुलित समन्वय हो। हिन्दी बालकाव्य को उसके लक्ष्य, विषयवस्तु और प्रभाव के आधार पर चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। मनोरंजन प्रधान बालकाव्य इस वर्ग में वे रचनाएँ सम्मिलित हैं जो बालकों को हास्य, कौतूहल, लयात्मकता और कल्पना के माध्यम से आकृष्ट करती हैं। इनका मूल उद्देश्य बालकों को कविता से जोड़ना, भाषा के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना और रचनात्मकता के द्वार खोलना होता है। जैसे "नानी की रसोई में / गुड़ की चुपड़ी रोटी / बिल्ली माँग रही है / मीठी–मीठी बोटी।" शिक्षाप्रद बालकाव्य –यह श्रेणी मनोरंजन के साथ–साथ नैतिक, सामाजिक या व्यावहारिक शिक्षाओं को भी समाहित करती है। बालकों को सहयोग, ईमानदारी, प्रकृति प्रेम, समय का मूल्य, स्वच्छता आदि विषयों पर आधारित काव्य रचनाएँ इसी वर्ग में आती हैं। उदाहरणतः "सूरज रोज उठाता सबको / आलसियों को छोड़ / जो जगता है, वही पाता है / जीवन का हर मोड़।"

राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत बालकाव्य – स्वाधीनता संग्राम के काल में बालकों के मन में देशभक्ति की भावना उत्पन्न करने हेतु इस वर्ग की अनेक रचनाएँ सामने आईं। आज भी अनेक साहित्यकार राष्ट्र गौरव, स्वतंत्रता सेनानियों की वीरगाथाएँ और सांस्कृतिक एकता को लेकर प्रभावशाली बालकाव्य रच रहे हैं। यह बालकों में सामाजिक उत्तरदायित्व और देशप्रेम की चेतना जाग्रत करता है।

वैज्ञानिक और सूचनात्मक बालकाव्य – यह सबसे नवीन और अपेक्षाकृत अल्प विकसित क्षेत्र है। इस वर्ग में वे कविताएँ आती हैं जो विज्ञान, तकनीक, अंतरिक्ष, पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य, जलवायु परिवर्तन आदि विषयों को सरल, काव्यात्मक और बालोचित शैली में प्रस्तुत करती हैं। परन्तु हिन्दी बाल साहित्य अब भी इस दिशा में पूर्ण सजग नहीं हो पाया है। हिन्दी में अभी भी परम्परागत और तथ्यहीन उपमाओं का दोहराव दिखाई देता है, जैसे "कोयल मीठा गाती है" जबकि यह वैज्ञानिक तथ्य है कि नर कोयल गाता है, मादा कोयल नहीं। यद्यपि इन वर्गों के मध्य स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती, तथापि बालकों की आयु, मानसिक स्तर एवं बौद्धिक ग्रहणशीलता को आधार बनाकर यह वर्गीकरण तर्कसंगत प्रतीत होता है। पाँच वर्ष से कम आयु के बालकों को प्रथम प्रकार की रचनाएँ, पाँच से आठ वर्ष के मध्य वालों को द्वितीय प्रकार की रचनाएँ और आठ वर्ष से अधिक आयु के बालकों को तृतीय व चतुर्थ वर्ग की कविताएँ अधिक रुचिकर और प्रभावशाली लगती हैं। फिर भी यह सीमा पूर्णतः कठोर नहीं मानी जा सकती, क्योंकि मानसिक परिपक्वता बालक विशेष की रुचि और परिवेश पर भी निर्भर करती है।

किसी भी समाज की सांस्कृतिक गरिमा, नैतिक चेतना और बौद्धिक प्रौढ़ता का मूल्यांकन इस बात से किया जा सकता है कि वह अपने बच्चों को किस प्रकार का साहित्य प्रदान करता है। बाल–साहित्य केवल बालमन की क्षणिक रुचियों का परितोष नहीं करता, अपितु वह उनके व्यक्तित्व–निर्माण, नैतिक विकास और जिज्ञासु प्रवृत्तियों के परिष्कार का सशक्त माध्यम भी बनता है। वह समाज वास्तव में सुसंस्कृत और जागरूक कहलाने योग्य होता है, जो अपनी भावी पीढ़ी को विविधतापूर्ण, कल्पनाशील और मूल्याधारित साहित्य से समृद्ध करता है। बाल्यावस्था जीवन का अत्यंत कोमल, संवेदनशील तथा ग्रहणशील चरण होता है। इस अवस्था में जो देखा, सुना और पढ़ा जाता है, वही बाल मस्तिष्क में स्थायी छाप छोड़ता है। अतः इस अवस्था में गुणवत्तापूर्ण

एवं उद्देश्यपरक साहित्य का सान्निध्य अत्यावश्यक हो जाता है। यह साहित्य न केवल कल्पना, संवेदना और नैतिकता का विकास करता है, बल्कि बालक में विवेक, साहस, तर्कशीलता, और कर्तव्यबोध के बीज भी रोपता है। यही कारण है कि बाल–साहित्य को केवल मनोरंजन तक सीमित रखना उसकी व्यापकता के साथ अन्याय होगा।

प्रिंटिंग प्रेस के आगमन के साथ इस साहित्य को संकलित करने और व्यापक स्तर पर प्रसारित करने का मार्ग प्रशस्त हुआ। आज भी भारत की अनेक बोलियों में बाल–साहित्य मौखिक परंपरा के रूप में जीवित है, जो सांस्कृतिक विविधता की अमूल्य धरोहर है। आधुनिक काल में बाल–साहित्य ने अपनी विषयवस्तु और अभिव्यक्ति दोनों में नये आयाम ग्रहण किए हैं। अब यह केवल धार्मिक–नैतिक उपदेशों या लोककथाओं तक सीमित नहीं रहा, बल्कि विज्ञान, तकनीकी विकास, पर्यावरणीय चेतना, बाल–अधिकार, अंतरिक्ष विज्ञान, साहसिक अनुभवों और सामाजिक समरसता जैसे विविध विषय इसमें समाहित हो रहे हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुभद्राकुमारी चौहान, हरिकृष्ण देवसरे, रामधारी सिंह 'दिनकर' जैसे रचनाकारों के योगदान ने बाल–साहित्य को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। नंदन, चंपक, पराग और बालहंस जैसी पत्रिकाओं ने बच्चों को मनोरंजन और ज्ञान के समन्वय से युक्त साहित्य उपलब्ध कराया।

शिशु का मानसिक और चारित्रिक विकास प्रारंभिक अवस्था में ही होता है। अतः उसे उचित दिशा देने के लिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो उसका मार्गदर्शन कर सके। टीवी, मोबाइल और इंटरनेट की आक्रामक दुनिया में बाल साहित्य ही ऐसा माध्यम है जो बच्चों को शब्द, संवेदना और सोच से जोड़ता है। बाल साहित्य में नायक जैसा बनना बच्चों को प्रेरित करता है। जैसे चंपक, नंदन, पंचतंत्र की कथाओं के पात्र बच्चों को नैतिक शिक्षा देते हुए उन्हें प्रेरक चरित्र प्रदान करते हैं। बाल साहित्य की अवधारणा को केवल एक मनोरंजनात्मक साहित्य तक सीमित करना उचित नहीं होगा। यह साहित्य भविष्य की पीढ़ी को संस्कारित करने, उन्हें सोचने, गढ़ने, और समाजोपयोगी नागरिक बनाने की दिशा में सशक्त उपकरण है। यह वह बीज है जो बाल मन में बोया जाता है, और जो भविष्य में एक सुचिंतित, भावनाशील, और सृजनशील व्यक्तित्व के रूप में पनपता है। इसलिए बाल साहित्य की अवधारणा केवल 'साहित्य बच्चों के लिए' नहीं, बल्कि 'साहित्य बच्चों के निर्माण हेतु' है जो उन्हें केवल आनंद नहीं, एक अर्थपूर्ण जीवन–दृष्टि भी प्रदान करता है। किसी राष्ट्र या समाज की भावी दिशा का अनुमान उसके वर्तमान में पल रहे बचपन को देखकर सहज ही लगाया जा सकता है। बचपन के संपूर्ण विकास में जिन प्रमुख कारकों की भूमिका होती है, उनमें पारिवारिक परिवेश, शैक्षिक संस्थाएँ और बच्चों के लिए उपलब्ध साहित्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'साहित्य' शब्द का अर्थ है हितकारी रचना"। हिंदी शब्दकोशों के अनुसार, वह समस्त लेखन जो मानवता के कल्याण का साधन बने, साहित्य कहलाता है। इसी प्रकार बाल साहित्य के महत्व के विषय मे द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी ने अपने आलेख 'बालसाहित्य की रूपरेखा में इस पर और अधिक प्रकाश डालते हुए लिखा है 'स हितेन हितायः' अर्थात् जिस लिखित कृति के अध्ययन, चिंतन और मनन से मानव मात्र की भलाई हो, वही सच्चे अर्थों में साहित्य की कोटि में आयेगा। जहाँ तक बाल साहित्य का प्रश्न है, सामान्यतः 4 से 14 वर्ष तक की आयु वाले बालक–बालिकाओं के लिए लिखा जाने वाला साहित्य बाल साहित्य माना जाता है।'[9]

निष्कर्ष :

संविधान और बालकाव्य दोनों ही भारत के नैतिक और बौद्धिक जीवन के दो आयाम हैं। संविधान ने हमें राजनीतिक स्वतंत्रता दी, जबकि बालकविता भावनात्मक स्वतंत्रता का माध्यम बनी। संविधान समाज में न्याय, समानता और अधिकारों की रक्षा करता है, वहीं बालकविता उन मूल्यों को बालमन में अंकुरित करती है। वर्तमान युग में जब समाज में प्रतिस्पर्धा, भौतिकता और कृत्रिमता बढ़ रही है, तब संविधान और बालकाव्य दोनों ही हमें हमारी मानवीयता, सृजनशीलता और संवेदनशीलता की ओर लौटने का मार्ग दिखाते हैं।

इन दोनों के समन्वय से ही एक सशक्त, संवेदनशील और रचनात्मक भारत का निर्माण संभव है।

संदर्भ सूची :

1. "Preface, The constitution of India" (PDF).http://india.gov.in/my&government/constitution&india/constitution&india&full&text. Government of India. 31 मार्च 2015 को मूल से पुरालेखित (PDF). अभिगमन तिथि : 5 February 2015. [cite web]:
2. https://www.drishtiias.com/gs&special/gs&special&polity/important&sources&of&the&indian&constitution
3. संग्रहीत प्रति 11 मई 2011 को मूल से पुरालेखित, अभिगमन तिथि : 26 नवंबर 2016.
4. द्विवेदी, सोहनलाल, बाल साहित्य का विकास, बाल भारती प्रकाशन, 1998 पृष्ठ
5. त्रिपाठी, कृष्ण कुमार। बाल साहित्य की भूमिका. प्रभात प्रकाशन, 2004, पृष्ठ 37
6. शुक्ल, रामचंद्र। हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1989, पृष्ठ 234
7. निगम, रामनिवास। बाल कविता और बाल मनोविज्ञान. राजकमल प्रकाशन, 2012, पृ. 67
8. द्विवेदी, सोहनलाल, बाल साहित्य का विकास. बाल भारती प्रकाशन, 1998, पृष्ठ 134
9. प्रसाद माहेश्वरी द्वारिका भारतीय बाल साहित्य के विविध आयाम प्रधान संपादक विनोदचंद्र पांडे–उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ संस्करण 1996 बाल साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ 11

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 211–213

संविधान की प्रमुख विशेषताएं

Dr. Ranjita Bharti
Asst. Professor, HOD - Hindi Dept,
Valliammal College for Women, Chennai.

संविधान की प्रस्तावना :

समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए सरकार को कुछ कानून व्यवस्था की स्थापना करनी पड़ती है। जिसमें धर्म, जाति, लिंग और जन्म के आधार पर भेदभाव न हो। संविधान वह कघनून व्यवस्था है जिसमें सरकार की शक्तियों, संरचना के साथ साथ नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण किया जाता है। संविधान किसी भी देश और राज्यों की मौलीक नियमों को दर्शाता है। संविधान का दूसरा नाम "राज का मूल" है। संविधान इस देश में रहने वाले सभी जनता पर लागू होता हैं। भारतीय संविधान के जनक भा भीमराव अम्बेडकर है। इसमें 252 पेज और २२ चित्र हैं। इसमें भारत की समृद्धि, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत को प्रमुखता दी गई है। इसमें राम, कृष्ण, हनुमान, बुद्ध, महावीर, विक्रमादित्य, सुल्तान, रानी लक्ष्मीबाई, गांधी, सुभाष चन्द्र बोस के चित्र हैं। इस चित्र को प्रसिद्ध नन्दलाल बोस द्वारा तैयार की गई थी। संविधान को ६० देशों के अध्यन से पूरा किया गया है। भारतीय संविधान 26 जनवरी १९५० को लागू की गई। संविधान का मूल इंग्लिश बिहारी लाल रायजादा ने लिखा। संविधान की रचना ३९९ सदस्यों ने की। विभाजन के बाद की २८४ सदस्यों ने हस्ताक्षर किया। इस संविधान को जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा बनाया गया है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, न्यायिक, विचार और विश्वास, व्यवस्था, समानता, एकता, प्रतिष्ठा, मित्रता, देश और राष्ट्र की प्रतिष्ठा ही इस संविधान का मूल स्तंभ है। प्रस्तावना को न्यायालय में बदला नहीं जा सकता लेकिन जहाँ संविधान की भाषा में संदेह है वहाँ प्रस्तावना की सहायता से संविधान में संशोधन किया जाता है। संविधान निर्माण के लिए विभिन्न समितियां जैसे प्रक्रिया समिति, वार्ता समिति, संचालन समिति, कार्य समिति, संविधान समिति, प्रारूप समिति का निर्माण किया गया है। समाजवादी शब्द का अभिप्राय समाजवाद अर्थात सभी उत्पादन और वितरण के साधनों को राष्ट्रीयकरण नहीं है अपितु गरीबी और अमीरी के मध्य की रेखा को कम करना है।

पंथनिरपेक्ष का अभिप्राय सरकार द्वारा सभी धर्मों का समानता, संरक्षण और सम्मान करना है। भारतीय संविधान में भारत को "राज्यों का संघ "कहा गया है। केवल संघ शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। डी. डी. बसु के अनुसार – भारतीय संविधान एकात्मक और संघात्मक का समिश्रण हैं। भारतीय संविधान में शक्तियों का केंद्र और राज्य सरकार में विभाजित किया गया है। जैसे केंद्र सूची, समवर्ती सूचि एवं राज्य सूची के विषय सम्मिलित हैं। आम जनता अपनी सहायता के लिए सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय की मदद ले सकता

है। मौलिक अधिकार– ६ भाग समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, संस्कृति और शिक्षा का अधिकार सार्वजनिक उपचारों का अधिकार।

संविधान की विशेषता :

विश्व का सबसे लम्बा संविधान है जिसमें निरंतर संशोधन के बाद इसमें वृद्धि हो रही है किंतु लोक कल्याण की भावना के लिए संशोधन होता है। भारतीय संविधान की व्यवस्था का समावेश अनेक संविधान के मिलने से बना है। संसदीय व्यवस्था यूनाइटेड किंगडम के मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, संगठन और शक्ति, उपराष्ट्रपति के पद अमेरिका के और जर्मनी के संविधान से भारत का अधिनियम तैयार हुआ है। भारत के लोग किसी भी बाहरी देश के अधीन नहीं है वही पूर्ण प्रभुत्व संपन्न राज्य है। समाजवादी राज्य गरीब और अमीर के बीच की दूरी को कम करता है। भारत के सभी धर्मों के बीच रक्षा और सम्मान करना है। जिससे धार्मिक भेदभाव मिट सके। भारत में जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन होगा। जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन में सहभागी बन पाएंगे। जिससे न्याय, स्वतंत्रता, समानता और मित्रता की भावना हो। जिसमें न्यायिक स्वतंत्रता समानता सभी को अधिकार हो। गणराज–भारत के सर्वोच्च पद भारत का नागरिक आम नागरिक ही सुशोभित करेगा और यह अनुवांशिक न हो एक निश्चित समय के लिए निर्वाचित होगा। संसदीय सरकार इस व्यवस्था में राष्ट्रपति नाम मात्र के कार्यपालिका हैं और प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल की वास्तविक कार्यपालिका है। लचीला अधिक, कठोर कम – यूनाइटेड किंगडम और अमेरिका के बीच की स्थिति भारतीय संविधान की है। संशोधन के कारण अत्यंत सरल और कुछ उपबंधों के कारण अधिक कठोर है। मूल अधिकार और कर्तव्य–संविधान में ये ६ कर्तव्य है, ४२ व संविधान संशोधन में 10 मौलिक कर्तव्य जोड़े गए हैं। राज्य के नीति निदेशक तत्व सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, न्याय और सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के लिए हैं। सशक्त केंद्र के साथ संघीय सरकार – केंद्र और राज्यों के अलग–अलग सरकारें, विषयों का केन्द्र राज्य में विभाजन, न्यायपालिका का निष्पक्षता स्थापित की गई है। युवाओं का सार्वजनिक मताधिकार – धर्म, जाति के आधार पर न होकर १८ वर्ष की आयु में मताधिकार का अधिकार दिया गया है। भारतीय संविधान में अमेरिका और इंग्लैंड के संसदीय सर्वोच्च सिद्धांत को अपनाया गया है। संविधान में कुछ–कुछ कानून को संशोधित करके उसे दूर किया जाता है। आपातकालीन उपलब्ध – किसी भी आपातकालीन स्थिति में राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की सलाह ले सकता है। संविधान का मूल रूप अंग्रेजी में लिखा गया है। ५८वे संविधान संशोधन के १९८७ में अनुच्छेद तीन नए ३९५ के अंतरगत संविधान हिन्दी भाषा में उपलब्ध कराया गया।

राज्य के नीति-निर्देशक तत्व :

राज्य के नीति–निर्देशक तत्व प्रशासकों को आचार संहिता राष्ट्रीय विकास के प्रेरक सूत्र और राष्ट्रपति की गति प्रदान करने की ज्योति स्तंभ है। इस नीति को संविधान के ४ भाग में रखा गया है। राज्य को सामाजवाद न्यायिक व्यवस्था कर सके। इनका विकास राज्य की विकास कर सकती है। आर्थिक सुरक्षा संबंधी निदेशक तत्व भारतीय जनता को आर्थिक सुरक्षा और आर्थिक न्याय का सहयोग के लिए लोक–कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गई है। स्त्री–पुरुष के समान कार्य के एक समान वेतन की सुविधा हो। संपत्ति और उत्पादन में साधनों का इस प्रकार केन्द्रीकरण न हो। बच्चों का शोषण न हो। शिक्षा, विकास, रोजगार के सुअवसर दे। बेकारी और बुढ़ापा बीमार जनता में सार्वजनिक सहायता दे। व्यक्तिगत और सहाकारी आधार पर लघु उद्योग को प्रोत्साहन और

सहयोग दें। कमजोर वर्ग को निःशुल्क कघनून व्यवस्था रोजगार दे। 44 संशोधन के अनुसार सार्वजनिक सामाजिक स्तर और जनता को सामाजिक स्तर में भेदभाव न करें। सामाजिक विकास संबंधी निदेशक तत्व कल्याणकारी राज्य की स्थापना करें। जीवन स्तर के साथ स्वास्थ्य संबंधी सुधार करें। मादक वस्तुओं में प्रतिबंध हो। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के प्रति योजनाएँ। शासन सुधार संबंधी निर्देशक तत्व – ग्राम पंचायतों का गठन करें। कार्यपालिका और न्यायपालिका अलग रखें। संपूर्ण भारत में विधि और कघनून हो। 14 वर्ष के बालकों को निशुल्क शिक्षा व्यवस्था कराई जाए। संस्कृति सम्बंधी निदेशक तत्व – प्राचीन स्मारकों, कलात्मक भवनों की सुरक्षा के अलावा राष्ट्रीय महत्व दे। प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा हो। सांस्कृतिक विकास के सुअवसर दें। अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संबंधी तत्व – अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा दें। राष्ट्रों के बीच न्याय और समानता पूर्वक स्वाभाव रखें। आपसी भाईचारा और सद्भावना के अंतरराष्ट्रीय विवादों को हल करें। राज्य नीति निदेशक तत्वों को ईमानदारी से पालन करें। लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करें।

मौलिक कर्तव्य :

संविधान के 42 वें संशोधन के अंतर्गत दस नागरिक कर्त्तव्य को शामिल किया गया है। संविधान राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का सम्मान स्वतंत्रता आंदोलन के आदर्शों का सम्मान करें। राज्य की एकता, अखंडता, सम्पन्नता, ईमानदारी से निभाई जाए। देश की रक्षा के लिए हमेशा राष्ट्रीय सेवा के लिए तैयार रहना चाहिए। भारतीय नागरिकों के बीच मित्रता सद्भावना का व्यवहार हो। महिलाओं के प्रति सम्मान हो। राष्ट्रीय संस्कृति को सुरक्षित रखें और वनस्पतियों की रक्षा और जीवों पर दया करें। वैज्ञानिक स्वभाव, मानवतावाद स्वभाव और खोज की भावना रखें। सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा और हिंसा का त्याग करें।

निष्कर्ष :

संविधान वह कानून व्यवस्था है जिसमें समानता, एकता, बंधुत्व, आम व्यक्ति की गरिमा के साथ राष्ट्रीय संस्कृति के प्रति सम्मान देना हर नागरिक का प्रमुख कर्तव्य है। जनता के अधिकारों की रक्षा करना, न्याय अधिकार समानता सुनिश्चित करना, सता के लोभियों को सत्ता के दुरुपयोग से रोकना। एकता, समानताएँ, स्थिरता स्थापित करना। संविधान किसी भी देश की कानून व्यवस्था का आधार स्तंभ होता है। संविधान सरकार को दिशा दिखाने वाली वह प्रणाली है। समय–समय पर बदलते परिवेश के कारण संविधान में बदलाव संशोधन के रूप में होती है। मौलिक अधिकारों के माध्यम से अमीर और गरीब वर्ग के बीच में समानता लाना है। सत्ता को चलाने के लिए नियंत्रण और संतुलन के लिए संविधान अनिवार्य है। नागरिकों की भागीदारी और अत्याचारों की सुरक्षा के लिए मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है। सरकार की संरचना को रेखांकित कर, जवाब देही सुनिश्चित करता है यह हमारा संविधान।

Add : E-9, Anna Nagar East, Chennai-600102
E-mail: ranjitabharti@yahoo.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 214–222

एक राष्ट्र एक चुनाव : भारतीय लोकतंत्र की दिशा में एक ऐतिहासिक पहल

प्रीति अहिरवार, शोधार्थी
ऊषा पाण्डेय, शोध निर्देशक
एस. आर. के विश्वविद्यालय (भोपाल)

सार- पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में एक साथ चुनाव कराने के संबंध में गठित उच्चस्तरीय समिति ने भारतीय चुनाव प्रक्रिया में एक क्रांतिकारी बदलाव की नींव रखी है। लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव चक्र को एक साथ रखकर समिति की सिफारिशों को लगातार चुनाव से जुड़ी शासन की बाधाओं और संसाधनों की बर्बादी जैसी दीर्घकालिक चुनौतियों को दूर करने का आश्वासन देती है। संवैधानिक संशोधन के साथ साथ एक साथ चुनाव लागू करने के लिए प्रस्तावित चरणबद्ध दृष्टिकोण भारत में अधिक कुशल ओर स्थिर चुनावी माहौल का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

प्रस्तावना- "एक राष्ट्र, एक संविधान, एक झंडा और एक कर के बाद अब एक चुनाव की ओर एक और कदम"

-माननीय नरेंद्र मोदी

भारत का लोकतांत्रिक ढांचा अपनी चुनावी प्रक्रिया के कारण जीवंत बना हुआ है। जो नागरिको को हर स्तर पर प्रशासन में भागीदारी प्रदान करता है आजादी के बाद से लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के 400 से ज्यादा चुनावों ने भारतीय निर्वाचन आयोग की निष्पक्षता और पारदर्शिता के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाया है लेकिन चुनाव में होने वाली कई खामियों को दूर करने के लिए एक कुशल प्रणाली की आवश्यकता ने एक नई चर्चा को जन्म दिया है। जिसमें एक राष्ट्र एक चुनाव की अवधारणा में फिर से रुचि जाग्रत हुई है। एक राष्ट्र एक चुनाव की अवधारणा में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव चक्र को एक साथ करने का प्रस्ताव रखा गया है। इसमें मतदाता अपने निर्वाचन क्षेत्र में एक ही दिन सरकार के दोनों स्तर के लिये मतदान कर सकेंगे हालांकि अभी तो देशभर में मतदान कई चरणों में हो रहे हैं।

भारत में एक साथ चुनाव कराने पर उच्चस्तरीय समिति की 2024 में जारी रिपोर्ट ने इस दृष्टिकोण को लागू करने के लिए एक व्यापक रोडमैप प्रस्तुत किया है। इसकी सिफारिशों का केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 18 सितंबर 2024 को स्वीकार कर लिया है, जो चुनाव सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। समर्थकों का तर्क है कि ऐसी निर्वाचन प्रणाली प्रशासनिक दक्षता बढ़ाने के साथ ही चुनावी खर्चों को भी कम कर सकती है और नीतिगत निरंतरता को भी बढ़ावा देगी। भारत अपनी शासन व्यवस्था को सुव्यवस्थित और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को अनुकूल करने की आकांक्षा रखता है। जिसमें "एक राष्ट्र एक चुनाव" की अवधारणा एक महत्वपूर्ण सुधार के रूप में उभरी है, जिसके लिए विचारशील विचार विमर्श और आम सहमति की आवश्यकता है।

- एक राष्ट्र एक चुनाव क्या है?

एक राष्ट्र एक चुनाव भारत सरकार द्वारा देश में सभी चुनाव एक ही दिन या विशिष्ट समय सीमा के भीतर विचाराधीन एक प्रस्ताव है। जिसका उद्देश्य लागत में कटौती करना है। सबसे उल्लेखनीय प्रस्ताव में एक लोकसभा और सभी 28 राज्यों तथा आठ केंद्र शासित प्रदेशों की राज्य विधानसभाओं के लिए एक साथ चुनाव कराना है। कानून और न्याय मंत्री अर्जुनराम मेघवाल ने लोकसभा में संविधान (129वां संविधान संशोधन) विधेयक 2024 पेश किया है। 17 दिसंबर 2024 को एक राष्ट्रीय चुनाव को यथार्थ में लाने के लिए संविधान में संशोधन करने के लिए प्रस्तावित विधेयक को 19 दिसंबर 2024 को संयुक्त समिति के पास भेज दिया है।

- **भारत एक राष्ट्र एक चुनाव की आवश्यकता**

भारत जैसे जीवंत लोकतंत्र में निर्वाचन एक अनिवार्य प्रक्रिया है। स्वस्थ एवं निष्पक्ष चुनाव लोकतंत्र की आधारशिला होते हैं। भारत जैसे विशाल देश में निबधि रूप से निष्पक्ष चुनाव कराना हमेशा एक जुझारू चुनौती रही है। अगर हम देश में होने वाले चुनावों पर एक नजर डालें तो पाते हैं कि भारत के किसी न किसी राज्य में हर वर्ष चुनाव होते रहते हैं। जिसके कारण हमेशा न केवल प्रशासनिक और नीतिगत निर्णय से प्रभावित हैं बल्कि राष्ट्रीय कोष पर भारी बोझ पड़ता है। इससे बचने के लिए नीतिनिर्माता ने लोकसभा तथा राज्यों की विधानसभाओं का चुनाव एकसाथ कराने का विचार बनाया है।

- **ऐतिहासिक परिपेक्ष्य**

एक राष्ट्र एक चुनाव की अवधारणा भारत में कोई नई बात नहीं है। संविधान को अंगीकृत किए जाने के बाद 1951 से 1967 तक लोकसभा और सभी राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ आयोजित किए गए थे। लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के पहले आम चुनाव 1951-1952 में एक साथ आयोजित किए गए थे। यह परंपरा इसके बाद 1957, 1962 और 1967 के तीन आम चुनाव में जारी रही।

हालांकि कुछ राज्य विधानसभाओं के समय से पहले भंग होने के कारण 1968 और 1969 में एक साथ चुनाव कराने में बाधा आई थी। चौथी लोकसभा भी 1970 में समय से पहले भंग कर दी गई थी। फिर 1971 में नए चुनाव हुए पहली, दूसरी और तीसरी लोकसभा ने अपना पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया जबकि आपातकाल की घोषणा के कारण पांचवीं लोकसभा का कार्यकाल अनुच्छेद 352 के तहत 1977 तक बढ़ा दिया गया था। इसके बाद कुछ ही केवल आठवीं, दसवीं, चौदहवीं और 15 वीं लोक सभा ए अपना पांच वर्षों का कार्यकाल पूरा कर सकी, जबकि छठवीं, सातवीं, नौंवी, ग्यारहवीं, बारहवीं और तेरहवीं सहित अन्य लोग सभाओं को समय से पहले भंग कर दिया गया।

पिछले कुछ वर्षों में राज्य विधानसभाओं को भी इसी तरह की बाधाओं का सामना करना पड़ा है। विधानसभाओं को समय से पहले भंग किया जाना और कार्यकाल विस्तार बार बार आने वाले चुनौती बन गई है। इन घटनाक्रमों ने एक साथ चुनाव के चक्र को अत्यंत बाधित किया, जिसके कारण देशभर में चुनावी कार्यक्रम में बदलाव का मौजूदा स्वरूप सामने आया है।

- **एक राष्ट्र एक चुनाव विधेयक (one nation one election)**

एक राष्ट्र एक चुनाव की व्यवस्था को लागू करने से संबंधित दो विधेयक को संयुक्त संसदीय समिति के पास विचार के लिए भेजा गया है। ये दो विधेयक है:-

1. 129वां संविधान संशोधन विधेयक
2. केंद्र शासित प्रदेश कानून (संशोधन) विधेयक 2024

- **विधेयकों के प्रमुख प्रावधनों पर एक नज़र**

129 संविधान संशोधन विधेयक 2024 के तहत लोकसभा और राज्यसभा विधानसभाओं के लिए एक साथ चुनाव कराने हेतु संविधान में संशोधन और नए अनुच्छेद शामिल करने का प्रस्ताव किया गया है।

- **संविधान के अनुच्छेद में परिवर्तन**

अनुच्छेद 83 संशोधन संसद के निम्न सदन (यानी लोक-सभा) की अवधि में संशोधन से संबंधित है। यह विधेयक इस अनुच्छेद में नवीन उपबंध जोड़ता है:-

1. यदि लोक सभा अपनी पूर्ण अवधि पांच वर्ष से पहले भंग होती है तो पुनः निर्वाचित लोकसभा केवल शेष अवधि के लिए ही कार्य करेगी।।
2. एक नए उपबंध द्वारा स्पष्ट किया गया है कि मध्यवधि चुनाव के बाद गठित लोकसभा को पुरानी लोकसभा का विस्तार नहीं माना जाएगा।

अनुच्छेद 172 संविधान संशोधन राज्य विधानसभाओं की अवधि में संशोधन किया जाएगा।

अनुच्छेद 327 संशोधन संसद को विधायिकाओं के चुनाव से संबंधित प्रावधान करने की शक्ति प्रदान करता है।

संविधान में अनुच्छेद 82A शामिल

- 82A अनुच्छेद एक राष्ट्रीय चुनाव (simultaneous election) में महत्वपूर्ण बिंदु है। इसके द्वारा भारत का चुनाव आयोग लोकसभा और सभी राज्य विधानसभाओं के लिए एक साथ चुनाव कराएगा।
- राष्ट्रपति प्रस्तावित बदलावों को लोकसभा की पहली बैठक की तारीख से लागू कर सकता है।
- 82 ए अनुच्छेद चुनाव आयोग के अधिकारियों में वृद्धि करता है। यदि निर्वाचन आयोग की राय में किसी राज्य की विधानसभा का चुनाव लोकसभा के चुनाव के साथ नहीं कराया जा सकता तो वह राष्ट्रपति से सिफारिश कर सकता है कि उस राज्य विधान सभा का चुनाव बाद में किया जाए।

- **केंद्र शासित प्रदेश कानून संशोधन विधेयक 2024**

इसके तहत केन्द्रशासित अधिनियम 1963, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली अधिनियम 1991 तथा जम्मू कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम 2019 में संशोधन का प्रस्ताव दिया गया। ये संशोधन विधानसभाओं वाले केंद्र शासित प्रदेशों की विधानसभाओं के कार्यालय को एक साथ चुनाव के तहत लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल के अनुरूप प्रस्तावित है।

- **एक राष्ट्र एक चुनाव की वर्तमान स्थिति**

एक राष्ट्र एक चुनाव की संभावना पर विचार करने के लिए बनी उच्चस्तरीय समिति ने द्रौपदी मुर्मू को अपनी रिपोर्ट 14 मार्च 2024 को सौंप दी है। इस समिति का कहना है कि ये सभी पक्षों के जानकारों ओर शोधकर्ताओं से बातचीत के बाद ये रिपोर्ट तैयार की गई है। रिपोर्ट में आने वाले वक्त में लोकसभा और विधानसभा चुनाव के साथ साथ नगर पालिकाओं और पंचायत चुनाव करवाने के मुददे से जुड़ी सिफारिशें की गई है।19 दिनों मे तैयार इस 18,626 पन्नों की रिपोर्ट में कहा गया है कि 47 राजनीतिक दलों ने अपने विचार समिति के साथ साझा किए हैं जिसमें से 32 राजनीतिक दल एक राष्ट्र एक चुनाव के समर्थन में है।रिपोर्ट में कहा गया है कि केवल 15 राजनीतिक दलों को छोड़कर शेष 32 दलों ने केवल एक साथ चुनाव प्रणाली का समर्थन किया है बल्कि सीमित संसाधनों की बचत, सामाजिक तालमेल बनाए रखने और आर्थिक विकास को गति देने के लिए ये विकल्प अपनाने की जोरदार वकालत की है। एक राष्ट्र एक चुनाव विधेयक लोकसभा में पेश किया जा चुका है लेकिन अभी तक यह पारित नहीं हुआ है। इसे लागू करने के लिए संसद के दोनों सदनों में दो तिहाई बहुमत भारत नहीं हुआ और कम से कम आधे राज्यों द्वारा अनुमोदन की आवश्यकता है।

- **एक राष्ट्र एक चुनाव से लाभ**

एक राष्ट्र एक चुनाव अवधारणा से भारत को प्रमुख लाभ होंगे।

  - **शासन को सुव्यवस्थित करना और नीतिगत निष्क्रियता को कम करना**

बार बार होने वाले चुनाव सरकार को निरंतर अभियान चलाने के लिए मजबूर करते हैं जिसके कारण दीर्घकालिक निर्णय लेने में देरी होती है। उदाहरण के लिए हम देखे तो आदर्श आचार संहिता के कारण उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद में 24 से अधिक प्रमुख विकास परियोजनाएं रुकी

हुई थी । एक राष्ट्र एक चुनाव होने पर आचार संहिता को हर 5 साल में एक बार तक सीमित कर देगा जिससे निर्बाध शासन सुनिश्चित होगा।

- **चुनावी लागत में कमी**

एक साथ चुनाव कराने से सरकार और राजनीतिक दलों पर पड़ने वाले भारी बोझ में कमी आ सकता है। 2019 कार लोकसभा चुनाव एक ऐतिहासिक चुनाव साबित हुआ क्योंकि चुनाव खर्च 9000 करोड़ से बढ़कर 55,000 करोड़ हो गया।अनुमान है कि चुनाव की आवृत्ति कम होने से 7000 ₹500,00,00,000 से लेकर 12,000 करोड़ रुपए तक की बचत हो सकती है।

- **मतदाता सहभागिता एवं मतदान में वृद्धि**

बार बार चुनाव होने के कारण मतदाता थक जाता है तथा उपचुनावों और स्थानीय चुनावों में उनकी भागीदारी अक्सर कम हो जाती है। 2024 के लोकसभा चुनाव में 65.79% मतदान हुआ। यह देश भर में चुनावी भागीदारी के माध्यम स्तर को **सुरक्षाबलों का सही** उपयोगदर्शाता है। चुनावों को समेकित कर के ONOE लोकतांत्रिक प्रक्रिया को पुनः सक्रिय कर सकता है। जिससे यह सुनिश्चित होगा कि मतदाता कम लेकिन अधिक प्रभावशाली चुनावी आयोजनों में भाग लें, जिससे संभावित रूप से कुल मतदान में 5-10% वृद्धि हो सकती है।

- **चुनावी कदाचार पर अंकुश**

चुनाव की आवृति वोट खरीदने, राज्य संसाधनों के दुरुपयोग और धनबल के प्रयोग के लिए अनेक अवसर पैदा करती है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र और झारखंड में 2024 के राज्य विधानसभा चुनाव के साथ विभिन्न उपचुनाव में अनेक एजेंसियों ने 1000 करोड़ से अधिक की नकदी शराब, ड्रग्स और मुफ्त उपहार जब्त किए गए थे। एक राष्ट्र एक चुनाव समय सीमा को सीमित करके ऐसी प्रथाओं को काफी हद तक कम कर सकता है।

- **सुरक्षा बलों का सही उपयोग**

चुनाव में सुरक्षा बलों की भारी तैनाती की आवश्यकता होती है। चुनाव आयोग ने 2024 के लोकसभा चुनाव और आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, ओडिशा और सिक्किम में विधानसभा चुनावों के दौरान चरणबद्ध तरीके से तैनाती के लिए 3.4,00,000 केन्द्रीय सशस्त् पुलिस बल की मांग की जिससे सीमा और आंतरिक सुरक्षा प्रबंधन में अंतराल पैदा हो गया।

एक राष्ट्र एक चुनाव इन तैनाती को एक चक्र में समेकित करेगा जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा प्रबंधन में वृद्धि हो।

- **आर्थिक गतिविधियों में व्यवधान को न्यूनतम करना**

बार बार चुनाव होने के कारण व्यावसायिक गतिविधियों पर विस्तारित प्रतिबंध जैसे परिवहन प्रतिबंध, शराब की बिक्री और श्रम विचलन के माध्यम से स्थानीय अर्थव्यवस्थाएँ बाधित होती थी।

2023 में कर्नाटक सरकार राज्य चुनावों के दौरान लगाए गए शराब प्रतिबंध के कारण ₹150,00,00,000 के राजस्व का नुकसान हुआ। चुनावी कार्यक्रम को संरेखित कर के एक राष्ट्र एक चुनाव आर्थिक गतिविधि सुनिश्चित कर सकता है।

- **विकास लक्ष्यों में वृद्धि**

एक साथ चुनाव कराने से केंद्र और राज्य सरकारों की सड़कों में संरेखण करके सहकारी संघवाद को मजबूत किया जा सकता है। वस्तु और सेवाकर 2017 के कार्यान्वयन के दौरान केंद्र और राज्य सरकारों के बीच समन्वित प्रयास से निति के क्रियान्वयन में तेजी आई। एक राष्ट्र एक चुनाव ऐसे सहयोग को संस्थागत रूप दे सकते हैं जिसमें स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा और जलवायु कार्रवाई जैसे क्षेत्रों में एकीकृत रणनीति सुनिश्चित हो सके जिससे समेकित राष्ट्रीय विकास हो सके।

- **एक राष्ट्र एक चुनाव से जुड़ी प्रमुख चुनौती है**

एक राष्ट्र एक चुनाव भारत के लिए कई चुनौतियां भी उत्पन्न करेंगी। जो निम्न हैं:-

  - **संवैधानिक और विधिक जटिलताएं**

एक राष्ट्र एक चुनाव को लागू करने के लिए कई संवैधानिक प्रवधानों में संशोधन की आवश्यकता होती है जैसे कि अनुच्छेद 83,85,172 और 356 जो विधानसभाओं के कार्यकाल तथा विघटन को नियंत्रित करते हैं। राज्य चुनावों को एक साथ कराने के लिए कुछ विधानसभाओं के कार्यकाल को कम करना या बढ़ाना आवश्यक होगा, जिससे उनकी लोकतांत्रिक

वैधता पर प्रश्न उठाएंगे। इसके साथ ही अनुच्छेद 356 राष्ट्रपति शासन का दुरुपयोग होने पर समन्वित कार्यक्रम बाधित हो सकता है।

- **संघवाद के लिए संभावित खतरा**

आलोचकों का तर्क है कि एक राष्ट्र एक चुनाव राज्यों की स्वायत्तता को कम कर सकता है क्योंकि स्थानीय मुद्दे राष्ट्रीय अभियान और एजेंडों से प्रभावित हो सकते हैं।

- **तार्किक व परिचालन संबंधी चुनौतियां**

लोकसभा और सभी राज्य विधानसभाओं के लिए एक साथ चुनाव कराने के लिए बड़े पैमाने पर प्रशासनिक एवं तार्किक योजनाओं की आवश्यकता होगी।

भारत के चुनाव आयोग का अनुमान है कि एक साथ चुनाव कराने के लिए प्रत्येक 15 वर्ष में नई इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीन की खरीद और प्रतिस्थापन के लिए 10,000 करोड़ रुपए की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त एक मिलियन मतदान केंद्रों वर्ष 2025 तक 10 हजार लाख मिलियन से अधिक मतदाताओं का प्रबंधन करना बहुत सी चुनौतियों का सामना करना है, खासकर दूर दराज एवं संघर्षग्रस्त क्षेत्रों में।

- **राजनीतिक प्रतिरोध और आम सहमति का अभाव**

एक राष्ट्र एक चुनाव के विचार को विभिन्न राजनीतिक दलों, विशेष रूप से क्षेत्रीय दलों से प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है जो एक समन्वित प्रणाली में अपनी प्रासंगिकता खोने से डरते हैं।

- **समय के पूर्व विघटन के कारण व्यवधान**

यदि किसी राज्य या केंद्र में सरकार का समय से पहले पतन हो जाता है तो समकालिक चुनाव चक्र बाधित हो जाएगा।

- **विलंबित चुनावी न्याय और विवाद समाधान**

एक साथ चुनाव होने से न्यायपालिका के लिए चुनाव संबंधी विवादों को निपटाने में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

- **निष्कर्ष**

एक राष्ट्र एक चुनाव भारत के लोकतंत्र को अधिक सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। यदि यह व्यवस्था संवैधानिक सहमति और जन समर्थन के साथ लागू की जाती है तो आने वाले वर्षों में भारत में एक सशक्त, स्थिर, सुशासित एवं जीवंत लोकतंत्र के रूप में स्थापित कर सकता है।

- **संदर्भ ग्रंथ सूची**

विधि एवं न्याय मंत्रालय

https/once.gov.in.hlc-report-en

https/legalaffairs.gov.in/sites/defileselectionreport

Drishti las

Study in wikipedia

इंटरनेट संचार

स्वयं के विचार

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 223–227

संविधान की विशेषताएं

विनोद कुमार, शोधार्थी
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर–471001 (मध्यप्रदेश)
डॉ. एस.के. सिद्धार्थ, शोध निर्देशक
सहायक प्राध्यापक राजनीति शास्त्र
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सेलेंस, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़ (मध्यप्रदेश)

भूमिका :

भारतीय संविधान का दस्तावेज बहुत पुराना है। मोंटेग्यु–चेम्सफोर्ड सुधार अधिनियम–1919, भारतीय संविधान–1935 एक संघीय संविधान की रूपरेखा बनाया गया और इसे आधार पर स्वतंत्र भारत का संविधान संविधान सभी द्वारा तैयार किया गया। पहले ही बी.एन. राव ने बुनियादी ढ़ांचा तैयार किया था और फिर डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इस आधार पर भवन का निर्माण किया। ये दोनों एक दूसरे के पूरक माने जाते थें संविधान में समानता, न्याय, लोकतांत्रिक, समान अवसर, मानवता, बंधुत्व, सामाजिक, धर्मनिरपेक्ष बिंदुओं का समावेश करके एक प्रकार से प्राण डाल दिए गए। शक्तियों को तीन स्तर पर संघीय, प्रांतीय, शक्ति प्रदान करना, तीन प्रकार की ही आपात स्थिति प्रदान करना, मूल संविधान में भाग–22, 395 धाराएं, 8 अनुसूचियां यह एक पवित्र दस्तावेज कहलाता है।

हम भारत के लोग... के वाक्यांश से शुरू होकर भारत की जनता के हाथ में है। यह प्रस्तावना का आधार है। संविधान के हर बिंदु की अपनी–अपनी विशेषताएं हैं जो हमें पूरी जानकारी देकर सुशोभित करती हैं। संविधान एक लिखित व्यापक और लचीला संविधान होना, सरकार की संसदीय प्रणाली को अपनाना और भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्थापित करना शामिल है। इसके अतिरिक्त इसमें एकल नागरिकता, मौलिक अधिकार और निर्देशक सिद्धांत तथा स्वतंत्र न्यायपालिका जैसी व्यवस्थाएं हैं।

संविधान की विशेषताएं :

मोंटेग्यु–चेम्सफोर्ड सुधार अधिनियम–1919 :

1919 के भारत सरकार अधिनियम, जिससे मोंटेग्यु–चेम्सफोर्ड सुधार भी कहा जाता है, प्रांतों में द्वैध शासन दो भागों में बंट गया आरक्षित विषय और हस्तांतरित विषय। केन्द्र में द्विसदनीय विधायिका बनाई गई

जिसमें एक निचला सदन और एक उच्च सदन शामिल था। सांप्रदायिक निर्वाचन का विस्तार मुसलमानों के अलावा, सिक्खों, यूरोपीय लोगों और एग्लों–इंडियन लोगों के लिए भी अलग निर्वाचन व्यवस्था की गई। लोक सेवा आयोग का गठन, जो सिविल सेवकों की भर्ती के लिए जिम्मेदार था। सीमित मताधिकार कुछ निश्चित लोगों को मताधिकार दिया गया, जिसमें पहली बार सीमित संख्या में महिलाओं को भी वोट देने का अधिकार मिला।

केन्द्रीय बजट का पृथ्ककरण पहली बार केन्द्रीय बजट को प्रान्तीय बजट से अलग किया गया। वायसराय को विधायिका द्वारा अस्वीकृत विधेयकों को प्रमाणित करने और अध्यादेश जारी करने जैसे महत्वपूर्ण अधिकार दिए गए। भारतीय सदस्यों में वृद्धि वासराय की कार्यकारी परिषद में भारतीयों की संख्या बढ़ा कर तीन कर दी गई थी।

1935 के भारत सरकार अधिनियम :

प्रांतीय स्वायतता प्रांतों को अधिक स्वायतता दी गई और प्रांतीय स्तर पर द्वैध शासन समाप्त कर दिया। शक्तियों का विभाजन केंद्र और इकाइयों के बीच शक्तियों को तीन सूचियों में विभाजित किया गयाः संघीय सूची, प्रान्तीय सूची, और समवर्ती सूची। संघीय न्यायालय की स्थापना केन्द्र और राज्यों के बीच विवादों के समाधान के लिए दिल्ली में एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई।

दुनिया का सबसे लम्बा लिखित संविधान :

भारतीय संविधान दुनिया के सभी लिखित संविधानों में सबसे लम्बा और विस्तृत है। इसमें मूल रूप से 395 अनुच्छेद, 22 भागों में और 8 अनुसूचियां थी, जो अब बढ़कर लगभग 470 अनुच्छेद, 25 भागों और 12 अनुसूचियां हो गई है।

एकल नागरिकता :

भारत में केवल एक राष्ट्रीय नागरिकता है, जिसका अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति के पास किसी भी राज्य के अलावा, भारत, नागरिकता होने की एक ही पहचान है।

संसदीय प्रणाली :

भारत में सरकार की एक संसदीय प्रणाली है, जो राष्ट्रपति प्रणाली से अलग है। यह शक्ति के समान वितरण के सुनिश्चित करती है और इसे शक्ति के विकेंन्द्रीकरण को प्राथमिकता देने वाला माना जाता है।

संघीय और एकात्मक का मिश्रण :

भारतीय संविधान एक संघीय प्रणाली स्थापित करता है। लेकिन इसमें एक मजबूर केन्द्र, एकल संविधान, राज्यपाल की नियुक्ति, और अखिल भारतीय सेवाएं जैसे कई एकात्मक विशेषताएं भी हैं। इसलिए इसे अर्ध–संघीय (Quasi-federal) कहा जाता है।

धर्मनिरपेक्ष राज्य :

संविधान ने 42वें संविधान अधिनियम 1976 के माध्यम से (धर्म निरपेक्ष) शब्द जोड़ा गया है इसका अर्थ है कि राज्य सभी धर्मों का समान और संरक्षण करेगा।

मौलिक अधिकार :

संविधान नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार प्रदान करता है, जैसे समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण विरूद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार और संविधानिक उपचारों का अधिकार।

नीति निर्देशक सिद्धांत :

ये वे सिद्धान्त जिनका पालन राज्य को कानून और नीतियां बनाते समय करना होता है लेकिन ये न्यायसंगत नहीं है।

एकल और स्वतंत्र न्यायपालिका :

भारत में एक एकीकृत न्यायपालिका हैं, जो सर्वोच्च न्यायालय के शिखर पर हैं। यह न्यायपालिका को विधायिका और कार्यपालिका के प्रभाव से स्वतंत्र रखती हैं।

लचीलापन और कठोरता का मिश्रण :

संविधान की संसोधन प्रक्रिया में लचीलेपन और कठोरता का मिश्रण है, कुछ प्रावधानों को आसानी से संसोधित किया जा सकता है जबकि कुछ के लिए एक विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है।

मौलिक कर्तव्य :

मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों को शामिल नहीं किया गया था। 1976 में 42वें संसोधन द्वारा इन्हें जोड़ा गया। यह भारत के सभी नागरिकों के लिए (11) मौलिक कर्तव्यों को सूचीबद्ध किया गया है।

विभिन्न स्त्रोतों से लिया गया :

भारत के संविधान ने अपने अधिकांश प्रावधानों को विभिन्न अन्य देशों के संविधानों के साथ–साथ 1935 के भारत सरकार अधिनियम के लगभग 250 प्रावधानों को संविधान में शामिल किया गया है। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने गर्व से कहा कि भारत के संविधान को दुनिया के सभी ज्ञात संविधानों का निचौड़ करने के बाद तैयार किया गया है। संविधान का संचरचनात्मक हिससा काफी हद तक 1935 के भारत सरकार अधिनियम से लिया गया है। संविधान का दार्शनिक हिस्सा मौलिक अधिकार, राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्त अमेरीकी और आयरिश संविधानों से प्रेरित हैं।

सरकार का संक्षिप्त स्वरूप :

भारत के संविधान ने सरकार की अमेरीकी राष्ट्रपति प्रणाली को चुना है। संसदीय प्रणाली विधायी और कार्यकारी अंगों के बीच सहयोग और समन्वय के सिद्धान्त पर आधारित है जबकि राष्ट्रपति प्रणाली दो भागों के बीच शक्तियों के पृथ्क्करण के सिद्धान्त पर आधारित है। भारत की संसदीय प्रणाली को जिम्मेदार सरकार और कैबिनेट सरकार के 'वेस्टमिसटर' मॉडल के रूप में भी जाना जाता है। संविधान न केवल केन्द्र में बल्कि राज्यों में भी संसदीय प्रणाली की स्थापना करता है।

कानून का शासन :

भारत में लोग कानून द्वारा भाासित होते हैं। किसी व्यक्ति दारा नहीं लोकतंत्र के लिए कानून व्यवस्था बेहद महत्वपूर्ण है लोकतंत्र में कानून संप्रभु है आम आदमी की सामुहिक ज्ञान की संप्रभुता है। यहां मनमानी की कोई गुजाईश नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति को कुछ मौलिक अधिकार प्राप्त होते हैं। उच्चतम न्यायपालिका के पास कानून की पवित्रता को बनाए रखने का अधिकार हैं। अनुच्छेद–14 सभी कानून के समक्ष समान है और सभी कानूनों की समान सुरक्षा का अधिकार लोक–अदालतों का प्रचार, जनहित याचिका, कोई भी वादी पीठासीन

न्यायिक प्राधिकरण में अपील कर सकता हैं कि वह स्वयं मामले में बहस करें या न्यायपालिका की मदद से कानूनी सहायता प्राप्त करें।

1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम :

भारत और पाकिस्तान के रूप में दो स्वतंत्र देशों का निर्माण 15 अगस्त 1947 को ब्रिटिश शासन का अन्त, भारत सरकार अधिनियम, और रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने या स्वतंत्र रहने की स्वतंत्रता शामिल थी इस अधिनियम ने भारत सचिव और वायसराय जैसे पदों को भी समाप्त कर दिया और भारत–पाकिस्तान के लिए अलग–अलग गर्वनर–जरनल की नियुक्ति का प्रावधान किया।

42वें संसोधन अधिनियम–1976 :

प्रस्तावना में समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और अखण्ड शब्द का जोड़ना, मौलिक कर्तव्यों को शामिल करना, राष्ट्रपति को मन्त्रिपरिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य करना और लोकसभा व विधानसभाओं का कार्यकाल 5 से बढ़ाकर 6 वर्ष करना और निर्देशक सिद्धान्तों को अधिक प्राथमिकता देने जैसे कई अन्य महत्वपूर्ण बदलाव भी किए केन्द्र कि शक्ति में वृदि जैसे कुछ विषय राज्य सूची से समवर्ती में स्थानांतरित किए गए।

1975 में आपातकाल :

नागरिक स्वतंत्रता का निलंबन, प्रेस पर सेंसरशीप, विपक्षी नेताओं की गिरफ्तारी चुनावों का स्थगन और राष्ट्रपति शासन के तहत शासन शामिल थे, मौलिक अधिकार भी निलंबित कर दिए गए, सता का विकेंन्द्रीकरण, बडे पैमाने पर नसबंदी कार्यक्रम चलाया गया।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान की विशेषताओं का निष्कर्ष यह है कि यह एक लचीला व कठोर संविधान है जो संघीय और एकात्मक दोनों तत्वों का मिश्रण है। सबसे लम्बा लिखित संविधान, संसदीय स्वरूप, मौलिक अधिकार, राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत, धर्मनिरपेक्षता, और एकीकृत व स्वतंत्र न्यायपालिका शामिल है। यह लोकतंत्र, न्याय, समानता और स्वतंत्रता को बढावा देना है और एक जीवंत दस्तावेज है जो भारत के विकास के साथ विकसित होता रहता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. भारत का संविधान और संवैधानिक विधि।
   लेखक– सुभाश काश्यप
   निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
   नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्रयूशनल एरिया
   वसंत कुंज, फेज–2, नई दिल्ली–110070
   ISBN 978–81–237–1913–9
2. भारत की विदेश नीति

लेखक– डॉ महेश भटनागर
प्रकाशक : लक्ष्मी बुक डिपो
हांसी गेट, भिवानी (हरियाणा)
3. भारत–पाकिस्तान संबन्धों के आईने में
लेखक : शिशिर गुप्त
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन प्रा.लि.
4/19 आसक अली रोड़
नई–दिल्ली –110002
ISBN 978–93–94534–32–2
4. इंटरनेट।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 228–234

Social Realism in Selected Writings of Charles Dickens and Mulk Raj Anand

Pankaj Kumar
Research Scholar, Department of English, Jai Prakash University, Chapra.

Abstract :

This paper offers a comparative study of social realism in the works of Charles Dickens and Mulk Raj Anand, focusing on The Old Curiosity Shop, Oliver Twist, Untouchable, and Coolie. Both writers portray the suffering of marginalized individuals shaped by structural poverty, exploitative labour systems, and oppressive social hierarchies. Dickens critiques the Victorian Poor Law and industrial capitalism, while Anand exposes caste oppression and colonial capitalism in India. Through characters such as Nell, Oliver, Bakha, and Munoo, the novels reveal how economic structures and social hierarchies shape the lived experiences of the poor. This study argues that both authors use realism as an ethical intervention aimed at representing systemic injustice and illuminating human dignity.

Introduction :

This paper will examine Charles Dickens' and Mulkraj Anand depiction of social realism namely in his selected text; The old curiosity shop, Oliver Twist, Untouchable and coolie .It will mainly deal with homelessness, heroism and forms of employment with focus on The Poor Law and the colonial rule in India.. I will look into the problem of poverty in context of first phase of industrialization which brought radical insecurity to middle class people in Britian and during colonialism in india.

Industrial Revolution in Britain transformed social economic structure of the country to a very great extent. An economic change like shift into the emphasis from agriculture to industry was witnessed due to advent of revolution. New industries sprang offering new goods to satisfy the demand and desire of the market. As production for profit in a free market replaced production for use and as innovation of newer methods upset the balance in established industries. The phenomenon of large scale boom and depression introduced a new element into the economic life. It threatened the life of middle class people as they fall into working class. Thus poor were unable to cope with the changing

economic which pushed them to marginal side and got involved into criminality and other illegal work to survive. Poor Law offered some ray of hope but turned to be blessing in disguise for them as it made their life extremely difficult. The gap between rich and poor was visible in the Victorian society, nothing was done except enactment of The New Poor Law of 1834, leading to the establishment of work houses. The authorities took measures to enact the new law effectively, and aware of corruption in the system; therefore it mandated poor to enrol in the workhouses to avail the facility. However, it was a futile attempt because the law was state sponsored programme to put an end to poor life as Royal Commission report substantiates, "though its name, the New Poor Law's aim was not to eradicate poverty, rather to clearly demarcate the emerging middle classes from those either unwilling or unable to work, intended to produce rather negative than positive effects." There were many criticism of the law in terms of public and private charity.

The Old Curiosity Shop depicts a new form of earning through illegitimate means such as gambling. Dickens' protagonist Nell is a thirteen year old girl living with her grandfather in London to support him financially. Nell and her grandfather's poverty, sickness, unemployment, homelessness, and nomadic lifestyle are mirrored in this novel. I will examine the life of Nell to provide an idea about how the poor young people lived. Nell is not a typical homeless girl, similar to those homeless people who lived in London streets and had much more difficult lives. Nell used to have her home. In those days, she becomes homeless not because of her own wish but due to her grandfather.

When Nell finds him in trouble due to debt, she helps her grandfather to escape London, a gesture of platonic love that saves him from Quilp - the money lender. In this way, she becomes nomad running away not from her present but from her future. Nell is shown a caring, deserving, homeless girl with desires of a stable and rooted life though deprived of her childhood privileges because of her grandfather indulgence in illegal practices,

"...the child trembled with a mingled sensation of hope and fear as in some far–off figure imperfectly seen in the clear distance, her fancy traced a likeness to honest Kit. ... if she had not dreaded the effect, which the sight of him might have wrought upon her fellow traveller, she felt that to bid farewell to anybody now, and most of all to him who had been so faithful and so true, was more than she could bear. It was enough to leave dumb things behind, and objects that were insensible both to her love and sorrow."

The mental agony of Nell can be seen, following her grandfather to help him with the core of her heart. On the first day of journey when they halt to have a rest, Nell is tired but continues for her grandfather; she says,

''We must go on, indeed', said Nell, yielding to his restless wish, but the women had observed

from the young wonderer's gait, that one of her little feet was blistered and sore, and being a woman and a mother too, she would not suffer her to go until she had washed the place and applied some simple remedy…. .

Although they were poor, they were willing to help each other. She loves her grandfather and Kit to an extent that she sacrifices her life for family values, and grandfather is the person who harvests from little Neil. "The account of Nell's last few hours recalls her dreaming of those who had helped her and saying 'God bless you!' While she may be dead, there are many similar to her who could still be helped. Nell's death was not only an occasion for awakening the moral sentiments but also functioned as essential call to help those in needs. I think this is not a single-issue battle, such as against the New Poor Law but rather comprehensive call for justice. The theme of homelessness and heroic deeds finds way in Oliver Twist though the homelessness emerged from the government system of eradicating poverty through the New Poor Law. Oliver is an innocent child, who is trapped in a world where his only alternatives appear to be the workhouse, Fagin's thieves, a jail, or an early grave. Oliver is a homeless, searching for livelihood that construct a radical hero who protest against the established system by asking for more food;

What! Said the master at length, in faint voice, Please sir replied Oliver, I want some more'.

As mentioned about the Poor Law in the introduction, its burning example can be seen in Oliver Twist. Poverty is a major concern in Oliver Twist. Throughout the novel, Dickens concentrate on this theme, describing slums so weak that whole rows of houses are on the point of ruin. In an early chapter, Oliver attends a pauper's funeral with Mr. Sowerberry and sees a whole family crowded together in one miserable room. As Dickens is inspired by the realistic school of thought, he portrays realism in Oliver Twist and describes the effects of industrialisation emanating in the form of new Poor Law. Poverty, child labour, education system, orphanage, recruitments of children as criminal and other social evils of the Victorian age are captured in Oliver twist; the novel begins with the killing of innocence, Oliver attends a funeral that introduces him to death at such a tender age.

According to David Daiches, Oliver Twist is "full of nightmare symbols of loss. . ." as shown in the description of Mr. Sowerberry's shop:

"An unfinished coffin on black tressels, which stood in the middle of the

Shop, looked so gloomy and death-like. . . The shop was close and

Hot, and the atmosphere seemed tainted with the smell of coffins.

The image of the coffin represents death and reminds the reader of Oliver's circumstance that he is an orphan. Death is a symbol of loss of life, just like Oliver has lost his parents. Dickens describes the misery of life in the workhouse. Workhouses symbolize an authoritative pattern of

maintaining the social order; a shift from the order ends up in severe punishment. Oliver rebels against the system by asking for more food can be seen a self assertion or claim for identity in terms of equal treatment. Oliver is thrown out of workhouse and apprenticed to an undertaker Showerbery who introduced him to death. He escapes from undertaker but his fortune ends when he comes in contact of Doger who takes him to an old Jewish Fagin, who is master of underworld and runs an intuition of criminality. Fagin forcibly drags him into the world of underworld. He is instructed and trained to be a pickpocket. He is imprisoned on the accusation of stealing handkerchief but soon discharged for being innocent. Mr Brownlow takes orphan to his house. He feels better here in contrary to dark and dirty den of thieves. His happiness soon turns into hell as he is trapped by Fagin's keep Nancy and once again he is dragged into the world of Fagin's. He is forced to take part in burglary by skies and his other partners. The nexus of burglars could not thwart Oliver from his self-enlightenment of not giving to conspirators' way rather sets up his own mean of revolting against his own companions.

The self enlightenment infuses courage in him and dares to mislead gang and tell truth about the burglary. However, his brave deed turns into misfortune. Oliver, on the other hand, proves to be of gentle birth. Although he has been ill-treated in all his life, he recoils, at the plan of victimizing anyone else. This in fact gentlemanliness makes Oliver Twist something of a changeling tale, not just a condemnation of social injustice. Oliver was born for better things. He struggles to survive in the savage world of the underclass before finally being rescued by his family and returned to his proper place. In the centre of corruption and degradation radical Oliver remains pure hearted. He steers away from evils and receives his award leading peaceful life in the country. His attitude shows victory over evils. This makes him respectable. Thus we find that the reactive hero does not lose his gentleness throughout the story. Though there are many moments when he shows fragments of activity. His identity becomes the greatest mystery and is identified in by the positive effort and operation of people around him, without taking his any active part in his pursuit. Mr Brownlow adopts Oliver as his son and led a retired life in a peaceful village. We are never told about his adulthood. We find that Dickens portrays his identity in positive efforts despite being a victim of social evils.

Now I will will examines the modes, functions, and idealistic details of social realism in following major novels of Mulk Raj Anand—Untouchable (1935) and Coolie (1936), andThe History of Indian literature is replete with so many examples and glory that go to prove that ,Anand, one of the prominent and founding figures of Indian English fiction. He employs realism as a political, ethical, and artistic strategy to describe the conditions of the oppressed. He situates his writings under caste hierarchy, colonial capitalism, and industrial modernity. Through the character of Bakha, Munoo, and Ananta, Anand thinks fiction as a tool of social witness that exposes the structural inequity and

interrogating dominant cultural narratives about purity, labour, and technology. As the vision of Anand refelects that he was inspired by Marxist ideology. He is deeply concerned on Marxist humanism, Gandhian ethics, and European modernist narrative devices. He develops a exceptionally Indian form of realism so called radical social realism that refuses romanticism. This paper throws light on how the three novels describe not only document exploitation but also narrates an epistemology of suffering, struggle, and human dignity.

Mulk Raj Anand occupies a influential position in the background of Indian English literature for his unambiguous dedication to social realism and his sustained engagement with the marginalized. He wrote during the turbulent decades of colonial rule, industrial shift, and nationalist development. According to ,he argues that ,the novel as an ethical act, an instrument for the "revelation of truth" about systemic oppression (Anand, Apology for Heroism). Most of the earlier Indian English novelists represented only privileged or middle-class life but Anand's imagination was deeply rooted in the lives of outcastes, peasants, coolies, artisans, factory laborers, and other marginalized groups who were considered to be underdogs according to Indian social order.

Anand's has described social realism as a method of political intervention. Anand argues that it is not merely the realistic portrayal of poverty but the intentional presentation of historical and material structures governing everyday existence. His works are the mimesis of European socialist reflection, mainly the humanistic Marxism writers like Romain Rolland, and Gandhian ethics. The three novels under the scanner—Untouchable, Coolie, and The Big Heart provide perfect texts in which Anand describes a reliable source about realism which is grounded in human suffering, labour exploitation, and the pursuit for dignity.

Untouchable published in 1935 is the most influential and powerful literary indictment of caste discrimination in Indian English literature. The novel unfolds story of a eighteen years old sweeper boy Bhaka whose daily labour and bodily existence are controlled by notions of ritual impurity.

I think Anand has portrayed the realistic caste system by depicting a character from marginalized community. Anand's realism exposes caste not as a conceptual notion but as a material and embodied condition. Bakha's body becomes primarily source of oppression. Every incident imposed on Bhaka like , sweeping, cleaning latrines, receiving blows, shouting "posh, posh"—reveals how is he decorated by caste stigma. We can see that how spatial separation of colonies, the construction of the latrine, and the behaviour of governing bodies clearly demonstrates that how realism operates at the level of caste, creed and gender. My subjective ideas about psychological realism is that Bakha wants to joins British soldier but marked by shame, longing, and confusion.

Bakha's admiration for British soldiers, his desire for clean clothes, and his fantasies of dignity reflect the psychological costs of caste.

Realism can be observed at the Marketplace also that when wants to buy jalebis. He is humiliated and oppressed. Anand portrays the marketplace as a microcosm of caste capitalism where economic transactions reinforce ritual hierarchy.

The novel ends with reception of Gandhi's about the three possible "solutions". Gandhi's speech creates moral appeal, Iqbal Nath Sarshar's call for systemic reform, and the flush toilet (the machine). Anand uses realism to show the failure of simple moral plea. The flush system symbolizes influence of modern technology that can eliminate the material basis of untouchability. This final scene of the novel depicts Anand's belief that realism must offer historical alternativesrather romantic consolation.

Untouchable has truly address caste system from historical perspective in the same way his next novel Coolie expresses Anand's social vision that how colonial capitalism and their agent exploited labour to the extreme level.The protagonist, Munoo, who is an orphaned child who travels from one place to another place in search of livelihood expresses the concern about poverty that how it was deeply rooted in Indian geography.

Munoo's continuous movement for bread and butter signifies enforced displacement. His tragic journey exemplifies how colonial capitalism produced displaced but powerless labour. Anand's realism maps the vast expanding geography of exploitation in British India.

If we throw light on realism in domestic context, we find that in the early chapters Munoo's worked as a domestic servant. He faces lot of atrocity like physical harassment, beatings, and verbal abuse that reveals how children were treated in colonial rule and also hierarchy structures of private life. Domestic space becomes a place of micro-authoritarianism, showing how colonial modernity reproduces older forms of feudal exploitation. Apart from this industrial realism also played an important role in depicting the realistic condition of marginalized. Anand's portrayal of the textile factory is one of the initial instances of industrial realism in Indian English fiction. The factory is portrayed not simply as a workplace but as a machine that consumes bodies for profit. With relentless noise, dust, mechanical rhythm, low wages, and hazardous conditions, the factory represents the material consequences of colonial capitalism. Munoo's lungs deteriorate—a symbolic representation of how the system "breathes out" human life. Munoo's fate finally takes him to the tea plantation in the Himalayan foothills. Anand criticises that how racial hierarchy of colonial labour, white managers, Indian clerks, and coolies form a stratified pyramid of exploitation. Munoo's death from tuberculosis is both truthful and symbolic that how a body becomes the victim of global capitalism. If we consider

romantic novel where death signify tragic beauty but Munoo's death is a structural death created by the capitalist. It marks the culmination of social forces, not personal misfortune. Anand uses realism to show that under colonial capitalism, the life of a coolie is expendable.

Conclusion :

Lastly we can say that, Together, Dickens and Anand assert that social realism is a complete literary mode able to cross cultural, historical, and national boundaries. Both writers use fiction as a instrument for civilizing the subjugated and critiquing the structures that perpetuate inequality. Their works demonstrate that literature can form public conscience and contribute to struggle for justice. In this shared commitment, Dickens and Anand highlight the enduring relevance of social realism as a force for moral and social transformation.

Bibliography :

1. Anand, Mulk Raj. Apology for Heroism. Arnold-Heinemann, 1947.
2. ---. Coolie. Arnold Publishers, 1936.
3. ---. Untouchable. Arnold Publishers, 1935.
4. Dickens, Charles. David Copperfield. New York, 1980..
5. ---. The Old Curiosity Shop. Everyman Publishers, 1995.
6. ---. Oliver Twist. Norton Critical Edition, 2004.
7. Forster, E. M. "Introduction." Untouchable, by Mulk Raj Anand, Penguin Classics, various editions.
8. King, Bruce. Modern Indian Novel in English. Oxford University Press, 2001.
9. Mukherjee, Meenakshi. Realism and Reality: Novel and Society in India. Oxford University Press, 1985.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 11
पृष्ठ : 235–236

भारतीय संविधान और दलित चेतना का विकास

सुभद्रा कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

भारतीय संविधान का निर्माण भारतीय समाज, राजनीति एवं संस्कृति में एक व्यापक परिवर्तन का घटनाक्रम है। यह नए भारत के निर्माण का दस्तावेज था जो भारत में एक नए युग की अगवाई करने वाला ग्रंथ है।

संविधान ने भारतीय राजनीति में तो आमूलचूल परिवर्तन किया ही, इसने भारतीय समाज में भी जागृति के एक दौर की शुरुआत की। इस महान ग्रंथ ने सामाजिक न्याय को भारतीय परिदृश्य में परिभाषित करने का कार्य किया।

भारतीय समाज में अनेक प्रकार की विघटनकारी शक्तियाँ कार्य कर रही थीं और आज भी कर रही हैं। इसी में से एक विघटन का तत्व है – जाति व्यवस्था, जिसने भारतीयों के अंदर मनुष्य–मनुष्य में भेद करने की कुरूपता को जन्म दिया जिसका परिणाम यह हो गया कि भारत की हर जाति अपने से नीचे एक जाति खोज लेती है और इस चक्र का कहीं अंत नहीं मिलता। इस प्रक्रिया में कई जातियाँ कई शताब्दियों से छुआछूत का शिकार होती आयीं हैं। परिणामस्वरूप न तो उन्हें शिक्षा का अधिकार मिला और न ही समाज में समानता से जीवन जीने का अवसर मिला।

इस असमानता का विरोध मध्यकाल से होना आरम्भ हो गया था, परंतु वह एक व्यापक क्रांति का रूप नहीं ले सका था। आधुनिक युग में डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इस अमानवीय असमानता का विरोध किया तथा एक व्यापक आंदोलन को रूपरेखा प्रदान की। उन्होंने सामाजिक और दार्शनिक दोनों रूपों से इस आंदोलन को पुष्ट किया। इस आंदोलन से वंचितों को एक नई संज्ञा 'दलित' की दी। जो महात्मा गांधी के दिए गए नाम 'हरिजन' शब्द से एकदम अलग अर्थवत्ता रखता है। 'दलित' शब्द ने इस समाज में एक नई चेतना का विकास किया। 'दलित' अपने शोषण के प्रति जागृत होते हैं, जिसका प्रभाव संविधान निर्माण पर भी पड़ता है। संविधान के निर्माण में सामाजिक न्याय को केंद्र में रखा गया। संविधान में किये गये प्रावधानों से 'दलित' समाज को समानता का अवसर प्राप्त हुआ।

मौलिक अधिकारों के माध्यम से सामाजिक क्रांति :

संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक मूल अधिकारों की बात की गई है। जिसमें अनुच्छेद 14 से 18 तक समानता के अधिकार को परिभाषित किया गया है। जिसमें हर भारतीय को समान मानकर कुछ अधिकार प्रदान किए गए हैं। कानून के समक्ष समानता (अनुच्छेद 14) और धर्म, जाति, लिंग या जन्मस्थान के

आधार पर भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15) सुनीश्चित किया गया है। यह प्रावधान जाति–आधारित ऊँच–नीच की पारंपरिक व्यवस्था पर सीधा प्रहार था।

अस्पृश्यता का उन्मूलन (अनुच्छेद 17) यह दलित चेतना की सबसे बड़ी संवैधानिक उपलब्धि थी। अनुच्छेद 17 ने अस्पृश्यता पर बड़ा प्रहार किया और इसे दंडनीय अपराध घोषित किया, जिससे दलितों को कानूनी रूप से सामाजिक समानता का अधिकार मिला।

इन प्रावधानों ने वैसे दलितों को भी जागृत किया, जो अपने अधिकारों के प्रति अब भी जागृत नहीं थे। इन अनुच्छेदों के आधार पर कई सामाजिक क्रांतियाँ भी हुई, कई दलित जागृति संस्थाओं का निर्माण भी हुआ।

संविधान ने वयस्थ मताधिकार की स्वीकृति प्रदान की जिसने दलितों की संख्यात्मक रूप से एक शक्तिशाली समूह बना दिया। प्रत्येक वोट की समान कीमत होने से दलितों की राजनीतिक भागीदारी और चुनावी महत्व कई गुना बढ़ गया।

सकारात्मक कार्यवाही और प्रतिनिधित्व :

डॉ. अम्बेडकर ने माना कि केवल कानूनी समानता अपर्याप्त है, ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों को समान स्तर पर लाने के लिए, उन्हें कुछ विशेष सहारा की आवश्यकता है, और इसके मद्यनजर उन्होंने आरक्षण की आवश्यकता पर बात की, जिसके परिणामस्वरूप संविधान में आरक्षण को शामिल किया गया। इससे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को शिक्षा और सरकारी नौकरियों में आरक्षण मिला, जिससे सामाजिक गतिशीलता के द्वार खुले। साथ ही अनुच्छेद 330 और 332 में राजनीतिक आरक्षण को जोड़ा गया। संसद और राज्य विधानसभाओं में आरक्षित सीटों में दलित समुदायों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया। यह उनके लिए एक औजार बना जिसके माध्यम से वे अपनी समस्याओं को राष्ट्रीय पटल पर उठा सकते थे। संविधान में दलित चेतना को रक्षा कवच और आगे बढ़ने का मार्ग दिया। हालाँकि, कानूनी प्रावधानों को सामाजिक वास्तविकता में न बदलने की लड़ाई जारी है।

निष्कर्ष :

भारतीय संविधान का निर्माण और दलित चेतना का विकास एक–दूसरे के पर्याय हैं। डॉ. अम्बेडकर ने दलित आंदोलन को संवैधानिक औजार दिए, और बदले में, यह चेतना ही थी जिसने संविधान के न्याय, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों को वास्तविक रूप देने के लिए लगातार संघर्ष किया। संविधान ने एक न्यायपूर्ण समाज की रूपरेखा तैयार की, जबकि दलित चेतना ने उस रूपरेखा जीवित वस्तविकाता बनाने का दायित्व संभाला। यह एक सतत् प्रक्रिया है, जिसमें संवैधानिक मूल्य और सामाजिक चेतना मिलकर एक समतामूलक भारत की ओर प्रयासरत हैं।

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037